धार्मिक चरित्र

ज्वालाप्रसाद सिंहल

प्राप्तिस्थान :

रूप कमल प्रकाशन

दिल्ली

प्रकाशक :

सद्ज्ञान सदन,
अलीगढ़, इन्दौर

Price : Rs. 4-00

लेखक :

ज्वाला प्रसाद सिंहल

मुद्रक :

सरस्वती प्रेस
वाराणसी

भूमिका

देश के बड़े-बड़े शिक्षा-विशेषज्ञ इस बात से चिन्तित हैं कि देश के विद्यार्थी-समुदाय का चरित्र निर्बल होता जा रहा है। उनके नैतिक बंधन ढीले पड़ते जा रहे हैं, वे अपने धर्म से प्रायः अनभिज्ञ रहते हैं और बाल्यावस्था में ही सदाचार की जो नींव जमनी चाहिये थी, वह उनमें नहीं जमती। उनमें उस दृढ़ता और चरित्र-गठन का अभाव हो रहा है, जिसकी संसार के संग्राम में सफलता प्राप्त करने के लिये अत्यन्त आवश्यकता है।

कोई शिक्षा-प्रणाली उस समय तक संतोषजनक नहीं हो सकती जब तक उसमें इस उद्देश्य की पूर्ति करने को धार्मिक शिक्षा की भी व्यवस्था न हो। धर्म और सदाचार ही मनुष्य को पशुओं से भिन्न बतानेवाले गुण हैं। यदि मनुष्य की अद्भुत मानसिक शक्ति पर धर्म और नीति के अंकुश न हों तो वह संसार के लिये हितकारक होने के बदले मनुष्य-समाज के महान् कष्ट का कारण हो सकती है। अनीति करनेवाला मनुष्य पशुओं से भी अधिक क्रूर व डरावना हो जाता है। धार्मिक विकास के बिना मनुष्य का व्यक्तित्व अधूरा रह जाता है। जिस प्रकार शारीरिक निर्बलता से मनुष्य अनेक रोगों का शिकार हो जाता है, उसी प्रकार चरित्र की निर्बलता से अनेक मानसिक व सामाजिक दोष पैदा हो जाते हैं। परन्तु भारतीय-शिक्षा-प्रणाली में धार्मिक शिक्षा का अत्यन्त अभाव है।

जहाँ धार्मिक शिक्षा का इतना अभाव है, वहाँ नैतिक बंधनों को शिथिल करनेवाले अनेक कारण उपस्थित हो गये हैं। नैतिक स्वतंत्रता

ही आज-कल सभ्यता का चिन्ह बन गई है। नैतिक बन्धनों अथवा सदाचार के पूर्ण पालन की बात-चीत करना दक़ियानूसी होना समझा जाता है। अथवा उसे पंडित व मुल्ला कहकर तिरस्कार किया जाता है। नैतिक महानता के बदले ऊपर की टीप-टाप, गप्पें हाँकने का अभ्यास, नैतिक बंधनों से मुक्ति, यही आधुनिक सभ्यता की मुहर हो गई है। इससे व्यक्ति व समाज दोनों के लिये बड़ा घोर परिणाम हो रहा है। नैतिक बल से रहित मनुष्य का मन व शरीर दोनों ही निर्बल हो जाते हैं। और यह निर्बलता दिनों-दिन और पीढ़ी दर पीढ़ी बढ़ती जाती है। सम्भव है कि कोई-कोई प्रतिभावान् मनुष्य सदाचार-रहित होते हुए भी शक्तिशाली हो जाय। परन्तु यदि वह सदाचारी भी होता तो उसका तेज और भी अधिक होता। नैतिक बल के बिना मनुष्य में सहन-शक्ति, कठिनाइयों को पार करने का बल, और अथक परिश्रम करने का स्वभाव पैदा नहीं होते। ऐसे मनुष्य पर कठिन समय में भरोसा नहीं किया जा सकता। उस पर कोई गुरु भार नहीं दिया जा सकता। ऐसे मनुष्य कोल्हू के बैल हो सकते हैं, परन्तु संग्राम के योद्धा नहीं हो सकते। और यदि ऐसे नीति-रहित मनुष्यों में साम्प्रदायिक शिक्षा-द्वारा हठधर्मी भी पैदा हो जायँ तब तो वे संसार के लिये एक भय का कारण हो जाते हैं। उनमें बलवानों के सन्मुख गिड़गिड़ाने और निर्बलों पर अत्याचार करने का स्वभाव पैदा हो जाता है। व्यक्ति-समूह से ही समाज बनता है। ऐसे व्यक्तियों के समाज में अनेक रोग, झगड़े, उद्दण्डता, अव्यवस्था, बढ़ जाते हैं। समाज की स्थिरता नष्ट हो जाती है। नित्यप्रति नये-नये सिद्धान्त निकलते हैं। धर्म और नीति के बंधन शिथिल हो जाते हैं। स्वार्थ और धींगाधींगी बढ़ जाती है। सदाचार उपहास का विषय हो जाता है। भलमनसाहत और सत्यता मूर्खता समझी जाती है। शांतिप्रियता निर्बलता समझी जाती है। परस्पर सहयोग के स्थान पर क्षुद्रता और साम्प्रदायिक पक्षपात बढ़ जाते हैं। साम्प्रदायिक दंगे-फिसादों का ताँता लग जाता है। भले मनुष्यों के

जीवन संकट में पड़ जाते हैं। और सारा समाज पतन की ओर अग्रसर होता है।

यही अवस्था आज हमारे देश की है। एक ओर तो सदाचार की खिल्ली उड़ाना और बन्धनों से मुक्त उच्छृङ्खल व स्वतन्त्र जीवन ही सभ्यता समझी जाती है। दूसरी ओर कट्टर धर्मावलम्बी धर्म के भाव व उद्देश्य को बिना समझे ही अपने धर्म के एक-एक अक्षर पर अकड़ते हैं। धार्मिक सहिष्णुता और विवेक तो इस आंधी-तूफान में कोसों दूर उड़ गये हैं और समाज धार्मिक, राजनैतिक व आर्थिक लड़ाई-झगड़ों से छलनी होकर टूट-फूटकर ढेर हो गया है। समाज के भिन्न-भिन्न भाग धर्म के नाम पर लड़-मर रहे हैं और देश के इतिहास के पन्ने साम्प्रदायिक दंगे-फिसादों से काले होते जा रहे हैं। लोग अपने धर्म के सच्चे आदेशों को भी भूल गये हैं। जब अपने धर्मों को ही वे नहीं जानते फिर अपने साथी दूसरे धर्मवालों के धर्मों की सुन्दरता को पहचानना तो उनके लिए असम्भव ही है। अतएव उनमें धार्मिक सहानुभूति पैदा होने की आशा स्वप्न में भी नहीं की जा सकती। शिक्षा-प्रणाली में सच्ची धार्मिक शिक्षा के अभाव के यह स्वाभाविक परिणाम हैं।

सदाचार की आवश्यकता से तो बहुत लोग सहमत होंगे, परन्तु सदाचार के लिए धार्मिक शिक्षा की आवश्यकता कदाचित् सब न स्वीकार करते हों। परन्तु बिना किसी अनुशासन के कोई नैतिक सिद्धान्त स्थिर नहीं रह सकता। ऐसे लोग जो सदाचार का पालन केवल उसको श्रेष्ठ समझकर करते हैं, बहुत थोड़े होते हैं। साधारण मनुष्यों को तो किसी ऐसे अनुशासन की आवश्यकता रहती है, जिससे उन्हें सहज ही में मालूम हो जाय कि अमुक प्रकार के कार्य करने से उनको अमुक हानि होगी। सदाचार के लिए धर्म से अधिक बलवान अनुशासन जनसमाज के लिए आज तक ज्ञात नहीं हुआ। जनता के विचार बदलते रहते हैं। इसलिए केवल जनमत पर अवलम्बित कोई सदाचार के सिद्धान्त स्थिर नहीं रह सकते। उदाहरण के लिए देखिये, डाकुओं के

समाज की नीति किसी धार्मिक-संस्था की नीति से सर्वथा भिन्न होती है। फिर यह भी स्मरण रखना चाहिये कि किसी भी जन-समाज का जनमत भी किसी न किसी विशेष धर्म के अनुसार रहा करता है। उस धर्म को यदि निकाल दिया जाय तो उस समाज का आधार नष्ट हो जायगा। ऐसा जनमत पहिले से भी अधिक परिवर्तनशील व क्षणिक हो जायगा। यही कारण है कि संसार में नास्तिकवाद अनेक प्रकट हुए और नष्ट हो गये। उन्होने सदाचार की नींव धर्म से भिन्न किसी सिद्धान्त पर खड़ी करनी चाही; परन्तु वह उसे स्थिर न रख सके। समाज के लिये वे अन्त में अनुपयोगी व भयानक सिद्ध हुए।

दूसरी ओर धर्म संसार में सदैव एक प्रबल शक्ति रहा है। बिना धार्मिक आधार के सदाचार-शिक्षा नीरस और निर्बल रहती है। बिना धार्मिक अनुशासन के नैतिक सिद्धान्त केवल बुद्धि-विलास के विषय रहते हैं। परन्तु धर्म से उनमें 'एक शक्ति का संचार' हो जाता है। धर्म का अध्ययन मनुष्य के मन को आकर्षित करके स्वाभाविक रूप में उसमें सदाचार-प्रेम प्रवेश कर देता है। धर्म का ज्ञान मनुष्य में नैतिक बल पैदा करता है। और नैतिक आचरण को रुचिकर भी बना देता है। जहाँ शुद्ध सदाचार के सिद्धान्त केवल बुद्धिमान मनुष्यों को ही प्रभावित कर सकते हैं, तहाँ धर्म का प्रभाव सब प्रकार के लोगों पर पड़ता है। जो क्रूर और उद्दण्ड होते हैं, उनको धर्म डराता है। जो बुद्धिमान होते हैं, उनको तत्वज्ञान देकर सन्तुष्ट करता है, जो भावुक होते हैं, उनको भक्ति का आनन्द प्राप्त कराता है, जो भले स्वभाव के हैं, उन्हें सदाचार की आवश्यकता प्राकृतिक कारणों द्वारा बताता है; और साधारण जन-समाज को सदाचार का रास्ता दिखाता है। जब कोई व्यक्ति धर्म का तिरस्कार करता है, और अपने बल के घमंड में समाज व धर्म की परवाह नहीं करता वरन् अपनी इच्छा-पूर्ति को ही धर्म समझता है, तभी वह दूसरों के कष्ट का कारण हो जाता है।

कदाचित् भारतवर्ष में अनेक धर्मों के होने के कारण हमारी शिक्षा-

प्रणाली में धार्मिक शिक्षा सम्मिलित नहीं हो सकी। क्योंकि यदि सब धर्मों की शिक्षा का प्रबन्ध किया जाय तो उसका व्यय असहनीय हो जाय। और किसी विशेष धर्म की शिक्षा से दूसरे धर्मों को आपत्ति करने का कारण मिलेगा। अतएव भारतीय सरकार ने धार्मिक उदासीनता की नीति ग्रहण की और देशी राज्यों ने उसी नीति की नक़ल की। परिणाम यह हुआ कि देश भर की पाठशालाओं में धार्मिक शिक्षा का अभाव हो गया। इस आवश्यकता की पूर्ति का भार परिवार के वातावरण पर या साम्प्रदायिक संस्थाओं वा स्कूलों पर छोड़ दिया गया। इन साम्प्रदायिक स्कूलों व संस्थाओं ने और भी ग़ज़ब ढाया। इनके पहले तो सब लोगों के साथ-साथ जीवन व्यतीत करने के कारण लोगों में परस्पर सहानुभूति भी पैदा होने लगी थी; परन्तु इन साम्प्रदायिक संस्थाओं ने अपने धर्म को परमोच्च ईश्वर वाक्य और दूसरे धर्मों को अपूर्ण समझना ही सिखाया। इन साम्प्रदायिक संस्थाओं ने अपने सदस्यों में और विद्यार्थियों में साम्प्रदायिक भाव कूट-कूटकर भर दिये। परिणाम जो होना था, वही हुआ। देश में धार्मिक संघर्ष और भी बढ़ गया। धर्म का अच्छा प्रभाव पड़ने के बदले साम्प्रदायिकता बढ़ गई। जो उपाय किया था, वह उल्टा पड़ा।

आज-कल प्रायः घरों में तो कुछ धार्मिक शिक्षा होती ही नहीं। जिन धार्मिक रस्म-रिवाजों का पालन किया जाता है, उनके कारणों का अथवा उसके नैतिक महत्त्व का कुछ भी ज्ञान प्राप्त नहीं होता। परिवार के अन्य लोगों के विचारों और आचारों का प्रभाव अवश्य पड़ता है, परन्तु भिन्न-भिन्न लोगों के अलग-अलग विचार होने के कारण कोई एक-सा नैतिक भाव जन-समाज में पैदा नहीं होता। आज जो बालक है, वही भविष्य में एक परिवार का अध्यक्ष होता है। जब उस बालक को कोई नैतिक वा धार्मिक शिक्षा नहीं मिली तो आगे उसका पारिवारिक जीवन भी बड़े ऊँचे दरजे का नहीं हो सकता। और न उसके जीवन के आदर्श से उसके बच्चों को ऊँची नैतिकता का पाठ

मिल सकता है। इससे धर्म का शनैः-शनैः अधिक-अधिक पतन होगा। इसलिये धार्मिक शिक्षा को केवल पारिवारिक जीवन पर छोड़कर संतोष नहीं किया जा सकता।

इन बातों का इलाज धार्मिक शिक्षा को स्कूलों में पुनः प्रतिष्ठित करना है। परन्तु यह धार्मिक शिक्षा ऐसी होनी चाहिये कि जो प्रत्येक विद्यार्थी को उसके अपने धर्म का सच्चा ज्ञान तो करावे ही जिससे उसका चरित्र पवित्र, उज्ज्वल, व तेजस्वी हो ; परन्तु दूसरे धर्मों के प्रति भी आदर का भाव उत्पन्न करे। जिससे वह समझे कि दूसरे धर्म भी ऐसे ही शुद्ध व सच्चे हैं जैसे कि उसका अपना धर्म है। दूसरे धर्मों के प्रति ऐसे सहानुभूति-पूर्ण व आदर-मिश्रित भाव से उसका अपना चरित्र भी अधिक पवित्र व बलवान् होगा; क्योंकि उसमें से द्वेष अभिमान और साम्प्रदायिकता के भाव निकलकर उसके स्थान पर उदारता, प्रेम और सहिष्णुता के भावों का उदय होगा। वह केवल अपने धर्म को सच्चा और दूसरों को झूठा समझना छोड़ देगा। वह समझ जायगा कि विविध धर्म भिन्न-भिन्न देशों और परिस्थिति की भिन्नता के कारण पृथक-पृथक स्वरूपों में प्रकट हुए और उनके मूल में समान प्रकार के सिद्धान्त उपस्थित हैं। फिर वह दूसरे धर्मवालों से झगड़ा करना छोड़ देगा। जिस प्रकार भिन्न-भिन्न व्यवसाय करने वाले सम्बन्धी एक ही परिवार के सदस्य बनकर रह सकते हैं, उसी प्रकार अनेक धर्मों में विश्वास करने वाले भी परस्पर प्रेम व शांति का जीवन व्यतीत कर सकते हैं।

यह शिक्षा स्कूलों में ही देनी चाहिये। क्योंकि यही समय है जब कि विद्यार्थियों का चरित्र-गठन होता है। इस समय जैसे प्रभाव उनके मन पर डाले जावेंगे, वैसा ही उनका चरित्र बनेगा। बड़ी उम्र पर पहुँचने पर तो उनके भाव व विचारों का संगठन हो चुकता है। उस समय नवीन विचारों का इतना गहरा प्रभाव नहीं पड़ता। स्कूल से निकलकर कालेज में वह और गहरी फिलासफी या विशेष विषय का

अध्ययन कर सकता है ; परन्तु आधारभूत धार्मिक शिक्षा स्कूलों में ही मिलनी चाहिये। ऐसी धार्मिक शिक्षा से देश की दोनों बड़ी समस्याएँ एक साथ सुलझ जायँगी। देश की जनता में नैतिक बल बढ़ेगा और उसके आदर्श ऊँचे होंगे। यह विद्यार्थी ही भविष्य का भारतीय समाज बनावेगा। साथ ही साम्प्रदायिक कठिनाई का भी एक स्थायी हल निकल आवेगा और सब धर्मों के लोगों में प्रेम व मेल बढ़ेगा।

इस कार्य के लिये ऐसी पुस्तकों की आवश्यकता है जिनमें भारतवर्ष में रहने वाले सब मुख्य-मुख्य धर्मों का सहानुभूति पूर्ण वर्णन हो। इससे विद्यार्थी अपने धर्म का ज्ञान तो प्राप्त करेगा ही वरन् दूसरे धर्मों की सुन्दरता को भी समझेगा। उसे यह भी ज्ञात होगा कि मूल सिद्धान्तों में सभी धर्म समान हैं। प्रत्येक धर्म का वर्णन पृथक पुस्तक में नहीं होना चाहिये वरन् प्रत्येक क्लास के लिये नियत पुस्तक में सभी धर्मों की ऐसी बातें आजानी चाहिये जो उस क्लास के लिये उपयोगी हों। इस प्रकार विद्यार्थी सभी धर्मों से परिचय प्राप्त कर सकेगा।

ऐसी धार्मिक शिक्षा की ही योजना श्रीमंत राज राजेश्वर होलकर नरेश की सरकार ने तैयार की है। इसका श्रेय विशेषकर श्रीयुत सर सिरेमल बापना साहेब, के० टी०, सी० आई० ई०, प्रधान सचिव होलकर सरकार को है, जो इन दोनों समस्याओं को हल करने में अनेक वर्षों से प्रयत्नशील हैं और इस योजना को फलीभूत करने में सफल हुए हैं। यह योजना समाज की सम्पूर्ण बुराइयों को दूर कर सके या न करे ; परन्तु इसमें कोई संदेह नहीं है कि इसका प्रभाव समाज के ऊपर केवल भला ही पड़ सकता है। इससे समाज के शरीर में शुद्ध रक्त का संचार होकर उसकी अनेक व्याधियाँ शांत होंगी। और जब इस शिक्षा से प्रभावित विद्यार्थी समाज के सदस्य होंगे, तो एक स्वस्थ भारतीय समाज संसार को अपने तेज से चकित कर देगा। सर सिरेमल बापना ने देश की इस कठिन समस्या का हल सुझाकर

एक महान् सेवा की है, जिसके लिये आनेवाली समाज सदैव उनकी कृतज्ञ रहेगी।

इस योजना के अनुसार ६ पुस्तकें तैयार की गई हैं। इनमें सात मुख्य धर्मों का (हिन्दूधर्म, इस्लाम धर्म, ईसाई धर्म, सिक्ख धर्म, पारसी धर्म, जैन धर्म और बुद्ध धर्म) हाल है। पहिली दो पुस्तकें पाँचवी व छटी क्लास के लिये हैं। उनमें सब धर्मों के प्रवर्तकों, आचार्यों व महान् पुरुषों के जीवन-चरित्र हैं। जब हमको उनके चरित्र में श्रद्धा होगी, तो हम उनके कथन और उपदेश को भी आदर से पढ़ेंगे। इन पुस्तकों से जहाँ विद्यार्थी को सदाचार की शिक्षा मिलेगी, वहाँ साथ-ही-साथ दूसरे धर्मवालों के जीवन की विशेषता भी ज्ञात होगी। तीसरी पुस्तक सातवीं क्लास के लिये है, इसमें प्रत्येक धर्म के रीति-रिवाज, संस्कार, साहित्य, तीर्थ और उत्सवों का वर्णन है। चौथी पुस्तक में जो आठवीं क्लास के लिये है, प्रत्येक धर्म के मुख्य सिद्धान्तों का निरूपण है। पाँचवीं पुस्तक में धार्मिक भावों के विकास, प्रत्येक धर्म की विशेषता और सब धर्मों में समानता का वर्णन है। यह पुस्तक नवमी क्लास के लिए है। और दसवीं क्लास के लिये छटी पुस्तक में सदाचार और धर्म के मूल सिद्धांत और विभिन्न धर्मों द्वारा प्रतिपादित तथा मनो-विज्ञान व जीव-विज्ञान द्वारा अनुमोदित उपायों द्वारा नैतिक महानता प्राप्त करने का विवेचन है।

आशा है कि इस पाठमाला से दोनों उद्देश्यों—अर्थात् देश के नवयुवकों में सदाचार और चरित्र-बल बढ़ने और साम्प्रदायिक विद्वेष के दूर होने—की पूर्ति होगी, जिसकी हमारे देश की उन्नति के लिये अत्यन्त आवश्यकता है। यदि यह पाठमाला इसमें कुछ भी सफलता प्राप्त कर सकी तो इस योजना के प्रवर्तकों को परम संतोष होगा और लेखक अपने आपको महान् सौभाग्यशाली समझेगा।

धर्म-पाठमाला की दूसरी पुस्तक पाठकों के सन्मुख उपस्थित है। इस पाठमाला की योजना व उसके उद्देश्यों का विषद रूप से

वर्णन कर दिया गया है। यह पुस्तक छटी कक्षा के छोटी आयु-वाले विद्यार्थियों के लिए बनाई गई है। इसकी सामग्री को इकट्ठा करने में जो कठिनाई हुई है उसके अतिरिक्त एक और बड़ी समस्या थी। छोटे बालकों को रोचक हो इसलिए विषय को सम्वाद के स्वरूप में लिखना आवश्यक था। सम्वादों में भी ऐसे शब्दों का प्रयोग करने का प्रयत्न किया गया है जो कि बालकों की समझ में सरलता से आ जावें और रुचिकर भी हों। परन्तु सम्वाद विशेष में जिस घटना या सिद्धान्त का वर्णन किया गया है, उसके सत्य होने की खोज कर ली गई है।

घटनाओं के चुनने में भी दो बातों का विचार रखा गया है। एक तो ऐसी बातें बचा दी गई हैं जिनसे छोटे बालकों में कुसंस्कार पैदा होने की सम्भावना थी, जैसे दाम्पत्य-जीवन सम्बन्धी। इसके अतिरिक्त करामात-सम्बन्धी असम्भव प्रतीत होने वाली बातें जहाँ तक सम्भव हुआ है संक्षेप में दी गई हैं। और जिन करामातों के वर्णन भी हुए हैं, आशा है कि यथा सम्भव उनका रहस्य भी तीसरी पुस्तक में विस्तार से स्पष्ट हो जायगा, जिससे नवयुवक अन्धविश्वासी न होकर सत्यदर्शी हों। अथवा इस पुस्तक में भी जहाँ विषय को जटिल बनाये बिना सम्भव हुआ है, वहाँ उन करामातों का यथार्थ स्वरूप ही वर्णन कर दिया गया है। इस विज्ञान के युग में अन्धविश्वास की शिक्षा देना मानो धर्म में अश्रद्धा उत्पन्न करने की सामग्री जुटाना है। और यह इस पाठमाला का प्रयोजन नहीं है।

इन जीवन-चरित्रों में तीन प्रकार की बातों को दिखाने का विशेष प्रयत्न किया गया है। एक तो यथासम्भव उन घटनाओं तथा चिन्हों का वर्णन किया गया है जिनसे कि चरित्र-नायक का योगी, साधक अथवा रियाज़ी होना एवं उसकी आध्यात्मिक विशेषता ज्ञात होती है। इससे सब धर्मों के अचार्यों के जीवन की विशेषताओं की समानता तथा भिन्न-भिन्न परिस्थिति को धर्मों की विभिन्नता के कारण सिद्ध

करने में सहायता मिलती है। दूसरे चरित्रनायक के सद्विचार, सदाचरण व सद्ज्ञान के उदाहरण दिये गये हैं। तीसरे जहाँ किसी चरित्र में किसी धर्म विशेष के किसी सिद्धान्त का उदाहरण मिलता है वहाँ उस सिद्धान्त का संक्षेप में सरल निरूपण कर दिया गया है।

एक बड़ी कठिनाई विविध धर्मों की विशेष बातों को साधारण शब्दों में वर्णन करने में प्रतीत हुई। यथाशक्ति साधारण शब्दों का प्रयोग करते हुए भी अनेक क्लिष्ट शब्द आ गये हैं। फिर भी उनका प्रयोग बहुत कम हुआ है। और जहाँ आवश्यक हुआ वहाँ उनका अर्थ व्यक्त कर देने का भी प्रयत्न किया गया है।

अत्यन्त परिश्रम करने पर भी ऐसे गहन विषय के निरूपण में त्रुटियाँ रह जाना स्वाभाविक ही है, विशेषकर जब लेखक मुझ जैसा अल्प-बुद्धि हो। परन्तु सुहृदय पाठकों से यह आशा है कि वे उन त्रुटियों को लेखक को सुझाकर इस महान् कार्य में सहायता देंगे और लेखक को कृतार्थ करेंगे।

श्री होलकर सरकार सम्पूर्ण धर्म-प्रिय जनता की, और विशेषकर लेखक की धन्यवाद की पात्र है, जिसकी उदारता से ही इस कार्य का सम्पादन सम्भव हुआ है।

पुस्तक को लाभदायक और सुन्दर बनाने के लिये बहुमूल्य आदेश देने के कारण वज़ीर उद्दौला, राय बहादुर श्रीमान् सर एस० एम० बापना, के० टी०, सी० आई० ई०, प्राइम मिनिस्टर, इन्दौर, का मैं अत्यन्त अनुगृहीत हूँ। इस पुस्तक के लिखने में उचित परामर्श देने के लिए, और विशेषकर पुस्तक के विषय को रोचक कहानियों के स्वरूप में लिखने की परमोपयोगी सम्मति देने के लिये मैं दीवान-ए-खास बहादुर, लाला श्रीमानसिंह, एम० ए० (ऑक्सन), भूतपूर्व होममिनिस्टर, इन्दौर, का अत्यन्त कृतज्ञ हूँ।

मैं उन सब विद्वानों का कृतज्ञ हूँ जिनकी पुस्तकों से इस पुस्तक के लिखने में सहायता मिली है। उनकी सूची लम्बी है। उनकी कृपा

से ही मैं इस कार्य्य को पूरा कर सका हूँ। 'अति अपार जे सरितवर, जो नृप सेतु कराहिं। चढ़ि पिपीलिका परम लघु, बिनु श्रम पारहिं जाहिं।'

मैं अपने मित्र प्रो० कमलाशंकर मिश्र, एम० ए०, का भी अनुगृहीत हूँ जिन्होंने इस पुस्तक की टाइप कापी और प्रूफों के संशोधन में सहायता प्रदान की है।

भगवान इस पुस्तक के पढ़ने वालों में विश्व-प्रेम और भगवद्-भक्ति जाग्रत करे।

विनीत
ज्वालाप्रसाद सिंहल

पुस्तकों की सूची

जिनसे इस पुस्तक में सहायता ली गई है।

१—आदि पुराण (जिनसेनाचार्य)। २—उत्तर पुराण। (जिन-सेनाचार्य)। ३—श्री पार्श्वनाथ चरित्र। ४—भद्रबाहु चरित्र (अनु० उदयलाल जैन)। ५—प्राचीन जैन इतिहास (सूरजमल जैन)। ६—भगवान महावीर (कामताप्रसाद कृत)। ७—भगवान महावीर (चन्द्रराज भण्डारी कृत)। ८—हरिवंश पुराण। ९—गोस्वामी तुलसीदास (रामचन्द्र शुक्ल)। १०—धार्मिक इतिहास (चन्द्र शेखर पाठक)। ११—भक्तमाल (राजा रघुराजसिंह)। १२—धर्म इति-हास रहस्य (रामचन्द्र शर्मा)। १३—दयानन्द दिग्विजय (स्वा० सत्यानन्द)। १४—जीवन चरित्र हजूर स्वामीजी महाराज (प्रताप-सिंह)। १५—श्री कबीर साहब का जीवन चरित्र। १६—राजा-राममोहनराय (शिवनारायण द्विवेदी)। १७—भागवत पुराण। १८—भक्त चरितावली (लक्ष्मी प्रसाद पाण्डेय)। १९—बौद्धकालीन भारत (जनार्दन भट्ट)। २०—बुद्धदेव (जगन्मोहन)। २१—बुद्ध चरित्र (रामचन्द्र शुक्ल)। २२—जातक कथा माला। २३—बुद्ध-चर्या (राहुल सांकृत्यायन)। २४—गुरुगोविंद सिंह की जीवनी (व्रजनन्दन प्रसाद मिश्र)। २५—प्रेरितों के काम (Bible Society) २६—मलिक मुहम्मद जायसी कृत अखरावट की भूमिका। २७—मौलाना रूम और उनका काव्य (जगदीशचन्द्र वाचस्पति)। २८—महात्मा शेखसादी (प्रेमचन्द)। २९—गुरु तेगबहादुर (मैथिलीशरण गुप्त)।

۳۰—دبستان مذاہب ۳۱—گورو کھلک مصنفہ لال جی ۳۲—مشاہیر عالم ۳۳—سیرت النبی مصنفہ شبلی ۳۴—مذاہب الاسلام مصنفہ محمد نجم الغنی خان ۳۵—بدھ مذہب مصنفہ شیونراین لال

३६—Dravya Sangrah (S. C. Ghoshal) ३७—The Heart of Jainism (Mrs. S. Stevenson) ३८—English works of Raja Ram Mohan Roy (S. Shastri) ३९—History of Brahmo Samaj (S. Shastri) ४०—Indian Theism (N. Macnicol) ४१—Lord Gaurang (Shishir Kumar Ghosh) ४२—Shankaracharya (Sitanath Dutt) ४३—Buddhism (Rhys Davids) ४४—Buddha (Oldenberg) ४५—Early History of the Spread of Buddhism (N. Dutt) ४६—Mahabodhi (Several vols.) ४७—Holy Bible. ४८—Life and Teaching of Lord Jesus Christ ४९—Church History-Early Period (S. Cheetham) ५०—Life of St. Paul (James Stalker) ५१—Peter the Apostle (W. M. Taylor) ५२—Catholic Encyclopaedia ५३—A History of Persia (Sykes) ५४—The Shahnama (Atkinson) ५५—History of Persia (Malcolm) ५६—Zoraster (Jackson) ५७—Zorastrian and some other systems (D. G. Medhora) ५८—History of Parsis (Karaka) ५९—Literary History of Persia (Browne) ६०—History of the Sikhs (Cunningham) ६१—The Religion of the Sikhs (Field) ६२—History of the Punjab (Latif) ६३—Persian Literature, ancient and modern (Reed) ६४—Speeches of Prophet Mohammed

(Lane Poole) ६५—Early History of Caliphs (A'S Suyuti) ६६—Annals of Early Caliphate (W. Muir) ६७—Islam under the Caliphs of Baghdad (Osborne) ६८—Successors of Mohammed (Irving) ६९—Story of Mohammed (Edith Holland) ७०—Prophet of Islam (Qazi Abdul Majid) ७१—The Holy Koran ७२—The Faith of Islam (E. Sell) ७३—Philosophy of Islam (T. J. De Bor) ७४—The Spirit of Islam (Ameer Ali) ७५—Mohammed and Mohammedanism (R. B. Smith) ७६—The Faiths of the World (Black wood).

۷۷—تاریخ النجت مصنفہ مولانا اسلم

अध्यापकों से निवेदन

इस पुस्तकमाला के लिखने में दो उद्देश्यों को सामने रखा गया है। एक तो यह कि प्रत्येक धर्म के विद्यार्थी को अपने धर्म के सिद्धान्तों का साधारण ज्ञान हो जाय। दूसरा यह है कि वह विद्यार्थी दूसरे धर्मों का वर्णन पढ़कर उनमें जो सत्य का अंश है, उसको जाने और उनका भी आदर करे। इस माला की इस पुस्तक में सब धर्मों के चलाने वालों व महान् पुरुषों के जीवन चरित्र दिये हैं। महान् पुरुषों के चरित्रों के पढ़ने से विद्यार्थियों में भी शुभ संस्कार पैदा होंगे और उनका चरित्र अच्छा बनेगा। इसके अतिरिक्त जब विद्यार्थी देखेगा कि सभी धर्मों के आचार्य व अन्य बड़े पुरुष आदर्श चरित्र वाले हुए हैं, तो वह सब का आदर करेगा। धार्मिक सहानुभूति पैदा करने के लिये इन चरित्रों की समान बातों का ध्यान-पूर्वक मनन करने की आवश्यकता है।

ऐसी ही कुछ बातों की ओर मैं अध्यापकों का ध्यान आकर्षित करना चाहता हूँ और आशा है कि वे भी इस पुस्तक के पढ़ाने में जहाँ अवसर मिले, वहाँ इन बातों पर विद्यार्थियों का ध्यान दिलावेंगे। पहली बात तो यह है कि प्रायः सभी धर्म-प्रवर्तक (धर्म चलाने वाले) योगी, भगवद्भक्त, रियाज़ी, अथवा ख़ुदा की इबादत (भजन) करने वाले हुए हैं, और इतने ऊँचे दर्जे के हुए हैं कि उनके चलाये हुए धर्म को मानने वाले उनको अवतार, ईश्वर का अंश, सिद्ध पुरुष, बुद्ध या रसूल मानते हैं। सभी के ऊपर भगवान् की अद्भुत कृपा थी। उनके चरित्र ऐसे थे जैसे बड़े योगियों या रियाज़ करने वालों के होते हैं।

दूसरी बात यह है कि उन्होंने उन्हीं बातों का विशेषकर उपदेश दिया है जिनकी उनके समय व देश की समाज को आवश्यकता थी। अनावश्यक बातों पर उन्होंने नई आज्ञाएँ नहीं दीं।

उदाहरण के लिये धर्म-प्रवर्तकों के जीवन को लीजिये। भगवान रामचन्द्र ने गुरु विश्वामित्र से योग विद्या सीखी। उन्होंने धर्म पर दृढ़ रहना और राक्षस, निषाद, वानर आदि अनार्य जातियों पर प्रेम से आर्य सभ्यता का प्रभाव डालना सिखाया। भगवान् कृष्ण योगीश्वर थे, यह सभी मानते हैं। उनके समय तक आर्यों की मानसिक उन्नति बहुत हो चुकी थी। इसलिये उन्होंने गीता का जैसा गूढ़ उपदेश दिया। परन्तु भगवान् कृष्ण ने मूर्ति पूजा के प्रश्न पर कोई आज्ञा नहीं दी क्योंकि उस समय इस प्रश्न को सुलझाने की कोई आवश्यकता ही पैदा नहीं हुई थी।

इसी प्रकार हज़रत मुहम्मद साहब ने पहाड़ की गुफ़ा में रियाज़ और इबादत की और भगवान् की कृपा से उनको भगवान् के दर्शन हुए। योगियों के समान उनको भी घण्टे का शब्द सुनाई दिया और ज्योति (प्रकाश) के दर्शन हुए। उनके समय में अरब में मूर्ति पूजा बहुत फैल रही थी। लोग उन मूर्तियों के सामने मनुष्यों तक को मार कर बलि चढ़ा देते थे। हज़रत मुहम्मद साहब ने इन सब बातों को बुरा बता कर एक ईश्वर की ही पूजा करने का उपदेश दिया।

जिस समय गुरु नानक संसार में प्रकट हुए थे उस समय भिन्न-भिन्न धर्म वालों में झगड़ा था और लोग बाहरी आचरणों को ही धर्म समझ बैठे थे। गुरु नानक ने जगन्नाथ जी के मन्दिर के सामने यह स्पष्ट उपदेश दिया था कि बाहरी आरती से क्या लाभ है, भीतर की आरती अनहद शब्दों द्वारा करो। उन्हें धर्म का झगड़ा व्यर्थ मालूम होता था क्योंकि ईश्वर तो एक ही है चाहे उसे ख़ुदा कहो या भगवान् कहो। दीपक को चाहे मन्दिर में रखो चाहे मसजिद में वह तो एक सा ही जलेगा। परन्तु गुरु नानक ने यह उपदेश नहीं दिया कि विवाह

के समय यह रीति होनी चाहिए और कान छिदने के समय यह होनी चाहिये क्योंकि यदि मनुष्य सच्चे मन से ईश्वर का भजन करे, तो फिर वह चाहे जिस रीति से विवाह करे उससे उसके धर्म के भाव में कोई अन्तर नहीं पड़ता। गुरु नानक का योगीश्वर होना तो उनके अनहद शब्द सुनने से व समाधि लगाने से ही सिद्ध है।

भगवान् ईसा के ऊपर भगवान का अंश (होली-घोस्ट) प्रकाश के रूप में उतरा। उन्होंने चालीस दिन तक जंगल में ईश्वर का ध्यान किया। उन्होंने उस समय के यहूदी समाज के बाहरी आडम्बर के विरुद्ध सच्चे धर्म, मन की पवित्रता व दया का उपदेश दिया, परन्तु विशेष रीति रिवाज की आज्ञा नहीं दी। रीति रिवाज समय-समय व भिन्न-भिन्न देश की आवश्यकताओं के अनुसार हो जाते हैं। उनके भिन्न होने से मन के सच्चे धर्म, सदाचार व सद्विचार की आवश्यकता में कोई भेद नहीं पड़ता। भगवान् ईसा ने इसी सदाचार, सद्विचार, ईश्वर की भक्ति तथा सबसे प्रेम करने का उपदेश दिया है।

पैग़म्बर ज़रदश्त बरसों तक एक पहाड़ की गुफा में रहे। उस पहाड़ के चारों ओर प्रकाश दिखाई पड़ा करता था। पैग़म्बर ज़रदश्त ने अनेक बार प्रकाश का व भगवान् अहुरमज़दा का दर्शन किया था। उनके समय में मन्त्र तन्त्र का बहुत प्रचार था और लोग ईश्वर की पूजा को भूल गये थे। पैग़म्बर ज़रदश्त ने एक ईश्वर की पूजा का प्रचार किया।

जैन तीर्थंकरों का योग-साधन द्वारा सिद्धि प्राप्त करना तो सभी मानते हैं। उन्होंने धर्म के मूल अहिंसा धर्म का उपदेश दिया। सिद्धता प्राप्त करने के लिये उन्होंने साधन बताया और मुनि बनने वाले के जीवन के नियम बना दिये। इसी प्रकार भगवान् बुद्ध ने योग-साधन किया। और अन्त में समाधि प्राप्त करके बुद्धत्व प्राप्त किया। उनके समय में यज्ञों में हिंसा होती थी। उन्होंने उसका विरोध किया और सदाचार और सद्विचार का ही उपदेश किया। उसी के द्वारा मुक्ति

का रास्ता दिखाया और धार्मिक जीवन व्यतीत करने का अधिकार मनुष्य मात्र को दिया। परन्तु ऐसे प्रश्नों पर कि ईश्वर कौन है अथवा कैसा है उन्होंने कोई विचार प्रकट नहीं किये, क्योंकि ईश्वर हो चाहे न हो, सदाचार तो सभी के लिए आवश्यक है। चाहे कोई नास्तिक हो चाहे आस्तिक, ईश्वर सम्बन्धी कुछ भी विचार कोई रखे परन्तु यदि वह सदाचारी और सद्विचार वाला होगा, तो उसको अवश्य सुख व शांति मिलेगी, चाहे वह स्त्री हो, चाहे पुरुष, चाहे चाण्डाल हो, चाहे ब्राह्मण। यही उनका उपदेश था और इसी की उस समय आवश्यकता थी। इस धर्म का सर्वत्र उपदेश करने के लिये उन्होंने भिक्षुओं का संघ बनाया व उनके नियम बनाये। परन्तु विवाह संस्कार आदि जैसे सामाजिक नियमों पर उन्होंने कोई विशेष आज्ञा नहीं दी।

इससे यह बात समझ में आती है कि सभी धर्मों के चलाने वाले महान् पुरुष हुए हैं, जिनकी बुद्धि बड़ी तीव्र थी, जिन्होंने अपने समाज को आवश्यकतानुसार उपदेश देकर सदाचार के रास्ते पर लाने का प्रयत्न किया है और गौण अथवा अनावश्यक बातों पर व्यर्थ विवाद नहीं बढ़ाया। इस बात का निश्चय ही धार्मिक सहानुभूति का मूल्य है।

अब हम इस पुस्तक में दिये हुए सभी चरित्रों की विशेषता संक्षेप में वर्णन किये देते हैं, जिससे उनके पढ़ाने में सहायता मिले।

सिक्ख धर्म

गुरु नानक बालकपन से ही ज्ञानी थे। उनके उपदेश से उनके गुरु भी संन्यासी हो गये। उन्होंने व्यापार भी किया तो साधु-सेवा का। बादशाह बाबर से माँगा तो यही माँगा कि क़ैदियों को छोड़ दो। उनके लिये जाति-पाँति का कुछ भेद नहीं था। लालू भक्त का खाना खाया परन्तु सेठ का नहीं। वे एक ईश्वर की ही पूजा के प्रचारक थे और ओंकार को भगवान का सच्चा नाम जानते थे। उनका सिद्धान्त था कि "मैं यदि प्रभु को प्रसन्न कर लूँ, तो मैंने तीर्थ में स्नान कर लिये और यदि प्रभु मुझसे खुश न हो, तो तीर्थ में नहाने से क्या लाभ।" (जपजी)। "प्रभु के नाम के सुनने से मन स्थिर हो जाता है" (जपजी) इसको योगी श्रीचन्द ने प्रत्यक्ष कर दिखाया। अनहद शब्द का श्रवण किया और समाधि प्राप्त की। उन्होंने गृहस्थ और संन्यासी धर्म का भेद बड़ी सुन्दरता से दिखाया है। गुरु रामदास क्षमा की मूर्ति थे। जिन्होंने उनके साथ दुष्टता की उनकी ओर से उनका मन स्वप्न में भी मलीन नहीं हुआ। बादशाह अकबर से भी जो इन्होंने माँगा, तो दूसरों के लिये ही यह माँगा कि प्रजा का साल भर का कर क्षमा कर दिया जाय। गुरु हरगोविन्द ने संसार में कमल के पत्ते के समान रह कर दिखाया। सिक्खों की राजनीतिक शक्ति बढ़ाई परन्तु फिर भी आप पवित्र और योगी बने रहे। उन्होंने ओंकार के जाप की महिमा को स्पष्ट कर दिखाया। उनका बाज़ भी सब पक्षियों को नहीं मारता था। यह उनके न्याय-प्रेम का प्रभाव था। गुरु हरराय अपने शिष्यों से कैसा प्रेम करते थे। गुरु शिष्य के इस प्रेम का अद्भुत दृश्य उनके जीवन में देखने को मिलता है। गुरु तेगबहादुर ने शरणागतों की रक्षा के लिये अपने प्राण त्याग दिये, और "सिर दिया पर सार न

दिया"। गुरु गोबिन्दसिंह ने सिद्ध कर दिखाया कि "प्रभु नाम सुनने से नीच भी ऊँचे हो जाते हैं" और "उस प्रभु में न जाति है न पांति है।" इन्होंने ही अमृत पान करा के दीक्षा देने की विधि निकाली थी। उन्होंने अन्त में सब सिक्खों की खालसा समाज बना कर सिक्ख धर्म की नींव दृढ़ की।

ईसाई धर्म

भगवान ईसा दया और क्षमा की मूर्ति थे। उनका सिद्धान्त था कि "जो तुमको शाप दें तुम उनको आशीर्वाद दो। जो तुम को दुख दें, तुम उनके भले के लिये भगवान से प्रार्थना करो।" जब भगवान ईसामसीह क्रास पर चढ़ाये जा रहे थे उस समय भी उन्होंने अपने मारने वालों के लिये भगवान से प्रार्थना की थी कि "हे पिता इनको क्षमा कर दे।" "जिनका स्वभाव नम्र है वही भाग्यशाली हैं क्योंकि वे स्वर्ग के अधिकारी होंगे।...जो दयालु हैं, वे ही भाग्यवान हैं...... जिनका हृदय पवित्र है वे धन्य हैं..." ये सब वाक्य भगवान ईसा के जीवन में ठीक उतरते हैं। भगवान ईसा के स्वभाव की नम्रता उनके अपने चेलों के पैर धोने से ही स्पष्ट है। भगवान ईसा गरीब और दु;खियों से विशेष प्रेम करते थे, क्योंकि "वैद्य की आवश्यकता तो रोगी को होती है निरोग को नहीं।" वे ऊपर की पवित्रता से भीतर की पवित्रता को श्रेष्ठ समझते थे और शुद्ध मन से भगवद्भक्ति करने का उपदेश करते थे।

सन्त पीटर ने भी ध्यान में कई बार प्रकाश का अनुभव किया था। भगवान ईसा के पीछे ये ही सब ईसाइयों में मुख्य समझे जाते थे। पीटर

की विनय का आदर्श देखिये, कि जब उसको यह ज्ञात हुआ कि भगवान ईसा कौन हैं, तो उसने अपने आपको भगवान ईसा के साथ रहने के योग्य न जान कर उनसे चले जाने के लिये प्रार्थना की। जब पीटर को क्रास दिया जाने लगा तो उन्होंने प्रार्थना की कि उन्हें उलटा गाड़ा जाय क्योंकि जिस प्रकार भगवान ईसा को क्रास दिया गया था उस प्रकार सूली पाने के वे अधिकारी नहीं थे। "तुम उनसे मत डरो जो शरीर को मार सकते हैं, परन्तु उस परमात्मा से डरो जो शरीर के मरने से पीछे जीवात्मा को नर्क में डाल सकता है।" इसी वाक्य को सन्त पीटर और पाल दोनों ने निभाया। सन्त पाल को लोगों ने रोम जाने से मना भी किया परन्तु उन्होंने भगवान के काम के लिये मरने की कुछ भी चिन्ता न की। "हे परमपिता, जैसे स्वर्ग में सब काम तेरी आज्ञानुसार होते हैं, ऐसे ही पृथ्वी पर भी हो।" इस विश्वास का दृश्य देखिये कि सन्त पाल जेलखाने में से भागने का अवसर प्राप्त होने पर भी नहीं भागते। सन्त पीटर और सन्त पाल ने ईसाई धर्म का रास्ता यहूदियों के अतिरिक्त अन्य जातियों के लिये भी खोल दिया। सन्त पाल ने भगवान ईसा के उपदेश को बड़ी गहरी व्याख्या करके ईसाई धर्म को वर्तमान रूप दे दिया। सन्त पाल का यह बड़ा अद्भुत गुण था कि वे जहाँ जाते थे वहाँ किसी से कुछ माँगते नहीं थे वरन् साधारण लोगों की तरह मज़दूरी करके, सब में मिलकर, उनका मन वश में कर लेते थे। सन्त फ्रान्सिस भी कैसे नम्र और सरल स्वभाव के थे। शील और संकोच उनमें भरा हुआ था। ईसाई साधु को किस प्रकार रहना चाहिये इसका उन्होंने उज्ज्वल आदर्श उपस्थित किया है। इसीलिये वे सब सम्प्रदायों के ईसाइयों के पूज्य हैं।

पारसी धर्म

पैग़म्बर ज़रदश्त का योगी होना भी उनके जीवन से स्पष्ट है। वे बालकपन में भी ऐसे दयालु थे कि दूसरों की गाय भैंसों को अपने पिता के गोदाम से भूसा खिला देते थे। जिस प्रकार पुराणों के अनुसार पाप बढ़ने पर पृथ्वी गो का स्वरूप रखकर भगवान से रक्षा के लिये प्रार्थना करती है इसी प्रकार पारसी धर्म के अनुसार भी हुआ था। अर्दशीर बाबकान ने भूत, प्रेत, सर्प, वृक्ष आदि की पूजा को नष्ट करके ईश्वर पूजा का फिर से प्रचार किया। "जब उपवास करके तुम भगवान के ध्यान में मग्न होगे, तो स्वर्ग, सितारे, फरिश्ते और ईश्वर के भी दर्शन कर सकते हो।" इसका प्रमाण पैग़म्बर ज़रदश्त और अरदाये वीराफ़ के जीवन में भली भाँति मिलता है। बहराम गोर की शांत-प्रियता उसका राज्य के लिये युद्ध न करने से प्रत्यक्ष है। प्रजा को दान देने के लिये कैसी मनोहर युक्ति दी है। "मज़दान को दान देने से अधिक प्यारी वस्तु कोई नहीं है।" इसका बहराम ने पूरा पालन किया। "अभ्यास से मनुष्य बड़े अद्भुत काम कर सकता है। इसके बड़े सुन्दर उदाहरण इस चरित्र में मिलते हैं।" जब उसने अपने शत्रु को अपने देश से निकाल दिया तो फिर उस शत्रु के देश पर चढ़ाई करके लड़ाई को नहीं बढ़ाया। नौशेरवाँ आदिल की न्यायप्रियता तो प्रसिद्ध ही है। उसकी धार्मिक सहिष्णुता को देखिये कि रूम के विद्वानों की रक्षा के लिये रूम के बादशाह से लड़ाई की। आज़र कैवां निष्पक्ष पारसी परम सन्त हुए हैं। यह सभी धर्मों का आदर करते थे और बड़े सुन्दर चुभते हुए उपदेश देते थे। इनके चेले भी त्याग और तपस्या की मूर्ति थे। बहराम बिन फरशाद के चेले माहाब दूसरे के स्थान पर आप नौकरी करने चले गये। और प्रार्थना करने पर भी सेवा करना नहीं छोड़ते थे।

जैन धर्म

भगवान ऋषभदेव हिन्दुओं के भी अवतार हैं और जैनियों के प्रथम तीर्थंकर हैं। इन्होंने जैन समाज की व्यवस्था की। उनकी अहिंसा से जंगल के हिंसक पशु भी अहिंसक हो गये। केश लौंच (उखाड़ना) और आहार के कठिन नियम उन्होंने स्वयं पालन किये और अपने अनुयायियों में चलाये। भरत चक्रवर्ती ने राज्य करते हुए भी सन्तों के समान रहने का आदर्श दिखा दिया। उन्होंने ही ब्राह्मणों के वर्ण को बनाया और उनका चिह्न अहिंसा का पूर्ण पालन करना बताया। भगवान बाहुबली का त्याग कैसा अद्भुत है कि आये हुए चक्रवर्ती राज्य को भी ठुकरा कर वैराग्य ले लिया। महात्मा नारद के जीवन में अहिंसा के सिद्धांत का बड़ा सुन्दर उपदेश मिलता है। भगवान पार्श्वनाथ का उपदेश ऐसा मधुर था कि मरते हुए सर्प सर्पिणी को भी उससे शान्ति मिली। भगवान महावीर ने जैसी कठोर तपस्या की उसका वर्णन नहीं हो सकता। उनके कानों में लकड़ी ठोक दी जाने पर भी उनके मन में लेश मात्र क्रोध न आया। यह अहिंसा और शांति की हद है। उनके उपदेश से हिंसक सर्प भी शान्त हो गया। ऐसे अद्भुत प्रभाव वाले भगवान महावीर पूज्य हैं। स्वामी भद्रबाहु-आचार्य के जीवन में जैनियों के आहार सम्बन्धी नियमों की कठोरता दिखाई देती है। स्वामी समन्त भद्राचार्य के जीवन से सल्लेखना व्रत और स्तुति के सिद्धांतों पर सुन्दर प्रकाश पड़ता है। गोस्वामी तुलसी-दासजी की प्रार्थना पर भगवान कृष्ण की मूर्ति भगवान रामजी की-सी दिखाई देने लगी थी। उसी प्रकार स्वामी समन्त भद्राचार्य की स्तुति से शिव की मूर्ति भगवान चन्द्रप्रभ तीर्थंकर की दिखाई देने लगी। यह स्वामीजी के ध्यान की गहराई का प्रमाण है। सब जैन तीर्थंकर योगी थे यह तो उनके विविध प्रकार के ध्यान, ज्ञान और दिव्य ध्वनि से ही स्पष्ट है।

बुद्ध धर्म

भगवान बुद्ध ने बाल्यावस्था में ही यह सिद्ध कर दिया था कि मारने वाले से जिलाने वाला अधिक महत्त्वशाली है। उन्होंने संसार के दुःख को दूर करने के लिये सर्वस्व त्याग दिया। और फिर हिंसामय यज्ञों का विरोध करके सब वर्णों के लिये समान और सार्वदेशिक धर्म का प्रचार किया। उन्हें चांडाल को अपने हाथ से स्नान कराने में कुछ भी संकोच नहीं हुआ। अपने अद्भुत उपदेश से वे पापियों के मन को भी क्षण भर में फेर देते थे। "बैर करने से बैर दूर नहीं होता, बैर तो प्रेम से ही नष्ट हो सकता है।" इस सिद्धान्त के अनुसार उन्होंने लड़ने के लिये तैयार राजाओं में मेल करा दिया। "उस पुरुष के वचन व्यर्थ हैं जो कहता है पर करता नहीं।" भगवान बुद्ध ने सदैव उसी का उपदेश किया जिसका प्रथम वे स्वयं आचरण करते थे। "दूसरों को सौ बार जीतने से अपने को एक बार जीतना भी अच्छा है।" यही भगवान के जीवन और उपदेश का मूल मन्त्र है। सुभद्रा को कैसी मनोहर सरलता से उपदेश दिया था! मरने के समय भी उस चुंद का, जिसके भोजन से उनको रोग हुआ था, आभार माना कि उसके यहाँ खाने से उन्हें निर्वाण प्राप्त हुआ। भगवान ईसा के समान उन्होंने भी उपदेश दिया था कि "जो तुमसे द्वेष करें उनसे तुम द्वेष मत करो। इससे तुम्हारे मन को सुख मिलेगा।" भगवान बुद्ध छोटों का निरादर नहीं करते थे। उन्होंने राजाओं को नाराज़ करना स्वीकार कर लिया पर पहिले स्वीकार किया हुआ आम्रपाली का निमन्त्रण नहीं त्यागा। महात्मा सारीपुत्र विनय, त्याग और तपस्या की मूर्ति थे। उन्होंने बीमारी के समय भी दूध और शहद खाना स्वीकार नहीं किया क्योंकि यह उनके मुख से निकली हुई बात को सुनकर लाया गया था। महात्मा महाकश्यप के धर्म भाव को देखिये कि उनको यह चिन्ता थी कि कहीं उनके किसी कार्य से लोग धर्म-विरुद्ध विचार करके पाप के भागी न

हो। इसीलिये वे भी भगवान बुद्ध के प्रिय हुए। महात्मा अनुरुद्ध के जीवन से यह अपूर्व शिक्षा मिलती है कि पुण्य बाँटने से घटता नहीं, वरन् बढ़ता ही रहता है। महात्मा आनन्द भगवान बुद्ध के परम प्रिय शिष्य थे। गुरु-भक्ति और सरल स्वभाव के कारण वे इस योग्य भी थे। निमन्त्रित किये जाने पर भी उन्होंने बिना अधिकार के अरहंतों की सभा में जाना स्वीकार नहीं किया और सभा में तब गये जब पहिले एक ही रात्रि की तपस्या से अरहंत पद प्राप्त कर लिया।

विषय सूची

३—सिक्ख धर्म

४—ईसाई धर्म

५—पारसी धर्म

६—जैन धर्म

७—बुद्ध धर्म

धार्मिक चरित्र

भाग दूसरा

३—सिक्ख धर्म

१—गुरु नानक

गुरु नानक ने ही सिक्ख धर्म को चलाया है। उनके शिष्य ही सिक्ख कहलाये। गुरु नानक पंजाब के तलवंडी गाँव में कालूराम खत्री के यहाँ पैदा हुए थे। पैदा होने के समय ही ज्योतिषी ने कहा था कि यह लड़का या तो चक्रवर्ती राजा होगा या कोई बड़ा महात्मा होगा।

बालक नानक साधारण बालकों के समान खेल कूद में समय नहीं बिताते थे वरन् सोच विचार किया करते थे। खेल भी खेलते थे तो भगवान् की कथा करने का और उसके पीछे प्रसाद बाँटने का। कोई साधु संत आता तो झट घर में से आटा लाकर उसको दे देते थे। एक बार ये ध्यान में बैठे थे। पिता जी ने इनको खाने को बुलाया। कई बार बुलाने पर आए, फिर भी खाना न खाया और न कोई उत्तर ही दिया। इनको चुपचाप देख कर पिता को सन्देह हुआ कि लड़के को कोई बीमारी तो नहीं है। उन्होंने एक वैद्य को बुलाया। वैद्य ने इनके मुँह में अँगुली डाल कर देखा कि गला ठीक है या नहीं। बालक नानक को हँसी आ गई और

वे बोले "वैद्य जी, अपने रोग का इलाज करो, मेरा रोग तो वही अच्छा करेगा जिसने यह लगाया है।" छोटे से बालक की यह बात सुन कर सब दंग रह गये। पिता ने इनको गोपाल पंडित के यहाँ पढ़ने को भेज दिया।

गोपाल पंडित ने एक पट्टी पर वर्णमाला लिखी और गुरु नानक से बोले—

गोपाल पंडित—नानक, पढ़ो, 'अ आ'।

गुरु नानक—अ।

गोपाल पंडित—इसके आगे बोलो 'आ'।

गुरु नानक—अ अक्षर ही भगवान का नाम है। जब यह ही पढ़ लिया तो फिर आगे पढ़ कर क्या करूँ।

गोपाल पंडित—तुम मेरे पास विद्या पढ़ने को आये हो। जब तक सब अक्षर ही न पढ़ोगे, तब तक और विद्या कैसे पढ़ सकते हो?

गुरु नानक—तुम तो मुझे दुनिया में वाद-विवाद (बहस करने) की विद्या पढ़ाते हो, भगवान के जानने की विद्या पढ़ाओ, तो पढ़ूँ।

गोपाल पंडित—भाई, दुनिया में खाने पीने के लिए तो कमाना ही पड़ता है और उसके लिये विद्या पढ़नी ही पड़ती है।

गुरु नानक—खाने पीने को कितना चाहिये? यह तो सब ही कमा लेते हैं, सच्ची विद्या पढ़ना तो भगवान को जानना है।

गोपाल पंडित पर इस बात का इतना प्रभाव पड़ा कि उसने

सब काम छोड़ कर भगवद् भजन करने में मन लगाया। गुरु नानक घर लौट आये। गोपाल पंडित के लड़के कालूराम के पास आये और बोले—"तुम्हारा बेटा अच्छा पढ़ने गया। उसने पंडित जी को भी सन्यासी बना दिया।" कालूराम नानक जी पर बड़े नाराज़ हुए और बोले—'अच्छा तुम पढ़ते नहीं तो खेती करो।" खेती उन्होंने ऐसी की कि खड़ी खेती को गाय भैंस चर गईं और इन्होंने उनको नहीं भगाया। तब पिता कालूराम ने झुँझला कर कहा—"कुछ भी नहीं होता तो जाओ गाय चराया करो।" गुरु नानक गायों को चरने के लिये छोड़ देते और आप किसी पेड़ के नीचे ध्यान में बैठ जाते थे। एक दिन वे ऐसे ही ध्यान में बैठे बैठे सो गये। कहते हैं कि एक साँप बिल में से निकल कर उनके सिर पर फण फैला कर बैठ गया। गाँव का ज़मींदार उधर से जा निकला। वह यह देख कर चकराया। ज़मींदार के आने की आहट पाकर वह साँप तो भाग गया और ज़मींदार नानक को जगा कर उनके पिता कालुराम के पास लिवा लाया।

ज़मींदार—कालुराम, तुम्हारा यह लड़का बड़ा भाग्यवान् है। इससे गाय के चराने का काम मत लिया करो। देखो, आज जब यह सो रहा था तो साँप इसके ऊपर फण फैला कर बैठा था।

कालूराम—तो फिर इससे क्या कराऊँ? अच्छा ले, नानक, ये रुपये ले, तेरी लोग बड़ी बड़ाई करते हैं। इन रुपयों से व्यापार करके कुछ लाभ करके दिखा तो समझूँ कि तू बड़ा गुणवान् है।

नानक रुपये लेकर व्यापार करने चले। रास्ते में उनको कुछ साधु मिले। उन साधुओं से बात चीत करके नानक बड़े प्रसन्न हुए और वे सब रुपये उनको ही खिलाने में खर्च कर दिये और खाली हाथ घर को लौट आये।

कालूराम—क्यों नानक, इतनी जल्दी कैसे लौट आया?

नानक—आपने जो आज्ञा दी थी वह पूरी कर दी। उन रुपयों से बड़ा लाभ कमाया।

कालूराम—क्या लाभ कमाया? तेरे पास तो कुछ भी नहीं है।

नानक—ऐसा व्यापार किया कि जिसमें हानि तो कभी है ही नहीं, और लाभ भी एक बार नहीं होता वरन् दिन प्रति दिन बढ़ता रहता है।

कालूराम—भला ऐसा कौन सा व्यापार है। हम भी तो सुनें।

नानक—ज्ञानी साधुओं की सेवा। उनके सत्संग से बड़ा लाभ हुआ और वे रुपये उनको खिलाने में खर्च कर दिये।

कालूराम को क्रोध आगया। उसने एक ज़ोर से तमाचा मारा। इतने में वह ज़मींदार भी वहाँ आ गया। ज़मींदार बोला—हैं, हैं, यह क्या करते हो?

कालूराम—करता हूँ अपना सिर। व्यापार करने गये थे सो रुपया साधुओं को खिला आये।

ज़मींदार—भाई, तुम इनसे व्यर्थ काम कराते हो, यह तो भगवान् के भजन का सौदा जानते हैं।

अन्त में कहने सुनने से नानक ने सुल्तानपुर के ज़मींदार

दौलत खाँ के यहाँ मोदीखाने के काम पर नौकरी कर ली। उसी गाँव में उनकी बहन ब्याही थी और इनके बहनोई जयराम ही दौलत खाँ के कारिन्दे थे। नानक रात को तीन बजे उठते थे और नदी में स्नान करके ध्यान करने को बैठ जाते थे और तीन-चार घंटे भजन में बैठे रहते थे। फिर माँगने वालों को दान दे कर और अथितियों को भोजन करा कर आप भोजन करते थे। जयराय ने इनका विवाह भी करा दिया। इनके दो पुत्र श्री चन्द्र और लक्ष्मी चन्द्र हुए।

अब नानक साहब ने गृहस्थाश्रम छोड़ कर सच्चे धर्म का उपदेश करने का निश्चय किया। उन्होंने देखा कि धर्म के नाम पर आपस में लोग लड़ते हैं। सच्चा धर्म तो यह है कि मनुष्य किसी को दुख न दे। सब से प्रेम से भला वर्ताव करे। ऐसा आचरण तो लोग करते नहीं हैं और उल्टा अत्याचार, बेईमानी, अभिमान करके ईश्वर के सेवक बनने का दम भरते हैं। सब धर्मों में सचाई, सदाचार और भगवद् भजन का उपदेश है। धर्म के लिये न कोई छोटा है न बड़ा। उनका मन लोगों की इस भूल को दूर कर, उन्हें सच्चे रास्ते पर लाने के लिये विकल होगया। एक रात को जब नानक नदी में स्नान करने गये तो वहीं पानी में समाधि लग गयी। कहते हैं कि तीन दिन तक ये घर न लौटे। जयराम ने ढुँढ़वाया भी परन्तु पता नहीं लगा। लोगों ने दौलत खाँ को बहकाया कि नानक दान बहुत करता था। इससे तुम्हारा हिसाब गड़बड़ करके भाग गया है। दौलत खाँ ने जयराम को

हिसाब करने को कहा। जयराम ने कहा कि हिसाब में कोई भूल भी होगी तो मैं दूँगा। जब जयराम दौलत खाँ के यहाँ से लौट रहे थे तो उनको नदी के किनारे नानक खड़े मिले। नानक का मुख तेज से चमक रहा था।

जयराम—नानक, तुम अब तक कहाँ थे? दौलत खाँ को लोगों ने बहका दिया है कि तुम द्रव्य लेकर भाग गये हो। इसलिये उसने हिसाब पूछा है।

गुरु नानक—तुम्हारा नानक तो नदी में डूब मरा। अब तो नानक का दूसरा जन्म हुआ है। हिसाब सब ठीक है। उल्टा मेरा ही रुपया निकलता है। जो रुपया मेरा निकले उसको साधु सन्तों को बाँट दो और मोदीखाने के काम पर किसी और को नियत कर दो।

हिसाब किया गया तो सात सौ रुपये गुरु नानक के निकले। उनके श्वसुर मूलचन्द भी आ गये थे।

मूलचन्द—ये रुपये नानक के लड़कों को दे देना चाहिये।

दौलतखाँ—जयराम तो कहते हैं कि नानक ने साधुओं को खिलाने में खर्च करने को कहा है।

मूलचन्द—उसे कहने में क्या लगता है? साधुओं को तो खिलाओ और बच्चों को कुछ नहीं!

दौलतखाँ—यह नानक का रुपया है। जैसे वह कहे वैसे ही खर्च होना चाहिये। अच्छा नानक को यहीं बुला कर पूछो।

नानक को बुलाया गया। वे भगवद् भजन के नशे में

झूमते हुए आये और दौलतखाँ के बराबर जाकर बैठ गये। उन का मुख तेज से चमक रहा था।

दौलतखाँ—नानक, तू मेरा मोदी होकर मुझे सलाम नहीं करता! यह क्या बात है?

गुरु नानक—तुम्हारा मोदी तो नदी में डूब गया। हमारे शरीर में तो अब भगवान विराज रहे हैं। मुझे अब राजा व रंक सब एक से ही दिखाई देते हैं।

दौलतखाँ—जब आपको सब एक से ही दिखाई देते हैं, तो चलो हमारे साथ मसजिद में नमाज़ पढ़ो।

गुरु नानक—दीपक को चाहे मसजिद में रखो चाहे मन्दिर में। एक सा ही प्रकाश करेगा। हमारा मन तो एक अजन्मे ईश्वर में लगा है। बाहरी पूजा चाहे हम मन्दिर में करें, चाहे मसजिद में।

दौलतखाँ—तो चलो मसजिद में।

गुरु नानक—चलो!

सब लोग मसजिद में गये। नमाज़ होने लगी परन्तु गुरु नानक खड़े ही रहे। जब नमाज़ समाप्त हो गई, तो दौलतखाँ ने गुरु नानक से पूछा—

दौलतखाँ—नानक, तुमने हमारे साथ नमाज़ क्यों नहीं पढ़ी?

गुरु नानक—पढ़ता कैसे? तुम्हारा मन तो घोड़ों के मोल करने में लगा हुआ था।

दौलतखाँ—हाँ, बात तो ठीक है। अच्छा हमारे साथ नहीं पढ़ी

तो इमाम साहब के साथ क्यों नहीं पढ़ी ?

गुरु नानक—इमाम का मन अपनी गाय के बछड़े में पड़ा हुआ था।

इमाम साहब—आप कहते तो ठीक हैं।

गुरु नानक—भाई, बाहरी आडम्बर से कुछ नहीं होता। सच्चे दिल से ही उस ईश्वर की भक्ति करनी चाहिये।

यह कहकर गुरु नानक चल दिये। दौलतखाँ ने वे रुपये नानकजी के लड़के को दिये और उतना ही और द्रव्य साधुओं को खिलाने में भी खर्च कर दिया।

गुरु नानक बहुत से स्थानों में घूमे। कहते हैं कि वे घूमते घूमते अरब देश को भी गये। कहते हैं कि वहाँ एक दिन ये काबा की ओर पैर करके सो रहे थे। किसी ने कहा कि तुम ख़ुदा के घर काबा की ओर पैर क्यों करते हो ? गुरुजी ने उत्तर दिया कि भाई, जिधर ईश्वर न हो, उधर को मेरे पैर कर दो। यह सुन कर वह मनुष्य चुप हो गया।

घूमते घूमते वे एक स्थान एमनाबाद में आए। वहाँ लालू भक्त एक शूद्र रहता था। वह जाति का शूद्र था और निर्धन था। गुरु नानक उसके यहाँ जाकर ठहरे। उसी समय वहाँ एक सेठ ने साधुओं का भंडारा किया था। परन्तु गुरु नानक उसके यहाँ खाने को नहीं गये और लालू भक्त की बाजरे की रोटियाँ खाईं। वह सेठ स्वयं उनको बुलाने आया।

सेठ—महाराज ! चलिये, भोजन करके मुझे कृतार्थ कीजिये।

गुरु नानक—भाई, हम खाना खा चुके हैं। लालू ने बड़े प्रेम से भोजन कराया है।

सेठ—महाराज, थोड़ा सा ही खा लीजिये। आपके जाने से मेरा घर पवित्र होगा।

गुरु नानक—भाई, हम तुम्हारे यहाँ खाने नहीं जाएँगे।

सेठ—क्यों महाराज! जब आप शूद्र के यहाँ खाना खा लेते हैं, तो मेरे यहाँ खाने में क्या बुराई है?

गुरु नानक—मेरे लिये शूद्र और ब्राह्मण एक ही है। यह शूद्र अपनी गाढ़ी कमाई के धन में से बड़े प्रेम से खिलाता है। इसलिये इसके खाने में मिठास है। तुम्हारा खाना ऐसा नहीं है।

सेठ—वाह महाराज, यह भला कैसे हो सकता है?

गुरु नानक—नहीं मानते, तो परीक्षा कर लो।

कहते हैं कि दोनों जगह के खाने मँगाये गये और गुरु नानक ने दोनों को दो हाथों में लेकर निचोड़ा। लालू भक्त के खाने में से दूध और सेठ के खाने में से खून निकला। यह देख कर सेठ दंग रह गया।

गुरु नानक—भाई, दिखाने के लिये भंडारे करने से कुछ नहीं होता। लोगों पर दया किया करो और भगवान् का सच्चे मन से भजन करो तो कल्याण होगा।

कहते हैं कि जब घूमते घूमते ये सय्यदपुर पहुँचे, उस समय बादशाह बाबर ने भारतवर्ष पर आक्रमण किया था और

उस समय उसकी फौज सय्यदपुर में ही थी। सिपाही लोग शहर को लूट रहे थे। एक सिपाही लूट का माल गुरु नानक के कन्धे पर उठवा कर ले चला। परन्तु इनके मुख के तेज को देखकर उसने समझा कि ये भी कोई ख़ुदा परस्त (भगवद् भजन करने वाले) हैं। इसलिये उसने इनको छोड़ दिया। ये फिर भी उसके साथ चले गये और बादशाह के पास पहुँचे। बाबर ने इनके तेज को देखकर इन्हें आदर से बैठाया और इनके पीने के लिये शराब मँगाई।

गुरु नानक—हमने वह शराब पी ली है जिसका नशा भी नहीं उतरता। अब हम यह शराब क्या पीवेंगे।

बाबर—तो मैं आपकी और क्या ख़ातिर (सत्कार) करूँ ?

गुरु नानक—जो क़ैद किये गये हैं उनको तू छोड़ दे।

बादशाह बाबर ने फौरन सब क़ैदियों को छोड़ देने का हुक्म दे दिया।

गुरु नानक—तूने निर्बलों पर दया की है इसलिये जा अब देहली भी विजय कर। तेरे वंश में दस राजे राज्य करेंगे।

बाबर ने बहुत से जवाहिरात मँगाकर कहा, इन्हें मंजूर (स्वीकार) कीजिये।

गुरु नानक—हमको परम धन (भगवान) मिला है। हम इस धन को क्या करेंगे ! इसको माँगने वालों में बाँट दो।

एक बार वे घूमते घूमते जगन्नाथपुरी पहुँचे। उस समय मन्दिर में आरती होती थी। और बाजे बज रहे थे। गुरु नानक

मन्दिर के भीतर नहीं गये। बाहर ही बैठे रहे। एक सज्जन ने कहा "आप बाहर क्यों बैठे हैं ? भीतर क्यों नहीं जाते ?'

गुरु नानक—सर्वव्यापक भगवान की आरती तो हृदय के भीतर होती है। उनकी आरती में अनहद के बाजे बजते हैं। फिर इन बाहरी बाजों से मुझे क्या करना है!

एक सिक्ख ने कहा कि महाराज मैं सिक्खों के रहने के लिये एक गाँव देना चाहता हूँ। गुरुजी ने यह स्वीकार कर लिया। उस गाँव का नाम करतारपुर रक्खा। उसीमें गुरुजी भी रहने लगे। वे अब भी रात को तीन बजे उठते थे और घन्टों ध्यान में बैठे रहते थे। जब ध्यान से उठते तो साधुओं और सिक्खों से आप ही खाना खाने के लिये कहने जाते और फिर लौट कर ध्यान में बैठ जाते थे। गुरुजी तो पाँच पाँच छै छै दिन में भोजन करते थे। उनके पुत्र श्रीचन्द और लक्ष्मीचन्द भी करतारपुर आ गये। गुरु नानक ने श्रीचन्द को योग-साधना का उपदेश दिया।

एक बार एक लेहना नाम का खत्री गुरु के दर्शन को आया। वह दर्शन करके प्रेम से बेहोश हो गया। जब उसे होश आया तो गुरु ने उसका नाम अंगद रक्खा और उसे अपने पास ही रख कर योग-साधन सिखाया। पाँच वर्ष में वह भी सिद्ध हो गया। तब गुरुजी ने उसे विवाह करने की आज्ञा दी। जब अंगद विवाह करके आये तो गुरु नानक उनको अपने साथ जंगल में लिवा ले गये।

गुरु नानक—अंगद, गऊ के लिये घास तो बाँध ले चल।

अंगद ने झट अपने विवाह की चादर में ही घास बाँध ली। जब वे लोग घर आये, तो गुरुपत्नी बोली—महाराज, आपने यह क्या किया? देखिये अंगद की विवाह की चादर में मिट्टी लग गई है।

गुरु नानक—यह मिट्टी नहीं है, केशर का टीका है। अंगद हम तुमसे बहुत प्रसन्न हैं। कोई बरदान माँगो।

अंगद—महाराज, मैं आपको अपने से अलग समझूँ तो बरदान माँगूँ। जब आपही मेरे हैं तो फिर और क्या माँगू! परन्तु आप कहते हो इसलिये माँगता हूँ कि मेरा मन सदैव आपके चरणों में ही लगा रहे।

गुरु नानक—अंगद, हमारे पीछे तुम ही गुरु होगे। श्रीचन्द्र तो सन्यासी हो गया है इसलिये वह गुरु नहीं होगा। उसके चेले सन्यासी होंगे। मैं चाहता हूँ कि गुरु गृहस्थी रहकर भी भगवान का भजन और धर्म पालन करना सिखावें! जिससे गृहस्थी लोग धर्म को सीखें।

कुछ दिन पीछे गुरु नानक अपने कुछ चेलों को लेकर नदी किनारे एक स्थान पर गये। वहाँ अंगद को आज्ञा दी कि भजन करो। जब अंगद भजन में बैठ गये तो उनका मुख तेज से चमकने लगा। गुरु नानक ने उनके टीका करके पाँच पैसे और एक नारियल भेंट किये और गुरु बनाया। दूसरे सिक्खों ने भी उनको माथा टेका। इसके पीछे गुरु ने आज्ञा दी कि हरिनाम का कीर्तन करो, अब हम शरीर छोड़ते हैं। यह कहकर गुरु नानक एक

चादर ओढ़कर समाधि में बैठ गये और प्राणायाम से अपने प्राणों को सिर में चढ़ाकर शरीर छोड़ दिया। गुरु नानक को मुसलमान और हिन्दू दोनों ही मानते थे। इसलिये उनमें आपस में झगड़ा होने लगा कि इनके शरीर को जलाया जाय या गाड़ा जाय। जब अंगद ध्यान से उठे तो उन्होंने झगड़े को सुनकर गुरु नानक के ऊपर से चादर उठाई। सबने देखा कि चादर के नीचे फूलों का एक ढेर है। हिन्दू मुसलमानों ने आधी आधी चादर ले ली। हिन्दूओं ने उसे जला दिया और मुसलमानों ने उसे गाड़ दिया।

गुरु नानक के पीछे अंगद ही गुरु हुए। गुरु अंगद मूँज की रस्सी बटकर अपना निर्वाह किया करते थे। सिक्ख लोग जो उनकी भेंट करते थे उसकी आमदनी से गुरु अंगद ने एक लंगर खोल दिया। इस लंगर में सबको खाना मिलता था और बिना ऊँच नीच का भेद किये हुए सब एक ही पंक्ति में बैठ कर खाते थे। यह लंगर आज तक सिक्खों में चला आता है। गुरु अंगद ने ही गुरुमुखी अक्षरों को चलाया था और गुरुमुखी भाषा में गुरु नानक के जीवन की घटनाएँ लिखी थीं।

२—श्रीचन्द

श्रीचन्दजी गुरु नानक के सब से बड़े पुत्र थे। ये योग साधन में सिद्ध हो गये थे। जब गुरु नानक ने शरीर छोड़ दिया तो गुरु अंगद श्रीचन्द के पास आये।

गुरु अंगद—हे गुरु-पुत्र, आप गुरु के ही समान हैं इसलिये गुरु गद्दी पर बैठ कर सिक्खों को उपदेश करो।

श्रीचन्द—हे स्वरूप, मुझे तो सब एक ही मालुम होते हैं, फिर गुरु और शिष्य को अलग अलग समझ कर उपदेश कैसे करूँ! मेरा मन तो अखंड आनन्द में मग्न है। उससे भिन्न नहीं होता। गुरु कृपा से आप में ऐसी शक्ति है कि आप अपनी इच्छानुसार मन को समाधि या संसार में लगा सकते हो। इसलिये संसार के लोगों को आप ही उपदेश कीजिये।

ऐसा कह कर श्रीचन्दजी वन को चले गये। अर्जुन नामक पेड़ की एक डाली काट कर एक जगह गाड़ दी और उससे पीठ लगा कर समाधि में बैठ गये। कहते हैं कि उस डाली ने पृथ्वी में जड़ पकड़ ली और वह बड़ा पेड़ होगया। श्रीचन्दजी पाँच पाँच, सात सात दिन में समाधि से उठते थे और उस समय यदि कोई सिक्ख कुछ लाता तो उसमें से थोड़ा सा खा लेते थे, नहीं तो फिर समाधि में बैठ जाते थे। श्रीचन्दजी सबसे 'हे स्वरूप' कह कर ही बातें करते थे, क्योंकि उनको सब भगवान् के ही स्वरूप मालूम होते थे। श्रीचन्दजी लगभग १५० वर्ष तक जीवित रहे। इनके सामने सिक्खों के छै गुरु हो गये थे। जिन सिक्खों ने श्रीचन्दजी से योग-साधना सीखकर साधु होकर रहना ठीक समझा वे ही सिक्खों में उदासी साधु कहलाए।

एक बार जब श्रीचन्दजी समाधि से उठे तो उन्होंने पास बैठे हुए एक शिष्य से कहा कि कहीं से थोड़ा सा गुड़ लाओ। वह

सिक्ख पास के एक गाँव में एक बनिये के पास गया।

सिक्ख—भाई, गुरुजी को थोड़े से गुड़ की आवश्यकता है।

बनिया—भाई, गुड़ तो है नहीं।

सिक्ख—क्या तुम थोड़े से गुड़ के लिये इन्कार करते हो ? कोठे के कोठे तो गुड़ से भरे पड़े हैं।

बनिया—वह गुड़ नहीं मिट्टी है। भला वह क्या गुरुजी के योग्य है !

वह सिक्ख श्रीचन्दजी के पास आया और बोला।

सिक्ख—महाराज, बनिया गुड़ नहीं देता। कोठे के कोठे गुड़ से भरे पड़े हैं परन्तु वह कहता है कि वह मिट्टी है।

श्रीचन्द—तुमने क्या उन कोठों को खोलकर देखा था ?

सिक्ख—नहीं, खोल कर तो नहीं देखा।

श्रीचन्द—फिर भाई तुम उस बनिये को झूँठा क्यों समझते हो ? सम्भव है कि सच ही उसके पास गुड़ न हो, सब मिट्टी ही हो गया होगा।

यह कह कर श्रीचन्दजी फिर समाधि में बैठ गये। दूसरे दिन जब बनिये ने कोठे खोले तो देखा कि सचमुच उसका गुड़ बिगड़ कर मिट्टी हो गया है। उसने अपने घर के लोगों को बुलाकर कहा कि भाई, अब इस गाँव से चल दो, क्योंकि यहाँ ऐसे योगी महात्मा रहते हैं कि जो कहते हैं, वह सच ही हो जाता है। कल को उन्हों ने और भी कोई शाप दे दिया तो मुश्किल हो जायगी। यह सोच कर बनिया वहाँ से भाग गया। जब श्रीचन्दजी समाधि से उठे तो

सिक्खों ने सब हाल कहा। श्रीचन्दजी को दुःख हुआ, उन्होंने उस बनिये को अपने पास बुलाया।

श्रीचन्द—भाई, मैंने तुमको शाप नहीं दिया था। मैंने तो सहज स्वभाव से ही यह कहा था कि तुमको झूँठा नहीं समझना चाहिये, जो तुम कहते हो वह ठीक होगा। मुझे यदि मालूम होता कि तुमने झूँठ ही कहा है, तो मैं कुछ नहीं कहता।

बनिया—महाराज, हम संसारी आदमी हैं। अगर मैंने झूठ बोला, तो उसके लिये मुझे क्षमा कीजिये। परन्तु जो स्वभाव पड़ गया है, वह एक साथ नहीं बदलता। फिर कोई भूल होगई, तो आप के सहज स्वभाव से ही कुछ कह देने में हमारा नाश हो जायगा। आप सत्यवादी हैं, जो भूल से भी मुख से निकल जायगा, वह सत्य हो जायगा।

श्रीचन्द—अच्छा, अब हम तुम्हें आशीर्वाद देते हैं कि अब हमारे या हमारे वंश के किसी आदमी के कुछ भी कहने से तुम्हें कभी कोई दुःख न होगा। अब तुम फिर अपने घर लौट आओ।

बनिया (पैरों में पड़ कर)—महाराज, आपकी बड़ी कृपा है। हम आपकी आज्ञा अवश्य पालन करेंगे। परन्तु अभी शुक्र तारा डूब रहा है। जब वह आकाश में निकल आवेगा, तब हम लोग गाँव में आ जावेंगे।

श्रीचन्द—शुक्र के डूबने निकलने से कुछ लाभ हानि नहीं होती। फिर भी यदि तुमको डर है, तो शुक्र डूबे आने का

दुःख हम अपने ऊपर लेते हैं।

कथा है कि यह कहते ही श्रीचन्द के बाल सफेद होगये और गिरने लगे। श्रीचन्दजी शुक्र के डूबने निकलने से कुछ हानि नहीं समझते थे। इसलिये उनको कुछ हानि नहीं होनी चाहिये थी। परन्तु यदि उनको कुछ हानि नहीं होती तो बनिये को उनकी बात पर विश्वास नहीं होता। जब उसी के सामने बाल सफेद होगये तो उसने समझा कि अब शुक्र का दुःख उसको नहीं हो सकता और वह फिर गाँव में लौट आया।

एक बार श्रीचन्दजी पेशावर गये। वहाँ एक बनिया भानाराय रहता था। वह श्रीचन्दजी के पास आया और कहने लगा—

भानाराय—महाराज, मेरे पिता घर बार छोड़ कर सन्यासी होना चाहते हैं। किसी के कहने से नहीं मानते। यदि आप समझावें तो अवश्य मान जायेंगे।

श्रीचन्द—अच्छा उनको हमारे पास लाना, हम उनके मन का भाव देखेंगे।

भानाराय ने पिता से जाकर कहा कि आपको श्रीचन्दजी ने बुलाया है। पिता ने समझा कि श्रीचन्दजी तो आप ही सन्यासी हैं। वे मुझे गृहस्थ में रहने का उपदेश नहीं देंगे। इसलिये वह बेखटके चला आया।

पिता—महाराज, मैं आगया हूँ। मेरे लिये क्या आज्ञा है?

श्रीचन्द—हे स्वरूप, तुम पहिले एक रात वन में रह कर आओ। जो कुछ हाल वहाँ देखो, वह हम से कहना।

पिता—जो आज्ञा।

दूसरे दिन वह फिर श्रीचन्दजी के पास आया।

श्रीचन्द—कहो स्वरूप, क्या देखा ?

पिता—महाराज, मैं एक पेड़ के नीचे जाकर बैठ गया। उस पर एक कबूतर और कबूतरी रहते थे। वे मेरे आगे सूखी लकड़ियाँ ला ला कर गिराने लगे। पहिले तो मेरी समझ में कुछ न आया। थोड़ी देर पीछे उन्होंने कहीं से जलती लकड़ी लाकर रख दी। तब मैंने समझा कि जाड़ा बहुत होने के कारण उन्होंने यह किया है। मैंने लकड़ियाँ बटोर कर उनमें आग रख दी और ध्यान करने को बैठ गया।

श्रीचन्द—फिर क्या हुआ ?

पिता—एकएक पट पट का शब्द हुआ। मेरा ध्यान छूट गया। मैं आँखें मलता हुआ उठा तो देखा कि कबूतर और कबूतरी दोनों आग में गिर कर मर गये हैं। मैंने उनको निकाला परन्तु वे मर चुके थे। जब वे मर ही गये, तो मैंने उनको फिर भून कर उनका मांस खा लिया, क्योंकि मुझे भूख भी थी और सरदी भी बहुत पड़ रही थी।

श्रीचन्द—अच्छा तुम अब नगर में जाओ और घर घर से भीख माँग कर लाओ। जो हाल देखो, वह हम से कहो।

पिता—जो आज्ञा।

जब वह भीख लेकर लौटे तो श्रीचन्द ने पूछा।

श्रीचन्द—कहो स्वरूप, क्या देखा ?

पिता—महाराज, एक बड़ी अद्‌भुत बात देखी। एक साधु नंगा बेहोश सा खड़ा था। एक गृहस्थी ने आकर कहा कि यहाँ से गृहस्थी स्त्रियाँ निकलती हैं। तुम रास्ते में नंगे क्यों खड़े हो परन्तु उस साधु ने कुछ नहीं सुना। तब उस गृहस्थी ने उसे पीटा और उसको घसीट कर एक ओर डाल दिया। कंकड़ों की रगड़ से उस साधु के शरीर से खून निकलने लगा, परन्तु फिर भी साधु ने कुछ न कहा। वहीं पड़ा रहा।

श्रीचन्द—फिर क्या हुआ?

पिता—इतने में एक दूसरा आदमी आया। साधु के घाव देख कर उसको दया आई। उसने उनको धोकर उन पर दवा लगा कर पट्टी बाँध दी, परन्तु साधु फिर भी जैसा का तैसा पड़ा रहा। इस दयालु मनुष्य को आशीर्वाद देने की इच्छा भी उसने प्रकट नहीं की।

श्रीचन्द—हे स्वरूप, तुम समझ लो। गृहस्थी का धर्म तो उन कबूतर कबूतरी के समान है, जिन्होंने अपना प्राण देकर भी तुम्हारा उपकार किया। सन्यासी का धर्म इस साधु के समान है जो सुख दुख में एकसा रहा। न तो दुख देने वाले को बुरा समझा और न सुख देने वाले को आशीर्वाद ही दिया। अब तुमको जो अच्छा लगे, उसे ग्रहण करो।

पिता—महाराज, आप के उपदेश से मेरी आँखें खुल गईं। मुझे तो कबूतर वाला धर्म ही अच्छा लगता है।

भानाराय—(बहुतसा द्रव्य श्रीचन्द के सामने रख कर) महाराज, आपने मेरा बड़ा उपकार किया है। अब यह भेंट स्वीकार कर, मुझे कृतार्थ कीजिये।

श्रीचन्द—हे स्वरूप, हम जंगल के रहने वाले इसका क्या करेंगे ? इसे तुम माँगने वालों में बाँट दो।

एक बार सिक्खों के पाँचवें गुरु अर्जुनजी महाराज श्रीचन्दजी से मिलने गये।

गुरु अर्जुन—महाराज, अब तो आप जीवन मुक्त (सिद्ध) होगये। अब आपके लिये जैसा कपड़ा पहिनना है वैसा ही न पहिनना है। जैसा नगर में रहना है वैसा ही जंगल में रहना है। इसलिये अब आप नगर में चल कर मन्दिर में रहिये।

श्रीचन्द—हे स्वरूप, जो मकान के ऊपर चढ़ते हैं, उनको गिरने का भय हो सकता है। जो धनी हों, उनको चोर का भय होगा, परन्तु जो पृथ्वी पर रहे, निर्धन हो, सुख दुःख जिसको एकसे हों, उसको क्या भय होगा ? फिर मैं इस निर्भय रास्ते को छोड़ कर भय के रास्ते पर क्यों चलूँ ?

गुरु अर्जुन—अब तो महाराज, आप सिद्ध हो गये। अब आपको तप करने की क्या आवश्यकता है ? आपके लिये अब कहीं भय नहीं है।

श्रीचन्द—हे स्वरूप, यह ठीक है कि मुझको तप की आवश्यकता नहीं, परन्तु फिर भी मैं तप करता हूँ, क्योंकि मेरे तप का

फल मेरे सिक्खों को मिलता है। दूसरे यदि मैं अब फिर नगर में रहने लगूँ, तो मेरे सिक्ख विना सिद्ध हुए ही झूँठा अभिमान करके नगर में रह कर सुख के लोभ से पाप करने लगेंगे। इसलिये मैं यहीं रह कर तप करता हूँ। आप नगर में ही वास कीजिये। मुझे यहीं रहना उचित है।

सिक्खों के छठे गुरु हरगोविन्द साहब हुए हैं। इनके बड़े पुत्र का नाम गुरुदत्ता था। गुरुदत्ता ने श्रीचन्द की बड़ी प्रशंसा सुनी थी। परन्तु उनके दर्शन नहीं किए थे। गुरुदत्ता ने अपने पिता गुरु हरगोविन्द से कहा "महाराज, जिन श्रीचन्द जी की आप इतनी प्रशंसा करते हैं, उनके दर्शन करा दीजिये।" गुरु हरगोविन्द गुरुदत्ता को लेकर श्रीचन्दजी के पास गये। श्रीचन्दजी उसी समय समाधि से उठे थे। उन्होंने देखते ही गुरुदत्ता को गले से लगा लिया। गले से लगाते ही गुरुदत्ता को पूरा ज्ञान हो गया और उसी समय उसकी समाधि लग गई।

श्रीचन्द—मुझे बड़ी चिन्ता थी कि मेरे शरीर छोड़ने पर कौन उन सिक्खों को, जो मुझ पर विश्वास करते हैं, साधन का उपदेश देगा। यह सामर्थ्य मैंने गुरुदत्ता में ही देखी है। गुरुदत्ता, मैं अब तक तुम्हारी ही राह देख रहा था।

गुरु हरगोविन्द—महाराज, आपने गुरुदत्ता को तो यह काम सौंप दिया। फिर सिक्खों की कौन सँभाल करेगा ?

श्रीचन्द—हे स्वरूप, गुरुदत्ता का पुत्र हरराय गुरुदत्ता के ही समान है। तुम्हारे पीछे वही गुरु होगा।

श्रीचन्द ने अपने चेलों को बुलाकर कहा कि अब आगे से गुरुदत्ता से ही पूछकर साधन करो और इन्हीं को गुरु समझो। यह कहकर श्रीचन्द जी समाधि में बैठ गये और उन्होंने अपने श्वास को ऊपर चढ़ाकर योग-विद्या से शरीर छोड़ दिया।

गुरुदत्ता जी ने एक बड़े गहरे वन में एक खोह में अपना आसन जमाया। इनके मुख्य शिष्य बाबू, अलमस्त, गोविन्द और फूलजी हुए हैं। इन्होंने ही उदासी सम्प्रदाय को चलाया है।

३—गुरु रामदास

गुरु अंगद के चेले गुरु अमरदास सिक्खों के तीसरे गुरु हुए। गुरु अमरदास गुरु अंगद के इतने भक्त थे कि रोज़ सवेरे उठकर गुरु अंगद के लिये स्नान करने को नदी से पानी लाते थे। उस समय वे गुरु के स्थान की ओर पीठ नहीं करते थे वरन् उल्टे पैरों चलकर नदी के किनारे पहुँचते थे। बीच-बीच में ठोकर खाकर गिर पड़ते थे, परन्तु फिर भी गुरुद्वारे की ओर पीठ नहीं करते थे। गुरु अमरदास के पीछे उनके दामाद रामदास सिक्खों के चौथे गुरु हुए। गुरु अमरदास के दो पुत्र मोहनचन्द और मेहरचन्द भी थे। परन्तु उनको गद्दी नहीं दी गई।

गुरु रामदास बचपन से ही बड़े सीधे स्वभाव के थे। मोहन चन्द और मेहरचन्द उनसे ईर्ष्या करते थे। परन्तु रामदास सदैव उनसे प्रेम करते थे। एक बार तीनों वन में सैर करने गये।

रास्ते में एक पानी की पोखर पड़ती थी। मोहनचन्द ने रामदास को धक्का देकर उसमें गिरा दिया औरआप दोनों भाई सैर करने को चल दिये। रामदास किसी प्रकार से पोखरे के बाहर निकल आये और कपड़े निचोड़कर वहीं जा पहुँचे, जहाँ वे दोनों भाई थे। रामदास ने न तो कुछ क्रोध किया और न उनको यह शर्म मालूम हुई कि लोग उनके भीगे हुए कपड़ों पर हँसेंगे। उनका भाव ऐसा ही बना रहा जैसे कि कोई बात हुई हीनहीं थी। जब तीनों घर पर लौटे तब भी रामदास ने किसी से कुछ नहीं कहा। परन्तु गुरु अमरदास को किसी प्रकार मालूम हो गया। उन्होंने तीनों को बुलाया।

गुरु अमरदास—क्यों रे, आज वन में क्यों ऊधम मचाया था?

मोहनचन्द—कुछ नहीं पिताजी, वन में सैर करने गये थे।

गुरु अमरदास—क्यों रामदास, क्या बात थी?

रामदास—कुछ नहीं गुरुजी, खेलते थे।

गुरु अमरदास—हमको सब मालूम है। क्यों मोहनचन्द तुमने रामदास को पोखर में क्यों ढकेला था?

मोहनचन्द—पिताजी, रामदास क्या हमको छोड़ देते हैं? जब इनका दाँव पड़ता है तो ये भी हमको तंग करते हैं।

गुरु अमरदास—झूँठा। रामदास की भलमन्साहत देखो कि अब भी तुम्हारी शिकायत नहीं की। और क्यों मेहरचन्द, तुमने भी रामदास की सहायता नहीं की।

मेहरचन्द—मुझसे दोष हुआ, क्षमा कीजिये।

गुरु अमरदास—मैं क्या क्षमा करूँ ? तुम दोनों रामदास से क्षमा माँगो ।

मेहरचन्द—भाई रामदास, क्षमा करो ।

रामदास—भाई, मैंने तो तुमको पहिले ही क्षमा कर दिया है ।

मोहनचन्द—हम क्षमा क्यों माँगें ? क्या रामदास ऐसा नहीं करते ?

गुरु अमरदास—यदि तुम गुरु की आज्ञा को नहीं मानते, तो गुरु के पन्थ से निकल जाओ ।

रामदास—गुरुजी, इनको क्षमा कीजिये । ऐसा कठोर दंड न दीजिये । कुछ समय पीछे ये आप ही समझ जायँगे ।

गुरु अमरदास—रामदास, तू धन्य है । जिसने तुझको दुख दिया, तू उसी के लिये गिड़गिड़ाता है । परन्तु तू दुखी मत हो । हमने मोहनचन्द को उसकी भूल के लिये दंड दिया है कि जिससे उसका अभिमान जल्दी ही दूर हो जाय ।

जब रामदास गुरु हो गये, तब एक दिन मोहनचन्द उनके पास आया और उनके पैरों में पड़ गया ।

गुरु रामदास (मोहनचन्द को गले लगा कर)—प्यारे मोहनचन्द, यह तुम क्या करते हो ? आज बड़ा शुभ दिन है कि तुम फिर लौट आये ।

मोहनचन्द—गुरु, मुझे क्षमा करो । मेरा सब अभिमान दूर हो गया । मुझे फिर पन्थ में सिक्ख बनाकर कृतार्थ करो ।

गुरु रामदास—मैंने तो तुम्हें क्षमा उसी दिन कर दिया था । यदि तुम्हारे मन में पन्थ की लगन होती तो भला फिर

कौन रोक सकता है। भाई, सबसे प्रेम करो। बस यही धर्म का सार है। जिसने अभिमान जीत लिया, उसने संसार जीत लिया। अब तुम शान्त हो, दुःखी मत हो। और भगवान का भजन कर, सुख से धर्मात्माओं के समान जीवन बिताओ।

कहते हैं कि एक बार बादशाह अकबर लाहौर आये थे। वहाँ गुरु रामदास जी से इनकी भेंट हुई। चलते समय बादशाह बोले—

बादशाह अकबर—कहिये गुरुजी, मैं आपकी क्या सेवा कर सकता हूँ ?

गुरु रामदास—बादशाह, तुम्हारे यहाँ आने से सब चीज़ों की बिक्री बढ़ गई थी, जिससे उनका मूल्य भी बढ़ गया था। जब तुम चले जाओगे तो मूल्य फिर घट जायगा। एक साथ मूल्य घटने से बेचने वालों को घाटा होगा। इसलिये यहाँ के लोगों का एक साल लगान व महसूल छोड़ दिया जाय।

बादशाह अकबर—गुरुजी, आपको दीनों की ही चिन्ता है। आपने दूसरों के लिये ही माँगा यह आपका बड़प्पन है। आपकी यह बात तो स्वीकार ही है। इसके सिवाय आपको सिक्ख मन्दिर बनाने के लिये ज़मीन सरकार की ओर से मिलेगी।

कहते हैं कि यह ज़मीन वही है जिसमें अब अमृतसर का मन्दिर बना हुआ है। जब ज़मीन को खुदवाया गया तो उसमें एक पुराना तालाब निकला और उसमें पानी का स्रोत (सोता) निकला। पानी बड़ा मीठा था। इसलिये उसका नाम

अमृतसर (अमृत का तालाब) पड़ा। इसी में गुरु रामदास ने हरि मन्दिर बनवाना आरम्भ किया और उनके पीछे गुरु अर्जुनदास ने उसको पूरा किया और फिर मन्दिर में गुरु ग्रन्थ साहब (आदि ग्रन्थ) स्थापित किया। अब वह मन्दिर भारतवर्ष के प्रसिद्ध स्थानों में से है और सिक्खों का भारी तीर्थ है। वह बना हुआ भी बड़ा सुन्दर है। सब धर्मों के लाखों मनुष्य उसको देखने जाया करते हैं।

४—गुरु हरगोविन्द

गुरु हरगोविन्द सिक्खों के छठे गुरु थे। पाँचवें गुरु, अर्जुन ने तीन बड़े काम किये थे। एक तो ग्रन्थ साहब का संग्रह किया था। दूसरा अमृतसर का मन्दिर पूरा किया। तीसरा काम यह था कि गुरु अर्जुन ने सिक्खों को घोड़ों का व्यापार करने की आज्ञा दी और गुरु भी घुड़सवार नौकर रखने लगे। इस प्रकार सिक्ख फ़ौज की नींव पड़ी।

गुरु हरगोविन्द ने इस तीसरे काम को और बढ़ाया। गुरु हर गोविन्द ने सिक्खों को फ़ौजी शिक्षा देने के लिये आप ही मुसलमानी फ़ौज में नौकरी की और युद्ध विद्या सीखी। इन्होंने सिक्खों की फौजें भी बनाईं जिससे कई बार मुसलमानों से लड़ाई भी हुई! इस प्रकार उस राज्य शक्ति की जड़ जमी जो गुरु गोविन्दसिंह के समय में इतनी बढ़ गई थी। गुरु

हर गोविन्द ने तो फ़ौजें ही बनाई थीं परन्तु गुरु गोविन्दसिंह ने प्रत्येक सिक्ख को ही सिपाही बना दिया।

गुरु हरगोविन्द भगवद्-भजन में बहुत बढ़े-चढ़े थे, परन्तु फिर भी शिकार खेला करते थे जिससे कि सिक्खों में क्षत्रियों का भाव पैदा हो। एक बार अलमस्त ने पूछा—

अलमस्त—यदि ढीठता क्षमा हो तो एक बात पूछूँ।

गुरु हरगोविन्द—तुम निर्भय होकर पूछो, गुरु से डरने की क्या आवश्यकता है? गुरु तो पिता के समान है।

अलमस्त—महाराज, आपकी शिक्षा है कि सब जीवों पर दया करनी चाहिये। फिर आप शिकार के लिये बाज़ छोड़ा करते हैं और वह पक्षियों को मारता है। क्या यह ठीक है?

गुरु हरगोविन्द—तुम इसका भेद नहीं जानते। हमारा बाज़ उन्हीं पक्षियों को मारता है जिन्होंने पहिले किसी पक्षी को मारा हो। निर्दोष पक्षियों की तरफ़ वह आँख उठाकर देखता भी नहीं।

अलमस्त—भला ऐसा कैसे हो सकता है?

गुरु हरगोविन्द—परीक्षा कर लो।

अन्त में बाज़ एक पक्षी के ऊपर छोड़ा गया। अलमस्त उस बाज़ के साथ साथ दौड़े। जंगल में घुस कर उन्होंने देखा कि एक पेड़ पर बाज़ बैठा है, उसके चारों ओर बहुत से पक्षी बैठे चहचहा रहे हैं परन्तु वह किसी को नहीं पकड़ता। केवल वही पक्षी जिस पर वह छोड़ा गया था मरा हुआ नीचे पड़ा था।

अलमस्त लौटकर गुरु के पास आये और सब हाल कहा ।

गुरु हरगोविन्द——जिस पक्षी पर हमने बाज़ छोड़ा था उसने पहिले एक चिड़िया मारी थी। देखो बाज़ अन्य पक्षियों को नहीं सताता है ।

एक बार गुरु हरगोविन्द शिकार खेलने को जंगल में घुस गये और साथियों को बाहर ही रहने को कह गए। अलमस्त भी उनके पीछे पीछे चले गये । उन्होंने जाकर देखा कि गुरु एक स्थान पर बैठे ओंकार शब्द का जप कर रहे हैं। और उनके चारों ओर बहुत से जानवर जमा हो कर सुन रहे हैं । शिकारी जानवर भी शिकार करना भूल कर उस शब्द को सुन रहे थे ।

गुरु हरगोविन्द का धर्मोपदेश ऐसा प्रभावशाली होता था कि सुनने वालों का हृदय पवित्र हो जाता था । बुद्धु नाम का एक चोर उनकी सभा में आया । उस पर उपदेश का ऐसा प्रभाव पड़ा कि उसको मूर्छा आ गई । फिर उसको सिक्ख धर्म में इतनी प्रीति होगई कि जहाँ कहीं भी सुखमणी ग्रन्थ का पाठ होता हुआ सुन लेता वहीं सारे काम छोड़ कर खड़ा हो जाता था ।

५—गुरु हरराय

गुरु हरराय गुरु हरगोविन्द के पोते और गुरु दत्ताजी के लड़के थे। ये सिक्खों के सातवें गुरु थे। ये बड़े धर्मात्मा और शान्ति स्वभाव के थे। इनको भी भाग्यवश लड़ाई में भाग लेना

ही पड़ा। जब देहली के बादशाह शाहजहाँ के लड़कों में देहली की गद्दी के लिये लड़ाई हुई तो उस समय गुरु हरराय ने शाहज़ादे दाराशिकोह की सहायता की थी। शाहज़ादा दाराशिकोह और गुरु हरगोविन्द में मित्रता थी। परन्तु जीत हुई औरंगज़ेब की। जब औरंगज़ेब देहली की गद्दी पर बैठ गये, तो उसने गुरु हरराय को दरबार में बुलाया। गुरु हरराय आप तो दरबार में नहीं गये, परन्तु अपने लड़के रामराय को भेज दिया। रामराय से बादशाह औरंगज़े तने प्रसन्न हुए कि उनको देहरादून में जागीर दे दी। वहाँ पर रामराय की गद्दी अब तक चली आती है। इस प्रकार अलग गद्दी बनाना गुरु हरराय को अच्छा न लगा। इसलिये उन्होंने अपने पीछे गुरु पद पर छोटे लड़के हरकिशन को नियत किया

गुजरात देश में एक सिक्ख बड़ा भक्त था। उसका यह नियम था कि कोई भी सिक्ख आता तो वह उसकी बहुत सेवा करता था। एक बार एक चोर सिक्ख का रूप धर कर उसके घर आया।

चोर—सत् श्री अकाल, भाई हम बड़ी दूर से आ रहे हैं, तुम भी सिक्ख हो, कुछ खाने को दो। बड़ी भूख लग रही है।

सिक्ख—सिक्ख सिक्ख सब भाई हैं। जो मेरा है वह तुम्हारा है। आओ बैठो। कुछ सुस्ता लो। इतने में तुम्हारे लिये खाने को लाता हूँ। जब तक मेरा पुत्र यहाँ है। वह तुम्हारी सेवा करेगा।

यह कह कर वह सिक्ख बाज़ार से खाना लेने चला गया। यहाँ उस दुष्ट चोर ने उस सिक्ख के पुत्र और पत्नी को मार डाला और गहने उतार कर जेब में रख कर ले चला। रास्ते में उसे वह सिक्ख भी बाज़ार से लौटता हुआ मिल गया।

सिक्ख—यह क्या भाई, तुम कहाँ चल दिये? मैं तुम्हारे लिये खाना लाया हूँ। क्या तुम्हें वहाँ कोई तकलीफ़ हुई?

चोर—नहीं, तकलीफ़ नहीं हुई। मुझे बहुत ही आवश्यक काम याद आ गया। मैं उसे कर के अभी आता हूँ।

सिक्ख—भाई, अब तो बिना खाना खाए नहीं जा सकते हो।

चोर—उस काम में देर हो जायगी।

सिक्ख—जहाँ इतनी देर हुई थोड़ी और सही। सब गुरु जी भला करेंगे, परन्तु अब खाना खाये बिना नहीं जा सकते।

वह सिक्ख नहीं माना। चोर को बरजोरी पकड़ कर घर ले गया। चोर भी अधिक इसलिये न झगड़ा कि कहीं झगड़ा करने पर गहने निकल न पड़ें। वह इस ताक में रहा कि अवसर मिले तो हाथ छुड़ा कर भाग जाऊँ, परन्तु सिक्ख ने उसे ऐसा अवसर ही नहीं दिया। जब दोनों घर पहुँचे तो सिक्ख ने पुत्र और पत्नी को मरा पाया।

सिक्ख—भाई, यह क्या हुआ तुम्हारे पीछे इनको कौन मार गया?

चोर (पैरों में पड़कर) महाराज, मैं सिक्ख नहीं हूँ, चोर हूँ। मैंने ही धन के लालच से इनको मार दिया है। क्षमा करो।

सिक्ख—जो होना था सो हो गया। जिस धन के लोभ से तुमने इनको मारा है, उसे तुम ही ले जाओ और यहाँ से जल्दी भाग जाओ। अभी किसी को मालूम नहीं पड़ा है, मालुम पड़ जायगा तो तुम पकड़े जाओगे।

कुछ दिनों के पश्चात् गुजरात के सिक्ख गुरु के दर्शन करने को पंजाब आये। उनके साथ वह सिक्ख भी आया। जब गुरु हरराय को यह समाचार मिले, तो आप नगर से बाहर सिक्खों को लेने आये और उस धर्मात्मा सिक्ख को गले से लगाकर बोले—

गुरु हरराय—प्यारे सिक्ख, मुझे तुम्हारी सब बातें मालूम हैं। तुमने सिक्ख वेश का इतना आदर किया कि उस पुत्र और पत्नी के मारनेवाले चोर को भी क्षमा कर दिया। तुम, गुरु के प्यारे, धन्य हो।

सिक्ख (गद्‌गद् वाणी से आँखों में आँसू भरकर)—गुरु दयाल, आज आपने मेरे ऊपर इतना प्रेम किया है, तो मैं सत्य ही धन्य हूँ।

गुरु—प्यारे सिक्ख, कहो मैं तुम्हारी क्या सेवा करूँ?

सिक्ख—महाराज, यदि आप मुझ पर प्रसन्न हैं, तो उस चोर के पाप को क्षमा करके उसे स्वर्ग दीजिये, क्योंकि उसने सिक्ख का रूप धारण किया था। उस रूप की आप लाज रखनेवाले हैं।

गुरु—जब तुम्हारे समान भक्त उसके लिये शुभ कामना करता है, तो उसके स्वर्ग जाने में क्या सन्देह है? वह तो पहले

ही स्वर्ग में चला गया। परन्तु तुम कुछ अपने लिये तो माँगो।

सिक्ख—महाराज, जब आप ही मेरे हैं तो मैं और क्या माँगूँ? मुझे सब प्राप्त हैं।

गुरु—मेरे लाड़िले, तुम तो जीवित रहते हुए भी मुक्त हो, क्योंकि तुम्हारा हृदय बड़ा पवित्र है, और लोग भी, जो तुम्हारी कथा को पढ़ेंगे या सुनेंगे शुद्ध होकर संसार से उद्धार पावेंगे।

६—गुरु तेग़बहादुर

सिक्खों के आठवें गुरु हरिकिशनजी बालकपन में ही शरीर छोड़ गये। कहते हैं कि जब गुरु हरिकिशन चार वर्ष के ही थे तब ही से अपने पिता गुरु हरराय के साथ घंटों तक बैठकर भजन किया करते थे। गुरु हरराय ने अपने बड़े बेटे रामराय को गुरु नहीं बनाया और अपने पीछे हरिकिशन को ही गुरु होने का अधिकार दे गये थे। जब गुरु हरिकिशन मरने लगे तो उन्होंने कहा कि "बाबा बाकला मेरे पीछे गुरु होगा।" उस समय तेग़-बहादुर बाकला में रहते थे और भगवद् भजन में मग्न रहा करते थे। सिक्ख लोग बाकला पहुँचे और गुरु हरिकिशन की आज्ञा सुनाई।

सिक्ख लोग—महाराज, गुरु हरिकिशनजी ने आपको ही संगत सौंपी है। अब आप भेंट स्वीकार कीजिये।

तेग़बहादुर—भाई, मैं गुरु नहीं होना चाहता। मुझे तो भगवद् भजन करने दो। इस झंझट से अलग ही ठीक हूँ।

सिक्ख लोग—महाराज, यह आपके मानने न मानने की बात नहीं है। गुरु वही होंगे जिनको यह अधिकार सौंपा गया है।

माता नानकी—बेटा, सिक्खों की बात मानो। गुरु हरगोविंद पहिले ही कह गये हैं कि तुम एक दिन गुरु होओगे। वे अपने हथियार भी मुझे दे गये थे कि जिस दिन तुम गुरु होओ उस दिन मैं उन्हें तुमको दे दूँ। अब लो उन हथियारों को आज सँभालो।

सिक्ख लोग—माताजी लाइये। उन हथियारों को हम गुरुजी को पहिनाकर माथा टेकें। जब माता नानकी हथियार ले आई और सिक्ख लोग उन्हें पहिनाने लगे तो गुरु तेग़बहादुर बोले—भाई, तुम लोग मुझे हथियार क्यों पहिनाते हो? किसी बहादुर, शूर वीर को पहिनाओ। मैं तेग़बहादुर नहीं हूँ। मैं तो देग़बहादुर हूँ।

सिक्ख लोग—महाराज, बड़े लोग अपने मुँह से बड़े नहीं बना करते।

अन्त में सिक्ख लोग नहीं माने और उनको माथा टेककर गुरु माना। परन्तु उसी समय धीरमल, रामराय, अनिराय आदि लोग गुरु होने का दावा करने लगे। रामरायजी ने तो अलग गुरु गद्दी भी बना दी और उनके शिष्यों की गद्दी अब तक देहरादून में

है। कहते हैं कि एक पुरुष मक्खनशाह ने २१ अशर्फियाँ गुरुजी की भेंट करने का संकल्प किया था। जब वह पंजाब आया तो कई गुरु सुने। इसलिये उसने उन गुरुओं की जाँच करने का निश्चय किया। वह धीरमल आदि के पास गया और दस दस अशर्फ़ी भेंट की। सब ने ले लीं। जब वह गुरु तेग़बहादुर के पास आया तो यहाँ भी उसने यही किया।

गुरु तेग़बहादुर——मक्खनशाह, तुमने २१ अशर्फ़ियाँ भेंट करने का संकल्प किया था। अब तुम केवल दस अशर्फियाँ देकर ११ का बोझ अपने ऊपर क्यों रखते हो?

मक्खनशाह (पैरों में पड़ कर)——गुरु जी २१ अशर्फियाँ क्या मेरा सब धन दौलत ही आपका है। मुझे मालूम हो गया कि आप ही सच्चे बादशाह हैं। मैं धीरमल, अनिराय आदि के यहाँ गया। उन्होंने मेरे मन की बात को न जाना। आप सर्वज्ञ हैं, इसलिये आपने जान लिया। इसी बात को पहिचानने के लिये मैंने यह ढीठता की थी। क्षमा कीजिये।

गुरु तेग़बहादुर——मक्खनशाह, हम तुमसे नाराज़ नहीं हैं। तुम्हारी यह इच्छा थी कि तुम्हारे मन का भेद बताया जाय इसीलिये हमने बता दिया। जाओ अब गुरु के प्यारे बने रहो।

अब मक्खनशाह ने जगह जगह यह बात लोगों से कही और सब सिक्ख लोग गुरु तेग़बहादुर को ही गुरु मानने लगे। गुरु हरगोविन्द के समय से ही सिक्खों की फ़ौज बनने लगी थी। गुरु तेग़बहादुर ने उसके रहने के लिये करतापुर में किला भी बनवाया,

इससे उनके शत्रुओं को बादशाह के कान भरने का अवसर मिल गया। उन्होंने कहा कि गुरु तेग़बहादुर अपना ही राज्य स्थापित करना चाहते हैं। वे सच्चे बादशाह कहलाते हैं और अब किला भी बनवाने लगे हैं। बादशाह ने उनको देहली बुलवाया। जब गुरु जी देहली पहुँचे, तो वहाँ उनकी भेंट जयपुर के राजा से हुई। जयपुर के राजा ने बादशाह को समझाया कि तेग़बहादुर साधु आदमी हैं और वह पंजाब छोड़ कर मेरे साथ तीर्थ यात्रा करने को जाना चाहते हैं, आप उनके शत्रुओं की बात पर ध्यान न दीजिये। बादशाह ने यह बात मान ली। गुरु तेग़बहादुर राजा जयपुर के साथ बंगाल की ओर तीर्थ यात्रा को चल दिये। वे बहुत दिनों तक पटने में रहे। पटने में ही इनके प्रसिद्ध पुत्र गुरु गोविन्दसिंह का जन्म हुआ था। उन दिनों गुरु तेग़बहादुर भगवान् के भजन में ऐसे मग्न रहते थे कि वह जंगलों में चले जाते और कई कई दिन समाधि में रहते थे। जब पाँच छः वर्ष पीछे वे फिर पंजाब को लौटे तो आनन्दपुर एक नया शहर बसा कर रहने लगे। हरियाने (हाँसी, हिसार) के बहुत से लोगों को उन्होंने सिक्ख बनाया। और संगत दिन प्रतिदिन बढ़ने लगी। एक दिन काश्मीर से पंडित लोग गुरु तेग़बहादुर के पास आये।

पंडित लोग—गुरु जी, आज कल काश्मीर में सब हिन्दू मुसलमान हुए जाते हैं। आप रक्षा कीजिये। हम क्या करें?

गुरु तेग़बहादुर—भाई, मैं यहाँ शान्ति से रहता हूँ, भला मैं

काश्मीर की रक्षा कैसे करूँगा ?

पंडित लोग——महाराज, यदि आप भी इस समय रक्षा न करेंगे, तो कौन करेगा ? हम लोग तो आपकी शरण हैं ।

गुरु तेग़बहादुर——भाई, हिन्दु जाति ने पहिले बड़े पाप किये हैं । अब कोई बड़ा बलिदान (कुर्बानी) हो तो यह मामला शान्त होगा ।

गोविन्दसिंह——(जो वहीं बैठे थे) पिताजी, आप से बड़ा और कौन होगा ?

गुरु तेग़बहादुर——वाह बहादुर बेटे । तुमने ठीक कहा । अच्छा हम अपना ही बलिदान करेंगे । पंडितो, तुमसे यदि कोई मुसलमान होने को कहे, तो कह देना कि यदि तेग़बहादुर मुसलमान हो जायँगे, तो हम भी हो जायँगे ।

बादशाह से फिर लोगों ने तरह तरह की बुराइयाँ कीं । बादशाह ने गुरुजी को फिर बुला भेजा । उनके दिल्ली पहुँचने पर बादशाह ने पूछा ।

बादशाह——हमने आपकी बहुत प्रशंसा सुनी है । यदि आप धर्म गुरु हैं, तो कोई करामत दिखाइये !

तेग़बहादुर——करामत दिखाने वाले तो बाज़ीगर बहुत फिरते हैं, हमारी करामत तो केवल सत्य का पालन ही है ।

बादशाह——सत्य मुसलमानी धर्म है । क्या तुम उसको मानने को तय्यार हो ?

तेग़बहादुर——बादशाह, भूल करते हो । यदि सत्य केवल मुसल-

मानी धर्म में ही होता तो ख़ुदा दुनियाँ में तरह तरह के धर्म न होने देता। देखो, जो नास्तिक ख़ुदा को नहीं मानता, वह भी सुख से रह सकता है। सत्य है सदाचार में, दया में। चाहे कोई किसी मत का मानने वाला हो।

बादशाह—आप भी हमारी तरह बुतपरस्ती (मूर्ति पूजा) को नहीं मानते। फिर मुसलमान ही क्यों नहीं हो जाते?

गुरु तेग़बहादुर—आप ही क्यों मुसलमान होने को कहते हैं? देखिये, भिन्न भिन्न विचार रखते हुए भाई भाई साथ साथ रहते हैं। इसी तरह मुसलमान, सिक्ख, हिन्दु भिन्न भिन्न विचार रख कर भी भाई भाई की तरह रह सकते हैं।

बादशाह—जब कोई करामत नहीं दिखा सकते तो नया धर्म चलाने की हिम्मत कैसी हुई? कोई करामात दिखाइये।

जब बादशाह ने बहुत जिद्द की तो एक दिन गुरु तेग़बहादुर ने बादशाह से कहा, "देखो करामत यही है कि जिस तलवार का तुमको बड़ा भारी बल है, उसको मैं कुछ भी नहीं समझता। मेरे गले में एक काग़ज़ बँधा हुआ है, यह मंत्र है। इसके बल से मैं तुम्हारी तलवार से भी नहीं डरता। यह मंत्र मेरी रक्षा करने वाला है।" बादशाह ने समझा कि इस मंत्र की करामात से गुरु के ऊपर तलवार का घाव नहीं लगेगा। बस इस करामत की जाँच के लिये जल्लाद को हुक्म दिया गया। तलवार के लगते ही गुरु का सिर कट कर गिर पड़ा। यह देख कर सब घबरा गये। वह परचा खोला गया।

उसमें लिखा था "सिर दिया सार न दिया।" गुरु तेग़बहादुर के शरीर को सिक्खों ने जलाने के लिये माँगा परन्तु बादशाह ने इस डर से कि कहीं सिक्खों में जोश न फैल जाय उसे न दिया, और शरीर को पहरे में रखवा दिया। गुरु के दो चेले वहाँ थे। वे पहले अछूत जाति के थे, परन्तु गुरु ने उन्हें सिक्ख बना कर अपना भाई बनाया था। वे बाप बेटे थे। जब रात को आँधी मेह बहुत ज़ोर से आया और पहरे वाले भी सो गये उस समय बाप बेटे पहरे में घुस गये और गुरु के शरीर को उठा कर चलने लगे।

पिता—परन्तु पुत्र, यह शरीर हमको आनन्दपुर ले जाना है। जब पहरे वाले जागेंगे तब शरीर को यहाँ न देख कर हल्ला करेंगे और हम रास्ते में ही पकड़े जायेंगे। इसलिये हम में से एक यहीं सिर कटा कर पड़ रहे, तो बात छिपी रहेगी।

पुत्र—पिताजी ठीक है। आप प्रसन्नता से मेरा सिर काट कर यहाँ छोड़ दीजिये।

पिता—भला ऐसा कैसे हो सकता है? तू ही मुझे यहाँ छोड़ दे।

पुत्र—पिताजी आप जीवित रहेंगे तो पुत्र तो और हो जायेंगे परन्तु मुझे पिता फिर कहाँ मिलेगा?

पिता (आँसू भर कर)—बेटे, अभी तुम जवान हो, संगत की सेवा करने योग्य हो, मैं तो बूढ़ा हुआ। मेरे मरने में कुछ हानि नहीं है। में तुम्हें यह आशीर्वाद देता हूँ कि तू भी मेरे समान संगत की सेवा में प्राण देकर भाग्यशाली बने। अब जल्दी कर। देर का समय नहीं। पहरे वाले जाग पड़ेंगे।

पुत्र (आँसू भर कर)—पिताजी, यह असम्भव है।

जब पिता ने देखा कि पुत्र नहीं मानेगा तो एक साथ आप ही अपने गले में तलवार मार ली। सिर कट कर गिर पड़ा। पुत्र देखता का देखता ही रह गया। फिर धैर्य रख कर, गुरु के शरीर को लेकर आनन्दपुर पहुँचा।

७—गुरु गोविन्दसिंह

गुरु गोविन्दसिंह सिक्खों के दसवें गुरु थे। वे बड़े प्रतापी गुरु हुए हैं। इनके समय में सिक्खों का बल बहुत बढ़ गया था। अब यह केवल धार्मिक सम्प्रदाय ही नहीं रहा, वरन् सिक्खों का एक राज्य बन गया।

गुरु नानक का खेल भगवान की कथा करके प्रसाद बाँटना होता था परन्तु गुरु गोविन्दसिंह लड़कों की फ़ौज बना कर खेला करते थे। बचपन में ये बड़े नटखट थे। जब स्त्रियाँ घड़ों में पानी भर कर ले जाती थीं, तो ये दूर से ही ताक कर घड़े में गुल्ला मारते थे। घड़ा फूट जाता और वह स्त्री पानी से भीग जाती। सब लड़के हँस पड़ते। एक बार इनका निशाना चूक गया और गुल्ला उस घड़े के बदले स्त्री के सिर में लगा। इससे उसके सिर से ख़ून बहने लगा। गुरु गोविन्दसिंह को इतना दुःख हुआ कि फिर उन्होंने किसी के भी गुल्ला नहीं मारा।

जब गुरु तेगबहादुर देहली को गये थे तब जाने से पहिले

गुरु गोविन्दसिंह की कमर में तलवार बाँधकर उनको गुरु बना गये थे। गुरु तेगबहादुर के मरने के पीछे गुरु गोविन्दसिंह पहाड़ी स्थानों में रहने लगे। उनका समय शस्त्र विद्या सीखने में, शिकार खेलने में या भगवद् भजन करने में व्यतीत होता था। गुरु गोविन्दसिंह "जप जी" का पाठ सदैव करते थे। वे सोचा करते थे कि सिक्खों का बल किस प्रकार बढ़े! लगभग २० वर्ष की आयु तक उनका यही हाल रहा।

फिर किसी ने कहा कि यदि दुर्गा देवी का हवन किया जाय तो सिक्खों का भाग्य उदय हो। गुरु जी ने बनारस से एक विख्यात पंडित केशवदास को बुलाया। नैना देवी के पहाड़ पर कई महीने तक हवन होता रहा। परन्तु देवी ने दर्शन नहीं दिये।

गुरु गोविन्दसिंह——पंडितजी, देवीजी ने अभी तक तो दर्शन दिये नहीं।

केशवदास——देवी बलिदान माँगती है, बलि देते ही प्रकटेगी।

गुरु गोविन्दसिंह——पंडितजी आप बड़े श्रेष्ठ विद्वान् ब्राह्मण हैं। बलिदान के लिए आप से अच्छा और कौन मिलेगा। इसलिए आप तैय्यार हो जाइये। कल को आपका ही बलिदान दिया जायगा।

अब तो पंडितजी घबराये। उन्होंने उसी रात को भाग जाने का निश्चय किया। गुरु जी जानते थे कि पंडितजी भागेंगे। इसलिए उन्होंने उनको भागते हुए पकड़ लिया।

गुरु गोविन्दसिंह——क्यों पंडितजी, देवी के लिए बलिदान होने

से तो मुक्ति मिलेगी। फिर आप भागते क्यों हैं?

केशवदास——महाराज, क्षमा कीजिये। मैं ऐसा नहीं जानता था।

गुरु गोविन्दसिंह——तो आपको बलिदान की तभी तक सूझती है, जब तक दूसरे की जान पर बीते। अब तो समझ में आया कि जिसका बलिदान देते हो उसके मन की क्या दशा होती होगी!

केशवदास——समझ में आया, इस बार छोड़ दीजिये फिर कभी बलिदान का नाम भी न लूँगा।

गुरु गोविन्दसिंह——अच्छा आप जाइये। मैं आपको दुःख नहीं देना चाहता। ये रुपये रास्ते के खर्च और अपनी विदा के लेते जाइये।

प्रातःकाल होते ही गुरुजी ने बची बचाई सामग्री एक साथ ही हवन कुंड में डाल दी। एक साथ बहुत सी सामग्री पड़ने से अग्नि की लोय बहुत ऊँची उठी। दूर से सिक्खों ने इतनी ऊँची लोय देखकर समझा कि देवी प्रगट हो गई है। बस बहुत से सिक्खों की भीड़ इकट्ठी होगई। गुरु गोविन्दसिंह ने सिक्खों से कहा।

गुरु गोविन्दसिंह——मेरे सिक्खो, देवी ने मुझे स्वप्न में दर्शन दिये हैं। और यह कहा है कि जब तक पाँच प्यारों की बलि नहीं दी जायगी उस समय तक हवन पूरा नहीं होगा और सिक्खों का उद्धार न होगा। बोलो कौन माई का लाल पन्थ के लिये सिर देने को सामने आता है।

गुरु की ऐसी माँग सुन कर सन्नाटा छा गया। कोई न बोला।

गुरु गोविन्दसिंह——क्यों, क्या सब ही कायर हैं? कोई पन्थ के लिये बलि नहीं होगा?

दयाराम खत्री——सत् श्री अकाल! मेरा सिर पन्थ के लिये हाज़िर है।

गुरु दयाराम खत्री को एक तम्बू के भीतर ले गये। तम्बू में खड़ाके का शब्द हुआ और .खून की धार बह कर बाहर निकली। गुरु जी .खून में रंगी तलवार लेकर बाहर आये। बाहर सन्नाटा छाया हुआ था।

गुरु गोविन्दसिंह——अब दूसरा प्यारा कौन सिर देगा?

धरमसिंह जाट——इस दास का सिर सेवा के लिये स्वीकार किया जाय।

फिर गुरु धरमसिंह को तम्बू के भीतर ले गये। खड़ाके का शब्द हुआ। खून की धार निकली और गुरु खून में रंगी तलवार को लिये बाहर निकले और तीसरे प्यारे को माँगा। अब की बार हिम्मत कहार सामने आया। चौथी बार सहेवा नाई ने अपना सिर दिया। पाँचवीं बार मोहकम धोबी ने आगे क़दम बढ़ाया। जब पाँचवीं बार भी खड़ाका हुआ और .खून की धार बाहर निकली तो उसके कुछ देर पीछे गुरु गोविन्दसिंह उन पाँचों प्यारों को जीवित ही लेकर बाहर निकले। उनको जीवित देख कर सबको बड़ा आश्चर्य हुआ। और सबके मुख से बड़ी जोर से निकला "वाह गुरु, वाह गुरु।"

गुरु गोविन्दसिंह——मेरे सिक्खो, देखो ये गुरु के लाड़िले हैं।

इन्होंने जान बूझ कर अपने सिर पन्थ के लिये दिये थे। जब सिक्ख इनकी तरह पन्थ के लिये हँसते हँसते सिर कटाने के लिये तय्यार हों तो फिर सिक्खों के उद्धार में कितनी देर लगेगी ? क्यों तुम सब तैयार हो !

सब सिक्ख—सत् श्री अकाल ! गुरु और पन्थ के लिये जान हाज़िर है।

गुरु गोविन्दसिंह—सिक्खो, यह देवी का हवन तो केवल इसलिये किया गया था कि तुम लोगों को मालूम हो जाय कि देवी देवता के पूजने के बदले एक ईश्वर को ही पूजना ठीक है। मुझे किसी ने दर्शन नहीं दिया। यह सब तो तुम्हारे प्रेम की परीक्षा थी। तम्बू के भीतर तो बकरे का सिर कटता था। तुम समझते थे कि प्यारे का सिर अलग होता है। भला क्या गुरु अपने प्यारों का सिर काट सकता था। देखो, इन पाँचों प्यारों में सब जाति हैं। इससे समझ लो कि गुरु जाति का भेद नहीं करते। तुम्हारा पन्थ खालसा है। एक ईश्वर को पूजने वाला और एक जाति वाला है। बोलो वाह गुरु का खालसा।

सब सिक्ख ज़ोर से—वाह गुरु का खालसा।

गुरु गोविन्दसिंह—आज से तुम सब सिंह हुए। तुमको किसी का डर नहीं। आज से तुम केश रक्खो। केशों में कंघा रक्खो। हाथों में लोहे का कड़ा पहिना करो। कच्छ (जांघिया) पहिनो और धर्म की रक्षा के लिये सदैव अपने

पास कृपाण रक्खो। यही सिक्ख के चिन्ह होंगे। आपस में प्रेम करो। दीनों की रक्षा करो। जब आपस में मिलो तो "वाह गुरु की फतह" बोलो। खालसा पन्थ को ही गुरु समझो। ग्रन्थ साहब की आज्ञा पालन करो। खालसा गुरु का और गुरु खालसा का है। अब गुरु के प्यारे अमृत पियेंगे।

गुरु गोविन्दसिंह ने एक लोहे के कटोरे में पानी लिया और उसमें तलवार की नोक से शक्कर घोली और उसको सब प्यारों को पीने को दिया। प्यारे "वाह गुरु की फतह" बोलते जाते थे और कटोरे में से अमृत पीते जाते थे। फिर पाँचों प्यारों ने इसी प्रकार कटोरे में तलवार की नोक से शक्कर घोल कर गुरु को दी। और गुरु ने "वाह गुरु का खालसा" कह कर अमृत पिया और कहा "खालसा गुरु से और गुरु खालसा से होयँ, एक दूसरे के तावेदार होयँ।" फिर सब सिक्खों ने इसी प्रकार एक ही कटोरे से अमृत पिया। किसी ने जाति पाँति का भेद नहीं किया। बस उसी दिन से सिक्खों की कायापलट होगई। अब वह एक बहादुरों की फ़ौज होगई। एक गुरु की भक्ति से आपस का प्रेम बढ़ा और सिक्ख लोग खालसा को अपने घर बार से भी अधिक समझने लगे।

परन्तु सब जातियों को इस प्रकार मिलाना गुरु गोविन्दसिंह के पड़ोसी राजाओं को अच्छा न लगा। अब शूद्र वर्ण के लोग भी अपने नाम के आगे "सिंह" लगाने लगे। यह पहाड़ी राजपूत राजाओं से सहन नहीं हुआ। उन्होंने अवसर पाकर एक साथ

सिक्खों पर चढ़ाई कर दी परन्तु जीत सिक्खों की ही हुई। गुरु गोविन्दसिंह ने भी यह उचित समझा कि सिक्खों को युद्ध की शिक्षा दी जाय। उन्होंने कई किले भी बनवा डाले और आनन्दपुर में हथियार बनाने का कारख़ाना भी बनवाया। इसके पीछे इन राजाओं से और मुसलमानों से लड़ाई हुई। उस समय राजा लोग गुरु की शरण में आये। गुरु ने उनके पहिले वैर का विचार नहीं किया और शरण आये की रक्षा करना धर्म समझ कर उनकी सहायता की। मुसलमान हार गये परन्तु इससे मुसलमानों और सिक्खों में भी लड़ाई छिड़ गई। एक बार गुरु गोविन्दसिंह मुखवाल के क़िले में घिर गये। उनके साथ उनकी माता गुजरी और चारों पुत्र, अजीतसिंह, जुझारसिंह, फतेहसिंह और ज़ोरावरसिंह, भी थे। मुसलमानों ने क़िले का घेरा डाल दिया। दिन पर दिन रसद कम होने लगी। मात गुजरी चिन्ता करने लगीं कि गुरु का वंश कैसे बचेगा?

माता गुजरी—बेटा गोविन्दसिंह, तुम इन मुट्ठी भर सिक्खों को लेकर कब तक इस फ़ौज से लड़ोगे? अब तो क़िले में रसद भी कम हो रही।

गुरु गोविन्दसिंह—तो माता जी, क्या करना उचित है? क्या कायरों की तरह से भाग जायँ?

माता गुजरी—बेटा, मुझे तो गुरु-वंश की चिन्ता है। दूसरे बहुत से सिक्ख भी उकता गये हैं। शत्रु से मेल क्यों न कर लो?

गुरु गोविन्दसिंह—क्या मेल करने से शत्रु गुरु-वंश को जीता छोड़ देंगे ? इसका भला क्या विश्वास है ?

माता गुजरी—इससे तो छिप कर निकल जाना ही अच्छा है। जब सिक्ख लोग साथ छोड़ देंगे, तो क्या करोगे ?

गुरु गोविन्दसिंह—जो कल साथ छोड़ें सो आज छोड़ दें। यदि मैं अकेला भी रह जाऊँगा तो भी मुझे डर नहीं है। जो यह समझते हों कि क़िले से चले जाने से मुसलमान उनको छोड़ देंगे, तो यह उनकी भूल है। मैं सब सिक्खों को बुलाता हूँ और उनसे पूछता हूँ।

सब सिक्ख बुलाये गये और उनसे पूछा गया कि कौन जाना चाहता है।

बहुत से सिक्ख—अब लड़ना तो जान बूझ कर आग में कूदना है।

गुरु गोविन्दसिंह—सिक्ख धर्म में कायरों के लिये स्थान नहीं है। जो जाना चाहते हैं चले जायँ। परन्तु काग़ज़ पर लिख कर देते जायँ कि उन्होंने सिक्ख धर्म छोड़ दिया है। बहुत से सिक्ख लोगों ने लिखकर दे दिया। केवल चालीस सिक्ख रह गये।

माता गुजरी—बेटा, मुझे भी आज्ञा दो कि मैं तुम्हारे पुत्रों को ले जाकर कहीं रक्षा करूँ।

अजीतसिंह और जुझारसिंह—हम तो पिताजी के साथ ही रहेंगे। हमारा सिर पन्थ के लिये है। आप छोटे कुमारों को ले जायँ।

बचे हुए सिक्ख भी गुरुजी के पास जमा हुए। उनमें एक सिक्ख जीवनसिंह थे। वे पहिले शूद्र थे। वे बोले—

जीवनसिंह—गुरुजी, चालीस सिक्ख क़िले की रक्षा तो कर नहीं सकेंगे इसलिये घिर कर मरने से तो बाहर निकल कर मरना ही अच्छा है। सम्भव है कि हम में से कुछ मुसलमानी सेना को पार कर लें तो फिर से सिक्खों की फौज जमा कर सकेंगे।

गुरु गोविन्दसिंह—ठीक है। बहादुर आदमी को तलवार से क्या डर। चलो मैदान में शत्रु को मारें या मर जायँ।

वे चालीस सिक्ख क़िले के दरवाज़े पर पहुँचे। जीवनसिंह ने गुरु गोविन्दसिंह के कपड़े पहिन रक्खे थे। जैसे ही गुरु गोविन्दसिंह घोड़े पर चढ़ कर आए क़िले का दरवाज़ा खोल दिया गया। गुरु गोविन्दसिंह ने जीवनसिंह को देखा तो बड़े चकराये।

गुरु गोविन्दसिंह—जीवनसिंह, यह क्या ?

जीवनसिंह—गुरु, आप जीवित रहेंगे, तो पन्थ का अब भी उद्धार कर लेंगे। और मेरा शरीर पन्थ के काम आए, तो इससे बड़ा भाग्य क्या होगा ? मैंने गुरु के कपड़े पहिनने की ढीठता की है, इसके लिये क्षमा कीजियेगा।

गुरु गोविन्दसिंह (आँखों में आँसू भरकर और जीवनसिंह को गले लगाकर)—जीवनसिंह, तुम गुरु के लाड़िले हो। अब तो क़िले का द्वार भी खोल दिया गया। अब देर करने से लाभ नहीं। जीवनसिंह, जबतक तुम जैसे बहादुर

पन्थ में हैं, तबतक पन्थ का कोई कुछ नहीं बिगाड़ सकता।

जब सिक्ख बाहर निकले, तो मुसलमानों ने जीवनसिंह को गुरु गोविन्दसिंह समझकर घेर लिया। जीवनसिंह ने बहादुरी से लड़ते लड़ते जान दी। इसी बीच में गुरु फौज के पार निकल गये और चमकौर के क़िले में जाकर रहे। वहाँ भी मुसलमानी फ़ौज ने उन्हें घेर लिया। एक दिन गुरु बैठे हुए थे कि एक दूत बाहर से समाचार लेकर आया।

गुरु गोविन्दसिंह—कहो सिक्ख, जो धर्म को छोड़कर चले गये थे उन सिक्खों और हमारी माता व पुत्रों का क्या समाचार हैं?

दूत—महाराज, वे सिक्ख अब पछताते हैं। और माता गुजरी और कुमार तो···

गुरुजी—तो क्या? तुम निडर होकर कहो सिक्ख दुख से नहीं डरते।

दूत—महाराज, जिसके यहाँ माता गुजरी ने आश्रय लिया था उस दुष्ट ने गहनों के लालच से विश्वासघात किया और दोनों कुमारों को शत्रु के हाथ सौंप दिया।

गुरुजी—फिर!

दूत—उन बालक सिंहों ने हँसते हँसते जान दे दी।

गुरुजी प्रसन्न होकर—वाह प्यारे बेटो! तुमने जन्म सफल किया। और माताजी?

दूत—महाराज, जब माताजी ने उन कुमारों की मृत्यु सुनी तो

उन्होंने छत पर से गिर कर प्राण दे दिये।

इस समाचार को सुनकर सब सिक्ख शोक करने लगे।

गुरुजी—सिक्खो, तुम शोक करते हो! क्या सिंह भी कभी रोते हैं। यह देखो मैं दो लकीरें खींचता हूँ। अब उनको मिटा दिया। तुमको इन लकीरों के बनाने के समय क्या कोई आनन्द हुआ था?

सिक्ख लोग—नहीं गुरुजी! इसमें क्या आनन्द था?

गुरुजी—क्या मिटाने से दुख हुआ था?

सिक्ख लोग—नहीं!

गुरुजी—बस ऐसे ही उन कुमारों को भी समझो। शरीर का क्या ठिकाना है? जो जन्म लेता है वह मरता भी है! उन्होंने धर्म के लिये जान दी। कोई अधर्म नहीं किया। इसमें क्या शोक की बात है? वे मेरे पुत्र थे जब मुझे ही कुछ दुःख नहीं है, तो आप लोग क्यों दुःख करते हो?

गुरु को वह क़िला भी छोड़ना पड़ा परन्तु छोड़ने से पहिले उनके दोनों बड़े पुत्र अजीतसिंह और जुझारसिंह भी मारे गये। यहाँ से निकल कर जगह जगह घूमते हुए गुरु कोट कापुड़ा पहुँचे। वहाँ सिक्खों की सेना फिर इकट्ठी हुई। सरहिन्द के मुसलमान सूबेदार ने भी सिक्खों का जमाव सुनकर चढ़ाई कर दी। खूब घमासान लड़ाई हुई। सिक्खों की जीत हुई। मुसलमानी सेना भाग गई। जब लड़ाई के मैदान में गुरु गोविन्दसिंह कुछ और

आगे बढ़े तो उन्होंने लगभग ५० सिक्खों की लाशें पड़ी देखीं। उन्होंने झट यह पहिचान लिया कि ये लोग वही हैं जो सिक्ख धर्म को छोड़कर चले गये थे। पीछे पछता कर फिर गुरु से मिलने आये थे। परन्तु बीच ही में मुसलमानी सेना से लड़कर प्राण दे दिये। गुरु गोविन्दसिंह ने एक एक बहादुर के सिर को अपनी जाँघ पर रखकर परीक्षा की कि कुछ जान बाक़ी है कि नहीं। उनकी आँखों से आँसुओं की धार बह रही थी। एक सिक्ख मदनसिंह को सिसकता हुआ पाया। गुरुजी बड़े प्रेम से उसकी सेवा करने लगे। मदनसिंह ने आँखें खोलीं तो अपना सिर गुरु के गोद में पाया। मदनसिंह की आँखों में भी आँसू आ गये।

गुरु गोविन्दसिंह—मदनसिंह, तुमने मेरे लिये प्राण दिये हैं। मैं तुम्हारी क्या सेवा करूँ? मदनसिंह, जो तुम कहो, वही करूँगा।

मदनसिंह—गुरुजी, जो आप प्रसन्न हैं तो मेरा और मेरे साथियों का दोष क्षमा कीजिये। और हमको पहिला सा ही शिष्य समझकर आशीर्वाद दीजिये कि गुरु के चरणों में अखण्ड भक्ति हो।

गुरु गोविंदसिंह—मदनसिंह, बिना अटल भक्ति के क्या तुम प्राण दे सकते थे? यह तो तुमको पहले से ही प्राप्त है। यह तुम लोगों का लिखा हुआ काग़ज़ फाड़ डालता हूँ तुम सब गुरु के लाड़िले हो।

मदनसिंह के मुख पर मुस्कराहट आई और उसने प्राण छोड़ दिये। गुरु गोविन्दसिंह ने उस स्थान पर उन वीरों की स्मृति में

एक तालाब खुदवाया, उसका नाम मुक्तिसर रक्खा। मुक्तिसर अब भी सिक्खों का बड़ा तीर्थ है।

जब गुरु गोविन्दसिंह आनन्दपुर की ओर बढ़े, तो बीच में सरहिन्द पड़ा। सिक्खों ने कहा कि यहीं गुरु के दो पुत्र मारे गये हैं। इस नगर को मिट्टी में मिला देना चाहिये। गुरु ने उनको रोका और कहा "भाई, यदि दूसरा कोई अधर्म करे, तो उसके बदले में तुमको अधर्म नहीं करना चाहिये। नहीं तो तुम में और उसमें भेद क्या रहा! जब तक हम पर कोई चोट न करे तब तक हम क्यों लड़ाई करके लोगों की जान मारें। दूसरे शहर के रहने वाले तो निर्दोष हैं। उनको दुःख क्यों दिया जाय? वीर पुरुष वीरों से लड़ते हैं। निहत्थों पर हाथ नहीं डालते।"

गुरु गोविन्दसिंह ने फिर बादशाह औरंगज़ेब को पत्र लिखा कि व्यर्थ की लड़ाई से क्यों प्रजा को नष्ट करते हो? बादशाह ने झट लड़ाई बन्द कर दी और गुरु को मिलने के लिये बुला भेजा। उस समय बादशाह दक्षिण में थे। गुरु उनसे मिलने को दक्षिण में गये परन्तु उनके पहुँचने से पहले ही बादशाह मर गये! गुरु गोविन्दसिंह दक्षिण हैदराबाद के नान्देड स्थान में ही गुरुद्वारा बना कर रहने लगे और सिक्ख धर्म का प्रचार करने लगे। एक दिन जब वह उपदेश दे रहे थे, तो एक घातक ने उनके पेट में कटार मारी। उसी घाव से अन्त में उनकी मृत्यु हुई। उस घाव में टाँके भर दिये गये परन्तु एक दिन वे कमान खींच रहे थे कि टाँके खुल गये। गुरु ने कहा कि अब हमारा अन्त समय आ गया है।

उन्होंने सब हथियार पहने और चिता तय्यार कराई। आप जाकर उस चिता पर बैठ गये और आज्ञा दी कि अग्नि लगाते समय उनके हथियार उतारे न जायँ। यह कह कर वे भगवान् की स्तुति करते करते ध्यान में मग्न हो गये और ध्यान ही ध्यान में शरीर छोड़ दिया। जब नान्देड के पुजारियों को धन की आवश्यकता होती है तो वे सिक्खों के पास पत्र भेजते हैं। उस पत्र में गुरु गोविन्दसिंह की मोहर अब तक लगाई जाती है। मोहर में यह लिखा होता है—

एक ओंकार श्री सतगुरु प्रसाद
देग़ व तेग़ व फतह नसरत बेदरंग
याफ्त अज़ नानक गुरु गोविन्द संग
श्री अकाल पुरुख सहाय।

गुरु गोविन्दसिंह ने सिक्ख जाति को एक सम्प्रदाय से जाति बना दिया। धन दौलत को तुच्छ समझ कर खालसा की सेवा को बड़ा समझना सिखा दिया। एक बार एक सिक्ख दो जड़ाऊ बाजूबन्द पचास हज़ार रुपये के गुरु की भेंट करने को लाया। गुरु ने उनको पहिन लिया। सिक्ख बड़ा प्रसन्न हुआ। फिर गुरु उस सिक्ख को लेकर नदी के किनारे गये और एक बाजूबन्द उतार कर नदी में फेंक दिया।

सिक्ख (हाथ जोड़ कर)—महाराज, यह आपने क्या किया? वह तो गुरु के शरीर पर अच्छा लगता था। दास की प्रार्थना मान कर उसको निकालने की आज्ञा दीजिये।

गुरु गोविन्दसिंह—प्यारे सिक्ख, यह समय जड़ाऊ बाजूबन्द पहिनने का नहीं है। सिक्ख का गहना तो लोहे का कड़ा

और कृपाण है।

सिक्ख—महाराज, यदि आप नहीं भी पहिनें तो भी वह संगत की सेवा में खर्च हो सकता है। इसलिये आज्ञा दी जाय कि मैं उसे निकलवा लूँ।

गुरु गोविन्दसिंह—तुम नहीं मानते हो, तो जैसा चाहो वैसा करो।

एक ग़ोतेख़ोर को बुलाया गया कि वह बाजूबन्द को निकाले।

ग़ोताख़ोर—आप मुझे यह बता दें कि बाजूबन्द किस जगह गिरा है, तो मैं उसे निकाल लाऊँ!

गुरु गोविन्दसिंह—(दूसरा बाजूबन्द उतार कर और नदी में फेंक कर) देखो इस जगह गिरा है।

सिक्ख (यह समझकर कि गुरु निकलवाना नहीं चाहते)—अच्छा भाई, रहने दो। हमको उनको निकलवाने की जरूरत नहीं है।

गुरु गोविन्दसिंह—प्यारे सिक्ख, जब तक धन का मोह न छूटेगा, पन्थ की सेवा अच्छी तरह न बन पड़ेगी। इसलिये तुम दुखी मत हो।

गुरु गोविन्दसिंहजी ने एक बड़ा भारी ग्रन्थ बनाया है जिसे दसवें गुरु का ग्रन्थ साहब कहते हैं। और गुरु नानक साहब के ग्रन्थ साहब को आदि ग्रन्थ साहब कहते हैं। ये ही सिक्खों की मुख्य धर्म पुस्तकें हैं। आदि ग्रन्थ साहब गुरु अर्जुनदास ने संग्रह किया था। इसमें गुरु नानक के सिवाय कबीर साहब आदि कुछ अन्य सन्तों के वचन भी हैं।

४—ईसाई धर्म

१—भगवान् ईसा मसीह

ईसाई धर्म के चलाने वाले भगवान् ईसा मसीह थे। इनसे पहिले ईसाई लोग भी यहूदी थे। यहूदियों के एक प्रसिद्ध राजा हुए हैं। उनका नाम डेविड था। उनके घराने में मेरी नाम की एक लड़की नज़ारेथ नगर में रहती थी। यही मेरी भगवान् ईसा मसीह की माता थी। एक दिन जब वह रात्रि में सो रही थी तब उसको जिबराईल फरिश्ते (देवता) ने दर्शन दिया और कहा कि तू बड़ी भागवान् है, क्योंकि तेरे गर्भ से संसार का उद्धार करने वाला पैदा होगा।

एक दिन कार्यवश मेरी और उसके पति जौसफ बैथलेहम नगर को गये। वहाँ इतने यात्री आये थे कि उनको धर्मशाला में रहने के लिये जगह भी न मिली। इससे वे अस्तबल में ही ठहर गये। उसी रात को मेरी ने भगवान् ईसा मसीह को जन्म दिया। परदेश में और वहाँ भी अस्तबल में इन लोगों के पास कुछ आराम का सामान न था। जो कुछ कपड़े थे उनमें ही मेरी ने बालक मसीह को लपेट कर एक लढ़ावनी में लिटा दिया।

उस रात्रि को कुछ ग्वाले मैदान में ही सो रहे थे। एक साथ उन्होंने बड़े भारी प्रकाश को देखा और उसमें एक फरिश्ता दिखाई पड़ा। फरिश्ते ने कहा कि आज इस नगर में भगवान ईसा का जन्म हुआ है। वे संसार का उद्धार करेंगे। देखो अस्तबल में लढ़ावनी में वह दिव्य बालक लेटा हुआ है। ग्वाले उठ कर अस्तबल में गये, और वहाँ बालक मसीह को देख, उनको प्रणाम किया और इस समाचार को नगर भर में फैलाना शुरू कर दिया।

उस रात को पूर्व दिशा में रहने वाले कुछ विद्वानों ने आकाश में एक अद्भुत सितारा देखा। जिससे उन्होंने समझा कि संसार में कोई उद्धार करने वाला उत्पन्न हुआ है। वे लोग उस बालक के दर्शन करने के लिये उसे ढूँढ़ते ढूँढ़ते यहूदियों की राजधानी यरुशलम में आये। उस समय यरुशलम में हेरोड नामक राजा राज्य करता था। विद्वान उसके पास गये।

विद्वान—हे राजन् संसार में यहूदियों का राजा उत्पन्न हुआ है। हमने उसके सितारे को आकाश में देखा है। वह दिव्य बालक कहाँ है ? हम उसके दर्शन करना चाहते हैं।

हेरोड ने अपने राज्य के मुख्य विद्वान पुजारियों से पूछा कि क्या आप लोग यह जानते हैं कि वह बालक कहाँ पैदा हुआ है ?

पुजारी—हाँ यह तो पहिले ही भविष्यवाणी हो चुकी है कि ईसा मसीह बैथलेहम नगर में पैदा होंगे। परन्तु हुए हैं या नहीं यह हम को ज्ञात नहीं।

हेरोड विद्वानों से बोला—आप बैथलेहम नगर में ढूँढ़िये

और जब आपको उनके दर्शन हो जायँ तो इसी राह से लौट कर मुझे सूचना दीजिये कि जिससे मैं भी जाकर दर्शन करूँ ।

परन्तु हेरोड का मतलब दर्शन करने का नहीं था । वह यह चाहता था कि यदि बालक का पता लग जाये तो उसे मरवा डालूँ जिससे यहूदियों का राज्य किसी दूसरे के पास न जावे । जब विद्वान् लोग वहाँ से चले तो उन्हें वही सितारा फिर दिखाई दिया जो उन्होंने पहिले अपने देश में देखा था। विद्वान् लोग उसी सितारे की ओर को चले, और चलते चलते मेरी के घर आये । वह तारा ठीक उस घर के ऊपर आकाश में चमकने लगा । विद्वानों ने उस घर में जाकर बालक मसीह को बड़ी भक्ति से प्रणाम किया । फिर लौट कर वह हेरोड के पास नहीं आये । उन्हों-ने एक स्वप्न देखा था जिसमें फरिश्ते ने उनको हेरोड की बेईमानी बता दी थी । इसलिये वे दूसरी राह से ही अपने देश को लौट गये । जोसेफ से भी फरिश्ते ने स्वप्न में कहा कि तुम बालक को लेकर मिश्र भाग जाओ । जोसेफ और मेरी बालक को लेकर मिश्र देश को भाग गये । जब विद्वान् लोग लौट कर न आये, तो हेरोड ने वैथलेहम नगर के दो वर्ष तक के सब बालकों को ही मरवा डाला । उसने समझा कि बालक मसीह इनमें से ही होगा । जब हेरोड मर गया तो जोसेफ और मेरी बालक मसीह को लेकर मिश्र से लौट आये और नज़ारेथ नगर में रहने लगे ।

भगवान् मसीह बालकपन में ही बड़े तीक्ष्ण-बुद्धि थे । एक बार

उनके माता-पिता उन्हें लेकर यरुशलम की तीर्थ-यात्रा करने को गये। लौटते समय जब वह नगर से कुछ दूर पर चले आये तो उन्होंने देखा कि मसीह साथ में नहीं है। उन्होंने साथियों से पूछा परन्तु किसी को भी मसीह की खबर नहीं थी। वे फिर यरुशलम को लौटे और तीन दिन तक सारे नगर को ढूँढा। पर मसीह न मिले। तब वे यरुशलम के मन्दिर में गये और वहाँ देखा कि बारह वर्ष का बालक मसीह विद्वानों के बीच में बैठा हुआ भगवत् चर्चा कर रहा है। विद्वान् उसकी तीव्र बुद्धि पर आश्चर्य कर रहे थे।

माता मेरी—देखो ईसू! तुमने हमको कितना तंग किया है। हमने तीन दिन से सारे नगर को छान डाला है।

भगवान् मसीह—परन्तु माताजी, आपने यहाँ पिता (भगवान) जी के मन्दिर में क्यों नहीं ढूँढा? मैं और कहाँ जाता? मैं तो यहाँ अपने पिता का ही काम कर रहा था।

इसके पीछे भगवान् मसीह अठारह वर्ष तक साधारण मनुष्यों के समान ही जीवन व्यतीत करते रहे। वे बड़े दयालु और प्रिय-भाषी थे। उनके मुँह से कभी कड़े शब्द न निकलते थे। उनके मीठे बोलने के कारण सब लोग उन्हें प्रेम करते थे। जब उनकी आयु तीस वर्ष की हुई तो उनकी भेंट एक महात्मा से हुई, जिन का नाम जोन था। वे लोगों को उपदेश करते थे, कि अपने पापों पर पश्चाताप करो, और भगवान् को याद करो जिससे पाप दूर हों। महात्मा जोन लोगों को एक नदी में स्नान कराते थे। और उनको फिर यही उपदेश करते थे। बहुत से लोग उनका

उपदेश सुनते और नदी में नहाते थे। भगवान मसीह भी उसके पास गये।

ईसा मसीह——महात्मा, मुझे भी उपदेश दीजिये।

महात्मा जोन——मैं तुम्हें उपदेश दूँ या तुम मुझे उपदेश दो।

ईसा मसीह——आप इसका विचार न कीजिये। नियम तो सब को ही पालन करना चाहिये। इसलिये और लोगों के समान मुझे भी उपदेश दीजिये।

जोन ने ईसा मसीह को भी नदी में स्नान कराया, जैसे ही वे स्नान कर चुके तो उन्होंने देखा कि आकाश फट गया है और उसमें से भारी प्रकाश चमकने लगा है। उसमें से भगवान् का अंश होली घोस्ट (पवित्र आत्मा) चमकता हुआ फाख्ता चिड़िया के आकार में उतरा और ईसा मसीह में समा गया। प्रकाश से भरे हुए ईसा मसीह जंगल में चले गये। और चालीस दिन तक विना कुछ खाये पिये भगवान का ध्यान करते रहे। कहते हैं कि उस समय शैतान ने आ कर उनको बहकाया, और कहा कि मैं तुझे सारे संसार का राजा बना दूँगा, तू ईश्वर का भजन छोड़ दे। परन्तु भगवान ईसा मसीह इस बहकाने में नहीं आये। चालीस दिन के पीछे वे उस जंगल से बाहर निकले और लोगों को सच्चे धर्म का उपदेश करने लगे। जब वे जंगल से बाहर आये तो महात्मा जोन ने अपने चेलों से कहा कि देखो यही ईसा मसीह हैं। उनके ऐसा कहने से दो चेले ईसा मसीह के साथ चल दिये और उनके चेले हो गये।

भगवान ईसा मसीह के बारह मुख्य चेले थे। उनमें भी पीटर

सब से मुख्य थे। और भगवान ईसा के पीछे वही ईसाइयों के आचार्य हुए। भगवान मसीह की करामातों के बारे में बहुत सी बातें प्रसिद्ध हैं। एक समय उन्होंने पानी को शराब बना दिया था। कितने ही मरे हुओं को जीवित कर दिया। कितने ही रोगियों को चंगा कर दिया। वे पानी पर चल सकते थे। आँधी को बन्द कर देते थे।

भगवान ईसा मसीह सब को, चाहे वे किसी जाति के हों, चाहे वे स्त्री हों या पुरुष, बच्चे हों या बूढ़े, ग़रीब हों या अमीर, प्रेम करते थे। उन दिनों में यहूदी लोग समरी लोगों को अपने से नीचा समझा करते थे, और उनसे कोई व्यवहार नहीं रखते थे। विशेष कर स्त्रियों से बातचीत करना अनुचित समझा जाता था। एक बार भगवान ईसा मसीह समरिया देश के एक नगर में पहुँचे। वहाँ एक कुएँ पर जाकर बैठ गये और उनके चेले नगर से खाना लाने के लिये चले गये। उस समय एक स्त्री कुएँ पर पानी भरने को आई। भगवान मसीह प्यासे थे। वे बोले "देवी, मुझे थोड़ा सा पानी पिला दो।"

स्त्री—परन्तु आप तो यहूदी जाति के हैं, और मैं समरी हूँ। यहूदी हम लोगों से कोई व्यावहार नहीं रखते। फिर मैं आपको पानी कैसे पिलाऊ ?

ईसा—तू नहीं जानती कि तुझसे पानी माँगने वाला कौन है। यदि तुने मुझसे पानी माँगा होता, तो तुझे जीवनदान करने वाला पानी पिलाता।

स्त्री—भला वह पानी कौन सा है ! यह कुआँ गहरा है। आपके पास पानी खींचने को कुछ है भी नहीं। फिर पानी कहाँ से आता ?

ईसा—जो इस कुएँ के पानी को पीता है, उसे तो फिर भी प्यास लगती है। परन्तु जो मेरा दिया हुआ पानी पीता है, उसे फिर प्यास नहीं लगती, वरन् उसको अनन्त (स्वर्गीय) जीवन प्राप्त होता है।

स्त्री—महाराज, ऐसा पानी मुझे भी दीजिये। मुझे फिर प्यास न लगेगी तो कुएँ पर पानी भरने भी नहीं आना पड़ेगा।

ईसा—(यह जान कर कि वह स्त्री उनके मतलब को नहीं समझी, वे बोले)—जा, तू पहिले अपने पति को बुला ला।

स्त्री—मेरे कोई पति नहीं है।

ईसा—हाँ ठीक है। तेरे पहिले पाँच पति हो चुके हैं और अब कोई पति नहीं है।

उस स्त्री का सचमुच पाँच बार विवाह हो चुका था। इसलिये वह अचम्भे से बोली—"आप क्या पैग़म्बर हैं जो सब बातें जानते हैं ? हमारे बाप दादा तो इन्हीं पहाड़ियों में भगवान की पूजा करते थे। यहूदी लोग कहते हैं कि यरुशलम में पूजा करनी चाहिये। आप बताइये कि ठीक बात क्या है।"

ईसा—अरी, वह समय आ रहा है कि जब तुम न इन पहाड़ियो में और न यरुशलम ही में पूजा करोगी। सच्चे पुजारी तो भगवान की पूजा मन से और सदाचार से करते हैं। ऐसे पुजारियों की पूजा भगवान स्वीकार करते हैं।

इस समय उनके चेले नगर से लौट आये और उनको एक स्त्री से बातचीत करते देखकर आश्चर्य करने लगे। उस स्त्री ने नगर में जाकर सब समाचार कहे। और ईसा के पास बहुत से लोग उपदेश सुनने के लिये आये।

एक बार भगवान ईसा के एक चेले ने उनकी दावत की। दावत में ईसा के चेलों के अतिरिक्त नगर के विद्वान, पुजारी, पापी, भटियारे, व महसूल उघाने वाले भी थे। एक साथ भोजन को बैठे तो यहूदियों के विद्वानों को यह बुरा लगा। वे कहने लगे कि "आप लोग पाप करने वालों के साथ बैठ कर कैसे खाते पीते हैं?" भगवान ईसा मसीह ने उत्तर दिया "भाई, जो स्वस्थ है, उसे वैद्य की आवश्यकता नहीं है। वैद्य तो रोगी के लिये है। तुम इस बात पर विचार करो। 'मुझे दया करना स्वीकार है दण्ड देना नहीं।' मैं धार्मिक पुरुषों का नहीं वरन् पापियों का ही उद्धार करने आया हूँ। भगवान को दुखी और पापी लोगों पर दया करके उन्हें पवित्र करना ही अच्छा लगता है।"

यहूदी लोग आदित्यवार के दिन कुछ काम करना पाप समझते थे। परन्तु भगवान् ईसा आदित्यवार को भी उपदेश देते थे और रोगियों को अच्छा करते थे। एक बार वे आदित्यवार को उपदेश दे रहे थे। सुनने वालों में से एक मनुष्य का हाथ सूख गया था। एक मनुष्य ने प्रश्न किया कि क्या आज के दिन रोगी की चिकित्सा करना उचित है?

भगवान ईसा ने उत्तर दिया "भाई, यह तो बताओ कि आदित्यवार को भलाई करना उचित है या बुराई ? यदि किसी की भेड़ आदित्यवार को गढ़े में गिर पड़े तो क्या वह उसको उस दिन न निकालेगा ? क्या मनुष्य भेड़ से अच्छा नहीं है ? इसलिये आदित्यवार के दिन धर्म करना अच्छा है ।" फिर भगवान ईसा ने उस मनुष्य का हाथ देखा और उसे आशीर्वाद देकर अच्छा कर दिया ।

भगवान ईसा मसीह दया के अवतार थे । वे पापी को भी प्रेम और दया से ही धर्मात्मा बना देते थे । किसी को दंड देना तो उनके लिये असम्भव था । एक बार कुछ लोग एक स्त्री को उनके सामने पकड़ कर लाये ।

लोग—हज़रत, इस स्त्री ने बड़ा भारी पाप किया है । और यह पाप करती हुई पकड़ी गई है । कहिये कि इसका क्या किया जाय ?

ईसा—तुम्हारे न्याय में इस पाप का दण्ड क्या है ?

लोग—इस पाप का दण्ड यह है कि इसको पत्थरों से मारकर मार डाला जाय ।

ईसा—ठीक है, अच्छा जो तुममें से ऐसे हों कि जिन्होंने कभी कोई पाप नहीं किया हो, वे इसे पत्थर मारें ।

परन्तु ऐसे उनमें से कोई भी नहीं थे । सब अपने पापों को याद करके लज्जित होकर एक एक करके चले गये । तब भगवान ईसा मसीह ने सिर उठाकर उस स्त्री से पूछा "क्या सब चले गये ? तुझ पर दोष लगाने वाले कहाँ हैं ?"

स्त्री—जी महाराज, सब चले गये ।

ईसा—किसी ने भी तुझे दण्ड देना स्वीकार नहीं किया ?

स्त्री—नहीं ! किसी ने भी नहीं ।

ईसा—तो फिर मैं भी तुझे क्या दण्ड दूँ ! जाओ पाप से बचो और भगवान का स्मरण करो ।

एक बार कुछ यहूदी हज़रत ईसा और उनके चेलों के पास खाना खाने बैठे थे । ईसा के चेले बिना हाथ धोये ही खाना खाने लगे । यहूदियों को यह बुरा लगा ।

यहूदी बोले—देखिये, आपके चेले कैसे गन्दे हैं । बिना हाथ धोये ही खाना खाते हैं । ये अपने बाप दादे के चलन के अनुसार हाथ नहीं धोते ।

ईसा—भाई, आप लोगों ने बाप दादा के बाहरी चलन को पकड़ लिया है । मन को शुद्ध करने का यत्न नहीं किया ।

यहूदी लोग—क्या गन्दे हाथों से खाने से धर्म नष्ट नहीं होता ?

ईसा—तुम लोग सब सुनो । कोई चीज़ जो बाहर से पेट के भीतर जाती है वह गन्दा नहीं करती । क्योंकि वह फिर सफाई के समय बाहर निकल जाती है । परन्तु मनुष्य उस से गन्दा होता है जो कि उससे बाहर निकलती है ।

चेले—महाराज, इसका क्या अर्थ है ?

ईसा—मनुष्य से बाहर निकलते हैं उसके काम । यदि काम बुरे होंगे तो उसका मन भी बुरा होगा । इससे उस मनुष्य का मन मैला हो जाता है ।

भगवान ईसा ने देखा कि लोग बड़ी भूल में पड़े हुए हैं। सच्चे धर्म को नहीं जानते। उनको बड़ी दया आई, और उन्होंने अपने शिष्यों को आज्ञा दी कि वे घूम-घूमकर लोगों को उपदेश दें। और उनको आज्ञा दी कि वे रुपया पैसा जमा न करें। इतना ही नहीं, वरन् उन्हें कह दिया कि वे दो कोट, दो जोड़ी जूते, या लकड़ी जमा न करें, खाना तो काम करनेवाले को कोई न कोई दे ही देगा, परन्तु रहें सन्यासी की तरह से।

यहूदी लोग भगवान ईसा से बहुत क्रुद्ध थे, क्योंकि वे आदित्य-वार को भी रोगियों को अच्छा करते थे और अपने को ईश्वर का पुत्र कहते थे। एक बार यहूदियों ने पूछा कि सच-सच बताओ कि तुम कौन हो?

ईसा—तुम मुझको पीछे जानोगे कि मैं कौन हूँ। मैं तुमको कितने ही बार कह चुका हूँ पर तुम विश्वास नहीं करते। मैं वही कहता हूँ जो कि मेरे पिता ने मुझ से कहा है। यदि तुम सत्य धर्म को मानोगे तो बन्धन से छूट जाओगे।

यहूदी—हम तो अब्राहम के वंशज हैं। और किसी के बन्धन में नहीं हैं। फिर किससे छूट जायेंगे?

ईसा—जो पाप करता है वह पाप का ही दास है। तुम अब्राहम के वंश के हो। परन्तु तुम्हारा पुरखा अब्राहम तो मुझे देखकर प्रसन्न होता था।

यहूदी—तुम तो अभी पचास वर्ष के भी नहीं हो और अब्रा-

हम को मरे सैकड़ों वर्ष हो गये, फिर तुमने उन्हें कैसे देखा ?

ईसा——मैं तुमसे सत्य कहता हूँ कि मैं अब्राहम से भी पहिले का हूँ।

यहूदी लोग भगवान मसीह के मतलब को तो समझे नहीं वरन् पत्थर ले कर उन्हें मारने दौड़े। परन्तु मसीह उनके बीच में से होकर निकल गये। और कोई उनका कुछ न कर सका। लेकिन यहूदियों ने ईसा को मारने का निश्चय कर लिया। और उनके पकड़ने का बहुत प्रयत्न किया। भगवान ईसा भी जान गये कि अब मेरा काम पूरा हो गया है। पकड़े जाने के पहिले वे अपने बारह चेलों के साथ खाना खाने को बैठे। उस समय उन चेलों के मन में यह विचार आया कि हम सब में से कौन बड़ा है। ईसा उनके मन की बात जान कर बोले, "भाई, तुम में बड़ा वही है जो अपने को छोटा समझे। बताओ खाना खाने वाला बड़ा है या खाना देने वाला ? यह कह कर भगवान ईसा उठे और कोट को उतार कर कमर में बाँध कर तौलिया हाथ में लिया, वे एक बरतन ले कर अपने चेलों के पैर धो धो कर तौलिया से पोंछने लगे। इससे सब चकित हुए।

पीटर——क्या भगवान, आप मेरे पैर धोयेंगे ?

ईसा——मैं जो करता हूँ, उसका अर्थ तू अब नहीं, पीछे समझेगा।

पीटर——परन्तु नहीं। मैं आपको अपने पैर नहीं धोने दूँगा।

ईसा——यदि नहीं धोने देगा, तो मेरा तुझसे कुछ सम्बन्ध न रहेगा।

पीटर—तो महाराज, पैर ही क्यों मेरे हाथ और सब शरीर धो डालिये।

ईसा—तू तो धुला हुआ ही है। तू पवित्र है। परन्तु ये सब तो नहीं हैं। तेरे तो पैर ही धुलने हैं।

जब सब के पैर धो दिये तब वे बोले, "देखो जब मैं तुम्हारे पैर धोता हूँ तो तुमको भी एक दूसरे के पैर धोने चाहिये। जैसा मैंने किया है वैसा ही तुम भी करो। परन्तु तुम में से ही एक मुझको यहूदियों के हाथ पकड़ा देगा।"

यह सुन कर सब चेले एक दूसरे की ओर देखने लगे और एक चेले ने पूछा—हम में से वह कौन है?

ईसा—जिसको मैं टुकड़ा शराब में डुबो कर देता हूँ।

यह कह कर वह टुकड़ा उन्होंने जुडास को दे दिया।

जुडास—क्या वह मैं हूँ?

ईसा—तू ने ठीक कहा है। अब जो तुझे करना है, शीघ्र जाकर कर।

जुडास क्रोध में भरा हुआ वहाँ से चला गया। और फिर ईसा ने कहा—देखो अब मैं थोड़ी देर तुम्हारे साथ और रहूँगा। मेरी तुमको अन्तिम आज्ञा यही है कि तुम एक दूसरे से प्रेम करना। प्रेम करने से ही तुम मेरे शिष्य समझे जाओगे।

फिलिप (एक चेला)—महाराज, हमको पिताजी (भगवान) के दर्शन करा दीजिये।

ईसा—मैं तुम्हारे साथ इतने दिन रहा परन्तु, फिलिप, तुमने

मुझे अब भी नहीं पहिचाना, क्या तुमको विश्वास नहीं है कि पिताजी मेरे में हैं और मैं पिताजी में हूँ। जिसने मुझे देख लिया उसने पिताजी को देख लिया।

फिर भगवान ईसा मसीह चेलों सहित एक बाग़ में गये। वहाँ चेले तो सो गये, परन्तु भगवान ईसा ध्यान में बैठ गये। इधर जुडास यहूदियों से जाकर मिल गया और उनसे कुछ रुपये लेकर ईसा को पकड़वाने के लिये सिपाही बाग़ में लिवा लाया। भगवान ईसा आप ही इन सिपाहियों के पास चले गये।

ईसा—कहो भाई, किसे ढूँढ़ते हो ?

सिपाही—ईसा को।

ईसा—मैं ही ईसा हूँ।

सिपाही पीछे हटे और गिर पड़े। ईसा ने फिर पूछा—भाई, घबराते क्यों हो, तुम किसको पकड़ना चाहते हो ?

सिपाही—ईसा को।

ईसा—मैं ही ईसा हूँ। चलो मुझे ले चलो। और जो ये लोग सो रहे हैं इनको इनके घर जाने दो।

इस समय उनके चेले जाग पड़े। पीटर ने तलवार निकाल कर एक सिपाही के मारी। सिपाही का कान कट गया। परन्तु भगवान ईसा ने उसे अपने हाथ से छूकर अच्छा कर दिया। और पीटर से कहा—पीटर, तलवार को म्यान में रक्खो। क्या मैं पिताजी का दिया हुआ कष्ट झेल नहीं सकता ? क्या मैं अब उनका ध्यान नहीं कर सकता ? तुम दुखी मत हो।

सिपाही ईसा को पुजारी के पास ले गये। वहाँ उनको लोगों ने घूँसों से मारा और फिर नगर के शासक पाइलट के पास ले गये। पुजारियों ने ईसा पर अभियोग लगाया कि यह लोगों को बहकाता है और अपने आप को ईश्वर का बेटा और यहूदियों का राजा कहता है। इसको प्राण दण्ड दिया जाय। जब ईसा ने सच्ची बात बताई तो पाइलट ने कहा कि इनका कुछ दोष नहीं है। फिर भी पुजारियों ने नहीं माना और अन्त में भगवान ईसा को प्राण दण्ड दिया गया। एक काँटों का टोप उनको पहनाया गया। और सिपाही उनको मारते पीटते जंगल में ले गये। नगर के बहुत से लोग उनको चिढ़ाते जाते थे। जंगल में ले जा कर सिपाहियों ने ईसा को एक लट्ठे से बाँध दिया। और उनके दोनों हाथ फैला कर एक दूसरे लट्ठे में कीलों से ठोंक दिये। इसी प्रकार पैरों को भी ठोंक दिया। उनके हाथों और पैरों से खून बहने लगा। परन्तु फिर भी अत्यन्त कष्ट सहते हुए ईसा ने भगवान से प्रार्थना की कि "हे पिता, इनको क्षमा कर, क्योंकि ये नहीं जानते कि क्या कर रहे हैं।" मरते हुए ईसा के सामने आकर लोग चिढ़ाने लगे कि ओ यहूदियों के राजा, तुझको प्रणाम है, तू अब अपने आप को क्यों नहीं बचा लेता। परन्तु भगवान ईसा मसीह सब सहन करते रहे और अन्त में उन्होंने पीने को पानी माँगा। सिपाहियों ने पानी के बदले सिरके में भीगा हुआ एक स्पंज का टुकड़ा उनके मुख के पास कर दिया। उसको चखते ही भगवान ईसा ने प्राण छोड़ दिये। उस समय पृथ्वी में बड़े जोर के भूकम्प आने

लगे तथा चारों ओर अन्धकार छा गया। जोसेफ़ नाम के एक सज्जन ने पाइलेट से आज्ञा लेकर ईसा के मृतक शरीर को उतार लिया और उसमें मसाले लगा कर एक पहाड़ की खोह में रख दिया। कहते हैं कि दो दिन बाद वह शरीर वहाँ से अदृश्य हो गया, और भगवान ईसा मसीह फिर जीवित होकर अपने शिष्यों को चालीस दिन तक दर्शन देते रहे। अन्त में पीटर को आज्ञा दी कि मेरे पीछे तुम ही मेरे धर्म वालों को शिक्षा देना। फिर अपने चेलों के साथ एक पहाड़ के पास गये। वहाँ सब को आशीर्वाद दे कर प्रकाश से परिपूर्ण हो आकाश में चढ़ते चढ़ते अन्तर्ध्यान हो गये।

२—सन्त पीटर

भगवान ईसा मसीह के बारह मुख्य चेले थे। उनमें सन्त पीटर सब के मुखिया थे। भगवान ईसा मसीह के स्वर्ग चले जाने के पीछे ईसाई धर्म का भार इन्हीं के ऊपर पड़ा था। ये बड़े सच्चे, साहसी और भगवद् भक्त थे। ये स्वभाव से ही नम्र थे।

पहिले ये मछलियाँ पकड़ कर और उन्हें बेच कर अपना निर्वाह किया करते थे। एक बार भगवान ईसा मसीह उस ओर से निकले। उनके साथ बहुत सी भीड़ थी। लोग उनका उपदेश सुनना चाहते थे, किनारे पर ही पीटर की नाव थी भगवान मसीह उस नाव पर चढ़ गये और वहीं से उपदेश देने लगे। जब उपदेश

समाप्त हो गया, तो पीटर से बोले ।

भगवान मसीह—अब नाव को गहरे पानी में ले चलो । और मछलियाँ पकड़ने के लिये जाल डालो ।

पीटर—भगवान, मैंने रात भर जाल डाले, परन्तु एक भी मछली न मिली, मैं तो अब जाल डालना व्यर्थ समझता हूँ । परन्तु आप कहते हैं तो चलिये ।

यह कह कर उसने जाल डाला । जाल में इतनी मछलियाँ आ गईं कि उनके बोझ से जाल टूटने लगा । बड़ी कठिनाई से उसने जाल को नाव पर चढ़ाया । भगवान मसीह के आशीर्वाद का प्रभाव देख कर उसका हृदय प्रेम से भर गया । उसने सोचा कि देखो, भगवान मसीह ने मुझ जैसे पापी को भी दर्शन देने की कृपा की है ।

पीटर—हे भगवान, आप मेरे पास से चले जाइये । मैं पापी हूँ । आपके दर्शन करने के योग्य नहीं हूँ ।

भगवान मसीह—घबराओ मत । अब तक तुम मछली पकड़ते हो । चलो अब मैं तुमको आदमी पकड़ने वाला बना दूँ ।

बस पीटर सब कुछ छोड़ कर भगवान मसीह के साथ हो लिये । एक बार भगवान मसीह पीटर, जोन, और जेम्स, तीन मुख्य चेलों को लेकर एक पहाड़ पर गये । रात को भगवान ईसा मसीह ध्यान में बैठे रहे । चेलों को नींद आ गई और ये लोग सो गये । परन्तु आधी रात के लगभग जब इनकी आँखें खुलीं तो इन्होंने अद्भुत दृश्य देखा । भगवान ईसा मसीह के कपड़े बर्फ के समान सफ़ेद थे । और उनके सारे शरीर से बिजली के समान प्रकाश निकल रहा था । उस

प्रकाश में उन्होंने देखा कि हज़रत मूसा और हज़रत इलियास, दो पैग़म्बर जो पहिले समय में हो चुके थे, भगवान ईसा से बातें कर रहे हैं। पीटर का मन इस अद्भुत दृश्य से आनन्द से भर गया और वे बोले, "भगवान, हम लोग यहीं क्यों न रहें ? संसार से तो यह स्थान अच्छा है। आज्ञा दीजिये। हम लोग तीन मकान, एक आपके लिये, एक मूसा के लिये, और एक इलियास के लिये, बना दें।'

जब पीटर ने यह कहा तो एक बड़ा प्रकाशवान् बादल दिखाई दिया, जिसका प्रकाश हर जगह भर गया। उसमें से ये शब्द निकले "यही हमारा प्यारा बेटा है। तुम लोग इसकी बात सुनो।" ऐसे शब्द भगवान के सुन कर तीनों चेलों ने पृथ्वी पर माथा टेक कर प्रणाम किया। और वे घबरा गये। भगवान ईसा मसीह ने उनको उठाया और कहा "घबराओ मत। उठो, परन्तु यह बात अभी किसी से न कहना। तब तक मत कहना, जब तक मैं स्वर्ग को न चला जाऊँ।" इस प्रकार पीटर को भी भगवान के दर्शन करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। भगवान ईसा कहा करते थे कि पीटर मेरे धर्म की बुनियाद होगा। और ऐसा ही हुआ।

भगवान ईसा मसीह के स्वर्ग जाने के लगभग पचास दिन के पीछे पेन्टीकोस्ट का त्यौहार आया। उस दिन भगवान ईसा के सवा सौ चेले उसी कमरे में जमा हुए जहाँ भगवान ईसा ने अन्तिम बार खाना खाया था। सब लोग बड़े प्रेम से भगवान का भजन करने लगे। एक साथ बड़ा धड़ाका हुआ। और सब

लोगों के सिरों पर अग्नि की लोएँ दिखाई पड़ने लगीं। इस प्रकार भगवान की कृपा से सब चेलों में भगवान के अंश होली घोस्ट (पवित्र आत्मा) ने प्रवेश किया। उस धड़ाके को सुनकर नगर के हज़ारों लोग वहाँ जमा हो गये और पूछने लगे कि "हे महात्माओ, हमको बताओ, हमको क्या करना चाहिये ?" तब पीटर ने बड़ा मधुर उपदेश दिया, जिसको सुन कर उसी दिन तीन हज़ार मनुष्य ईसाई बन गये।

परोपकार करने के लिये धन की आवश्यकता नहीं है। निर्धन मनुष्य भी परोपकार कर सकता है। पीटर के पास धन नहीं था। वह पढ़ा लिखा नहीं था। परन्तु वह सच्चा और सदाचारी था। इसी से उसको भगवान के भी दर्शन हुए। और उसमें इतनी शक्ति हो गई कि वह भगवान ईसा मसीह के नाम पर अद्भुत करामात दिखा कर लोगों का भला करने लगा। एक दिन पीटर व जौन यरुशलम में मन्दिर को जा रहे थे कि उन्होंने मन्दिर पर एक भीख माँगने वाले को देखा। वह लँगड़ा था।

लँगड़ा—बाबा, कुछ मुझे भी देते जाओ।

पीटर—देख, लँगड़े ! मेरी ओर देख।

लँगड़ा—बाबा, भगवान तुम्हारा भला करे। कुछ मुहताज को भी दो।

पीटर—मेरे पास सोना चाँदी तो कुछ है नहीं जो तुझको दूँ। परन्तु भगवान ईसा के नाम पर तू अच्छा हो जा और उठ कर चल।

यह कह कर पीटर ने उसका हाथ पकड़ कर उठाया। फिर क्या था। लँगड़े का पैर ठीक हो गया। वह कूदता हुआ मन्दिर में गया और भगवान के गुण गाने लगा। यह करामात देखकर लोगों ने पीटर को वहीं घेर लिया और उपदेश देने को कहा। पीटर के उपदेश से बहुत से ईसाई बन गये। ये समाचार दूर दूर तक फैल गये और लोगों की श्रद्धा पीटर पर इतनी बढ़ी कि बीमार लोग उस रास्ते पर आकर जमा हो जाते थे जिससे पीटर जाते थे, ताकि उनकी छाया ही उन पर पड़ जाय और उनके रोग दूर हो जायँ। परन्तु यरुशलम के सद्‌यूसी लोगों को यह अच्छा न लगा। उन्होंने पीटर और जौन को पकड़ लिया और पुजारियों की सभा में उपस्थित किया। वे दोनों डरे नहीं।

मुख्य पुजारी—क्यों जी, तुम किसके नाम का प्रचार करते हो?

पीटर—भगवान ईसा मसीह के नाम का। जिनको तुम लोगों ने सूली पर चढ़ाया था। जो मर कर फिर जीवित हो गये और स्वर्ग को चले गये।

पुजारी—तुम यह करना छोड़ दो। तुम लोगों को पुराने धर्म से मत हटाओ। नहीं तो अच्छा नहीं होगा।

पीटर—हम तुम्हारा कहना मानें या ईश्वर की आज्ञा का पालन करें।

पुजारी—अब की बार तो हम तुमको छोड़ देते हैं, परन्तु यदि तुम नहीं मानोगे तो बड़ा कठोर दण्ड दिया जायगा।

ये लोग कब मानने वाले थे। पहिले की तरह ये फिर भी

उपदेश करने लगे। सद्‌यूसियों ने उन्हें फिर पकड़ लिया और जेल-खाने में भेज दिया। रात को जेलख़ाने के द्वार खुल गये और ये लोग बाहर निकल कर फिर उपदेश करने लगे। यह देख कर पुजारियों ने उनको मार डालने का प्रबन्ध किया। परन्तु एक विद्वान ने उनको ऐसा करने से मना किया। तब इन चेलों को कोड़ों से पिटवाया गया। इन्होंने सब सहन कर लिया, परन्तु उपदेश करना नहीं छोड़ा।

इस समय पीटर दूसरे देशों में प्रचार करने निकला। वह एक नगर में एक चमार के घर ठहरा। एक दिन वह दोपहर के समय छत के ऊपर जाकर भगवान का ध्यान करने लगा। ध्यान करते करते वह बेसुध हो गया। और उसने देखा कि आकाश फट गया है और उसमें से एक चादर नीचे को उतरी। चादर पर संसार के अनेक जाति के जीव थे। जब वह चादर पीटर के सन्मुख आई तो आकाश में से यह शब्द हुआ, "हे पीटर, इनमें से चाहे जिसको मार और खा।" पीटर ने उत्तर दिया, "हे प्रभो, मैंने कभी कोई अपवित्र वस्तु नहीं खाई।" शब्द फिर हुआ, "हे पीटर, जिसको ईश्वर ने पवित्र माना हो उसे तू क्यों अपवित्र मानता है?" इसके पीछे वह चादर ऊपर को उड़ गई और आकाश बन्द हो गया। इस दृश्य को देख कर पीटर उसके अर्थ पर विचार करने लगा और छत पर से नीचे उतरा। उसे मालूम हुआ कि तीन आदमी उसे बुलाते हैं। पीटर बाहर गया और बोलाः—

पीटर—कहो भाई, तुम किसकी खोज करते हो?

एक मनुष्य—हम पीटर की खोज करते हैं।

पीटर—मेरा ही नाम पीटर है। तुम कहाँ से आये हो। और क्या चाहते हो?

मनुष्य—हम क़ैसरिया नगर से आये हैं, और कोरनीलियस सुबेदार के नौकर हैं। वह बड़ा धर्मात्मा है। उससे फ़रिश्ते ने कहा है कि तू सन्त पीटर को जाफ़ा से बुला और धर्म के वचन सुन। इसलिये हम आपको लिवाने के लिये आये हैं।

पीटर—अच्छा, अब तो तुम भोजन करो और आराम करो कल मैं तुम्हारे साथ चलूँगा।

दूसरे दिन पीटर क़ैसरिया नगर को गया। जब वह कोरनीलियस के घर पहुँचा तब कोरनीलियस बाहर आया और उसके पैरों में पड़ गया। पीटर ने उसे उठा कर कहा "भाई, मेरे पैरों क्यों पड़ते हो? मैं भी तुम जैसा ही मनुष्य हूँ?" जब पीटर भीतर गया तो देखा कि वहाँ बहुत से मनुष्य जमा हैं।

पीटर—भाइयो, यह तुम जानते हो कि यहूदी किसी दूसरी जाति के यहाँ नहीं जाता, और उनकी संगति भी नहीं करता। परन्तु मुझे ईश्वर ने बताया है कि मैं ईश्वर के पैदा किये हुए किसी मनुष्य को अपवित्र न समझूँ। और इसी कारण से मैं यहाँ चला आया हूँ। बताओ मुझे क्यों बुलाया है?

कोरनीलियस—महाराज, मैंने एक दिन भगवान का ध्यान

करते समय देखा कि एक मनुष्य मेरे सामने खड़ा है। उसके कपड़े बड़े चमकते थे। उसने कहा "कोरनीलियस, जाफ़ा से पीटर को बुला और उसका उपदेश सुन।" इस लिये मैंने आपको बुलाया है।

पीटर—अब मुझे विश्वास हुआ कि ईश्वर किसी एक जाति का पक्ष नहीं करता। वरन् हर जाति में जो मनुष्य धर्म करता है और ईश्वर से डरता है वही मनुष्य भगवान को अच्छा लगता है। इसी से तुम को भी फ़रिश्ते के दर्शन हुए।

फिर पीटर भगवान ईसा मसीह के गुणों को बखानने लगे। उसी समय होली घोस्ट (पवित्र आत्मा) उन लोगों पर भी वैसे ही उतरा जैसे कि पहिले पहिल पीटर आदि चेलों पर उतरा था। तब पीटर ने कहा कि "जिनको प्रभु ने पवित्र आत्मा का दान दिया है उनको ईसाई बनने से कौन रोक सकता है!" और सबको ईसाई बना लिया।

जब पीटर यरुशलम को लौटे तो वहाँ के यहूदी जाति के ईसाई उनसे कहने लगे "देखिये, आपने उस जाति के लोगों को भी धर्म का उपदेश दिया है जो कि यहूदी जाति के नियमों को नहीं मानते और जिनके रस्म रिवाज दूसरी तरह के हैं।"

पीटर—भाइयो, मुझे ईश्वर ने उपदेश दिया है कि मैं किसी जाति को भी अपवित्र न कहूँ। किसी के रस्म रिवाज दूसरे हों तो उससे ही वह अधर्मी नहीं हो जाता। देखो उन पर भी पवित्र आत्मा वैसे ही उतरा जैसे कि हम पर। इसके

पीछे पीटर ने सारा हाल कहा। और लोग भगवान का गुण गाने लगे।

अब तक ईसाई लोग यहूदियों के समान ही रस्म रिवाज का पालन करते थे। परन्तु वे भगवान ईसा मसीह की भक्ति करते थे। इस घटना से यह सिद्ध हो गया कि भगवान की भक्ति सब ही प्रकार के रस्म रिवाज वाले कर सकते हैं। इसी प्रकार अन्तिओक नगर में सन्त पाल ने दूसरी जातियों को भी ईसाई धर्म का उपदेश दिया था। इस पर यहूदी ईसाई झगड़ा करने लगे। इस प्रश्न को तय करने के लिये एक बड़ी सभा हुई। उसमें भी अन्त में यही निश्चय हुआ कि भगवान ईसा का धर्म भगवान की भक्ति, भगवान ईसा मसीह में विश्वास, और सदाचार का उपदेश करता है। ईसाई को उसी प्रकार धर्म का पालन करना चाहिये कि जिस प्रकार भगवान ईसा ने किया था या जैसे कि उन्होंने उपदेश दिया है। यह उपदेश सब जातियों को दिया जा सकता है चाहे उनकी रस्म रिवाज दूसरी हों, और इस प्रकार दूसरी जातियों के साथ खाने पीने और संगति करने में कोई हानि नहीं है।

ईसाइयों के बढ़ते हुए प्रभाव से डर कर उस देश के राजा हेरोड ने पीटर को क़ैद कर लिया। अबकी बार भी निकल न भागे इसलिये पीटर के दोनों ओर दो सिपाही भी बाँध दिये। परन्तु पीटर को कुछ भी चिन्ता या दुःख न हुआ। वह क़ैदखाने में शांति से सुख की नींद सोने लगा। तब उसे एक फ़रिश्ते ने दर्शन दिया, और कहा कि "जल्दी उठ और मेरे साथ आ।" पीटर की हथकड़ी और

बेड़ी खुल गई और वह क़ैदख़ाने से बाहर हो गया। जब वह घर पहुँचा तो उस समय बहुत से ईसाई उसके लिये ईश्वर से प्रार्थना कर रहे थे। पीटर को क़ैद से छुटा हुआ देख कर सब को आश्चर्य हुआ। पीटर ने कहा कि सब से कह देना कि मैं क़ैद से निकल आया हूँ और दूसरे देशों में धर्म का प्रचार करने जाता हूँ। अन्त में पीटर रूम में भी ईसाई धर्म का प्रचार करने लगा। वहाँ का राजा नीरो बड़ा निर्दयी था। उसने आज्ञा दी कि पीटर को क्रास (काठ) पर लटका कर मार डाला जाय। भगवान ईसा मसीह को भी क्रास पर ही कीलों से गाड़ कर लटकाया गया था। पीटर ने कहा "यह मेरे बड़े भाग्य हैं कि धर्म के लिये दुख सहने का मुझे सुअवसर मिलेगा। परन्तु एक प्रार्थना है। इसी प्रकार भगवान ईसा मसीह को भी लटकाया गया था। मैं तो भगवान ईसा का एक छोटा सा दास हूँ। मुझे उनके समान ही नहीं लटकाना चाहिये। इसलिये मुझे ऐसे गाड़िये कि मेरा सिर नीचे को हो और पैर ऊपर को।" यह सुनकर सब दंग रह गये। पीटर ने धर्म के लिये प्राण दे डाले। परन्तु वे ईसाई धर्म की नींव दृढ़ कर गये।

३—सन्त पाल

भगवान ईसा के स्वर्ग जाने के पीछे ईसाई धर्म की नींव को दृढ़ करने वाले दो महात्मा थे। उनमें से पीटर का हाल तो हम पहिले वर्णन कर चुके हैं। अब सन्त पाल का जीवन लिखते हैं।

सन्त पाल बड़े विद्वान्, साहसी, नम्र स्वभाव के, और बड़े कार्य-कुशल थे। इन्होंने ईसाई धर्म का देशदेशान्तरों में प्रचार किया था। रूम, यूनान, अफ्रीका आदि देशों में भी प्रचार किया। यहूदियों के सिवाय अन्य जातियों को ईसाई धर्म का उपदेश करने का काम इन्होंने ही अधिक किया था। यही नहीं वरन् ईसाई धर्म की गूढ़ बातों के अर्थ ठीक ठीक इन्होंने ही बताये हैं।

परन्तु ये बचपन से ही भगवान ईसा के भक्त नहीं थे। पहिले तो ये ईसाई धर्म के कट्टर विरोधी थे, और यहूदियों के समान ही रहते थे। उन्हीं के रस्म रिवाज पालन करते थे। ईसाई और यहूदियों में भेद केवल यह था कि ईसाई भगवान ईसा के भक्त थे और उनके वचनों में विश्वास करते थे। फिर ईसाइयों में सन्त स्टेफिन एक बड़े तेजस्वी सन्त हुए। उन्होंने उपदेश दिया कि ईसाइयों को यहूदियों के रस्म रिवाज नहीं मानना चाहिये। इस पर यहूदी लोग बहुत बिगड़े। और सन्त स्टेफिन को पत्थरों से मार मार कर मार डाला। जिस समय सन्त स्टेफिन को पत्थर मारे जा रहे थे उस समय पाल भी वहीं थे, और पत्थर मारने वालों के कपड़ों की रखवाली कर रहे थे। इसके पीछे पाल ने ईसाइयों को नष्ट करने का बीड़ा उठाया और हज़ारों को जेलखाने में डलवा दिया, या मार डाला। ईसाई लोग यरूशलम से भाग कर दूसरे नगरों में जाने लगे। पाल ने उनका वहाँ भी पीछा किया। एक बार पाल दमश्क नगर के ईसाइयों को पकड़ने के लिये यरूशलम से चल पड़े। जब दमश्क के ईसाइयों को ये समाचार मिले कि पाल हम

को नष्ट करने के लिये आ रहा है तो वे बड़े भयभीत हुए और भगवान ईसा मसीह से प्रार्थना करने लगे कि "हे प्रभो हमारी रक्षा करो।" भगवान ईसा मसीह ने उनकी रक्षा ही नहीं की वरन् पाल को भी ईसाई बना लिया।

दमश्क जाते समय एक दिन रास्ते में पाल और उनके साथियों ने देखा कि उनके चारों ओर सूर्य से भी अधिक तेज़ प्रकाश भर गया है। वे लोग भय के मारे गिर पड़े। उस समय उस प्रकाश में पाल ने भगवान ईसा मसीह को देखा।

भगवान ईसा—तू मुझको क्यों सताता है? कबतक तू पत्थर से सिर मारेगा?

पाल—हे प्रभो, तुम कौन हो?

भगवान ईसा—मैं ईसा हूँ, जिसको तु सताता है। अब तू नगर में जा और जो तुझे करना चाहिये, वह तुझे वहीं पर मालूम हो जायगा।

यह सुन कर पाल उठे परन्तु भगवान के प्रकाश से उनकी आँखें ऐसी चौंधिया गई थीं कि उनको कुछ भी दिखाई नहीं पड़ता था। लोग उनका हाथ पकड़ कर नगर में ले गये।

उधर दमश्क नगर में हनन्यास नाम के एक पुरुष को भगवान ईसा मसीह ने दर्शन दिये।

भगवान ईसा मसीह—हे हनन्यास, उठो, और यहूदा के घर जाओ। वहाँ पाल नाम का एक मनुष्य प्रार्थना कर रहा है। तुम जाकर उसे उपदेश दो।

हनन्यास—हे प्रभो, मैंने सुना है कि उसने तो यरुसलम में ईसाइयों को बड़ा दुःख दिया है और यहाँ भी इसी लिये आया है।

भगवान मसीह—परन्तु तुम जाओ। उसको मैंने राजाओं, यहूदियों, और अन्य जातियों में उपदेश करने के लिये चुना है।

जब हनन्यास उस घर में गया जहाँ पाल ठहरे थे, तो देखा कि वे एक अँधेरे कमरे में पड़े हुए भगवान मसीह का ध्यान कर रहे हैं। हनन्यास ने उनके सिर पर हाथ रक्खा। पाल ने चौंककर आँखें खोलीं। अब उनको दिखाई पड़ने लगा। उन्होंने देखा कि एक मनुष्य बड़े प्रेम से उनकी ओर देख रहा है।

पाल—भाई, तुम कौन हो?

हनन्यास—मैं हनन्यास हूँ। मुझे प्रभु ईसा मसीह ने तुम्हारे पास भेजा है। अब तुम दुःख मत करो। उठो और प्रभु का काम करो।

पाल—क्या, प्रभु मेरे पापों को क्षमा करेंगे?

हनन्यास—भाई, प्रभु ने उनको भी क्षमा किया था जिन्होंने उनको काठ पर गाड़ा था। उन्होंने मनुष्यों का पाप दूर करने को ही स्वयं कष्ट सहा था। उनके प्रेम का पार नहीं है। देखो उन्होंने मुझ से कहा है कि तुम को क्षमा ही नहीं किया वरन् अन्य जातियों में प्रभु का उपदेश देने के लिये तुम्हीं को चुना है।

पाल का मन आनन्द से भर गया और उसी दिन से वे

पहाड़ों में चले गये। वहाँ लगभग साल भर तक तपस्या करते रहे। और फिर दमश्क में जाकर ईसाई धर्म का ही उपदेश करने लगे। वहाँ के लोग यह देख कर, कि जो ईसाइयों के मारने पर तुला हुआ था, वही ईसाई धर्म का उपदेश करता है, बड़े चकित हुए। उन्होंने पाल को मार डालने का प्रयत्न किया। तब ईसाइयों ने पाल को एक टोकरी में बिठा कर नगर की दीवार से उतार दिया। पाल दमश्क से यरुशलम में आये। पहिले यरुशलम के ईसाई उनसे मिलने में डरे। परन्तु पीछे महात्मा बरनबा के समझाने से मिलने लगे। लोगों ने उनको वहाँ भी नहीं रहने दिया। अन्त में महात्मा बरनबा और सन्त पाल ने अन्तिओक़ नगर को ही अपना निवास स्थान बनाया। उन्होंने वहाँ ईसाई धर्म का ख़ूब प्रचार किया। और फिर वहाँ से दूसरे देशों में भी प्रचार करने को निकले।

बरनबा भी बड़े महात्मा थे। उन्होंने अपनी सारी सम्पत्ति बेच कर धर्म के प्रचार में लगा दी थी। इनका उपदेश बड़ा ही मनोहर होता था।

सन्त पाल जब दूसरे नगरों में प्रचार करने को जाते थे तो अपना खर्च मज़दूरी करके कमाते थे। जब वे मज़दूरी करते थे तो लोग उनको साधारण मनुष्य समझा करते थे। पर जिस दिन वे उपदेश करते थे उस दिन लोगों को उनका प्रभाव मालूम होता था। सन्त पाल कहा करते थे कि भगवान का भजन करने और स्वर्ग जाने का अन्य जातियों को भी वैसा ही अधिकार है जैसा

कि यहूदियों को है। इस बात से यहूदी लोग उनसे बिगड जाते थे और तरह तरह के दुःख देते थे। पाँच बार तो सन्त पाल को लगभग चालीस चालीस कोड़े लगाये गये थे। एक बार तो लोगों ने उनको पत्थरों से ऐसा मारा कि वे बेहोश होकर गिर पड़े। लोगों ने समझा कि मर गये। इसलिये उन्हें उठा कर नगर के बाहर डाल गये। परन्तु भगवान् की कृपा से वे बच गये। इसके बाद कई वर्ष तक सन्त पाल जेलखाने में क़ैद रहे। और अन्त में निर्दयी राजा नीरो के समय में उन्हें मार ही डाला गया।

सन्त पाल से ईसाई लोग इतना प्रेम करते थे कि उनके लिये बड़े से बड़ा कष्ट सहने को तय्यार रहते थे। पाल भी लोगों को उपदेश देने में गद्‌गद् हो जाते थे। उनकी आँखों से प्रेम के आँसू बहने लगते थे, और लोग भी प्रेम से विकल हो जाते थे। पाल विद्वानों के साथ विद्वान और बालकों के साथ बालक के समान रहते थे। एक स्थान पर उनको क़ैद कर लिया गया। जेलख़ाने के दारोग़ा ने उनके पैरों को काठ के तख़्तों में बन्द कर दिया कि जिससे भाग न जायँ। रात को जब पाल पड़े पड़े भगवान से प्रार्थना कर रहे थे तो एक साथ बड़ा शब्द हुआ। ऐसा भूचाल आया कि जेलखाने के सब द्वार खुल गये और पाल के बन्धन टूट गये। परन्तु फिर भी पाल जेलख़ाने से नहीं भागे। उनको भगवान पर अटल विश्वास था। वे वैसे ही रहना चाहते थे जैसे कि भगवान उनको रखना चाहें।

जब उस शब्द से जेलख़ाने का दारोग़ा जागा तो उसने सब

द्वारों को खुला हुआ देखा। उसने समझा कि क़ैदी अवश्य भाग गया होगा। उसने इस बात से दुखी होकर अपने ही मारने के लिये तलवार उठाई। इतने में ही पाल ने भीतर से पुकारा कि "अरे भाई, अपने आप को मत मारो। मैं भागा नहीं।"

दारोग़ा दीपक लेकर भीतर गया और पाल को वहाँ देखा। वह उनके पैरों में गिर पड़ा और पूछा "महाराज, आप भाग क्यों नहीं गये।"

सन्त पाल—हम तो भगवान का कार्य करते हैं। जैसे वह हमें रखता है, वैसे रहते हैं। फिर हम जेलखाने से भागने की चिन्ता क्यों करें?

दारोग़ा—महाराज, उस धर्म को धन्य है जिसमें ऐसी शान्ति मिलती है। मैं भी ऐसी शान्ति प्राप्त करने के लिये क्या करूँ?

सन्त पाल—भगवान मसीह के उ[illegible] को मानो।

दारोग़ा पर इतना प्रभाव पड़ा कि वह परिवार सहित ईसाई हो गया। पाल का ऐसा प्रभाव था कि लोग उनके शरीर से कपड़ा छुआ कर बीमारों पर डालते थे, तो बीमार अच्छे हो जाते थे। बहुत से जादूगरों ने अपनी पुस्तकें जला डालीं और ईसाई हो गये। पाल ने स्त्री और पुरुषों को समान समझा और बराबरी का दर्जा दिया। वे किसी जाति भेद को नहीं मानते थे। चाहे कोई यहूदी रस्म रिवाज को माने, चाहे कोई किसी और रस्म रिवाजों को माने। चाहे कोई किसी रस्म रिवाज को माने या न माने परन्तु ईसा मसीह की भक्ति सब कर सकते हैं। यही उनका मत था।

जब वे अन्तिम बार यरुशलम जा रहे थे, तो एक ज्योतिषी उनके पास आया।

ज्योतिषी—तुम यरुशलम को मत जाओ, क्योंकि वहाँ लोग तुम को बाँध लेंगे।

पाल के और साथी—तो फिर आप यरुशलम क्यों जाते हैं? धर्म के प्रचार के लिये आपका जीवन बड़ा आवश्यक है।

पाल—तुम लोग रो कर क्यों मेरे मन को भी तोड़ते हो? भगवान ईसा मसीह के नाम के लिये बँधना तो क्या मैं मरने के लिये भी तैयार हूँ।

अन्त में वे यरुशलम गये और वहाँ क़ैद कर लिये गये। जब वे क़ैदी की दशा में रूम भेजे गये, तो रूम में बहुत से सिपाही तक उनके उपदेश से ईसाई हो गये। अन्त में उन्होंने भी धर्म के लिये प्राण दे दिये।

४—सन्त .फ्रानसिस असिसी

ईसाइयों में सन्त फ़्रानसिस भी बड़े सन्त हो गये हैं। इनमें विशेषता यह थी कि इनको सब विचारों के ईसाई मानते हैं।

फ़्रानसिस नम्रता, प्रेम, शान्ति और त्याग की मूर्ति थे। इनका जीवन चरित्र बड़ा ही शिक्षाप्रद है।

सन्त .फ्रानसिस के पिता के यहाँ कपड़ों की दुकान थी बालकपन में सन्त .फ्रानसिस बड़े ऊधमी थे। जब युवा हुए, तो

बड़े बने ठने रहते थे। और ऊधम में हमेशा युवकों के अगुआ रहा करते थे। जब ये बीस वर्ष के हुए तो एक युद्ध में क़ैद हो गये। शत्रुओं ने इन्हें साल भर तक क़ैद रखा। उस समय से ये बीमार रहने लगे और मन की चंचलता भी कुछ कम हो गई। एक दिन इन्होंने स्वप्न में देखा कि एक बड़े कमरे में बहुत से हथियार टँगे थे उन सब पर क्रॉस का चिह्न बना हुआ था। और किसी ने उनसे कहा "ये हथियार तुम्हारे सिपाहियों के लिये हैं।" इसका उनके मन पर बड़ा प्रभाव पड़ा। उन्होंने समझ लिया कि उनका जीवन धर्म की लड़ाई लड़ने के लिये है। उस समय से वे बहुत चिन्तित रहने लगे। अब अपने पहिले के साथियों के साथ ऊधम भी नहीं मचाते थे। एक बार वे घोड़े पर चढ़े जा रहे थे। रास्ते में उन्हें एक कोढ़ी दिखाई दिया। पहिले तो उसे देख कर उन्हें घृणा हुई। परन्तु फिर सोचा कि मुझे किसी से भी घृणा नहीं करनी चाहिये। वे लौटे। घोड़े पर से उतरे और उस कोढ़ी को गले से लगाया। जो कुछ धन उस समय उनके पास था सब उसको दे दिया।

एक दिन एक मित्र ने हँस कर पूछा—मित्र, अब तो बड़े विचारशील हो गये हो! किस चिन्ता में पड़े रहते हो? क्या विवाह करने का विचार हो रहा है?

फ़ानसिस—बात तो कुछ ऐसी ही है। एक बड़ी सुन्दर स्त्री से विवाह करने का विचार है।

मित्र—दावत के समय हमको मत भूल जाना।

फ़ानसिस—क्या तुम जानते हो कि वह स्त्री कौन है ?

मित्र—कोई भाग्यवती ही होगी। बताओ तो सही कौन है ?

फ़ानसिस—उस देवी का नाम है "निर्धनता"।

मित्र—मालूम होता है कि दिमाग़ भी बिगड़ गया है। डाक्टर को दिखाओ।

फ़ानसिस—अच्छा थोड़े दिनों में देख ही लेना।

और अन्त में ऐसा ही हुआ। सन्त फ्रानसिस ने निर्धन रहने ही की प्रतिज्ञा की। थोड़े दिन पीछे ये रूम की तीर्थयात्रा करने गये। वहाँ सन्त पीटर की समाधि के ऊपर जो कुछ रुपया इनके पास था, चढ़ा दिया। इतना ही नहीं वरन् उन्होंने बहुमूल्य कपड़े एक भिखारी को दे दिये और उसके फटे पुराने मैले कपड़े आपने पहिन लिये। फिर दिन भर भूखे प्यासे दरवाज़े पर भिखारियों के ही झुण्ड में खड़े रहे।

इनके नगर के पास एक छोटा सा गिरजा था। वह बहुत टूटी फूटी दशा में था। जब ये रूम से लौटे तो एक दिन उस गिरजा-घर में भगवान का ध्यान कर रहे थे। उस समय इनको ऐसा मालूम हुआ मानो कोई उनसे कहता हो कि "फ़ानसिस, मेरा गिरजा टूटा फूटा है। इसको बना दे।"

बस ध्यान से उठे और घर जाकर पिता की दूकान से कपड़ों का एक गट्ठर बाँध कर घोड़े पर लादा और पास के एक नगर में जाकर वह कपड़ा और घोड़ा दोनों ही बेच दिये। बिक्री का रुपया ले कर ये उस गिरजे के पुजारी के पास पहुँचे।

.फ्रानसिस—पूज्य महोदय, यह रुपया लीजिये और इस गिरजे को बनवाइये ।

पुजारी—युवक, तुम क्या काम करते हो? तुम्हारे पास यह रुपया कहाँ से आया?

.फ्रानसिस—मेरे पिता कपड़ों की दूकान करते हैं। उनके कुछ कपड़ों और मेरे घोड़े के बेचने से यह रुपया मिला है।

पुजारी—क्या इस रुपये को तुम्हारे पिता ने इस कार्य के लिये भेजा है?

.फ्रानसिस—नहीं। वे तो मकान पर न थे। मैं ही कपड़ा बेचने ले गया था और बेचकर अभी लौट रहा हूँ।

पुजारी—युवक, तुमने चोरी की है। चोरी का रुपया गिरजे के बनाने में नहीं लगाया जा सकता।

.फ्रानसिस—तो फिर मैं इस रुपये का क्या करूँ?

पुजारी—अपने पिता के पास जाओ और उनको रुपया देकर क्षमा माँगो।

फ्रानसिस—वे क्या मुझे क्षमा कर देंगे? वे तो बड़े क्रुद्ध होंगे और मुझे मारेंगे।

पुजारी—मार को सह लेना। इससे तुम्हारा पाप तो दूर हो जायगा।

.फ्रानसिस ने उस रुपये को वहीं सड़क पर फेंक दिया और आप वहाँ से भाग गये और पास ही एक पहाड़ की खोह में छिप गये। जब उनके पिता को ख़बर लगी तो वे रुपया तो उठा ले गये परन्तु .फ्रानसिस उनको ढूँढ़ने पर भी न मिले। महीने

भर पीछे लोगों ने देखा कि भूख से निर्बल, फटे और मैले कपड़े पहिने हुए, .फ्रानसिस नगर में आ रहे हैं, और उनके पीछे लड़कों का झुंड ताली बजाता हुआ जा रहा है। कोई पत्थर मारता है, कोई चिढ़ाता है। महीने भर के भगवद् भजन से .फ्रानसिस का मन शुद्ध शान्त हो गया था। वे अपने पिता से क्षमा माँगने और उनके दिये जाने वाले दण्ड को सहने जा रहे थे। जब पिता को यह समाचार मिले, तो वे क्रोध में भरे हुए आये और .फ्रानसिस को घसीट कर घर ले गये। वहाँ उनको .खूब मारा और बाँध कर एक अँधेरी कोठरी में बन्द कर दिया। पिता के बाहर चले जाने पर माता ने .फ्रानसिस को खोल दिया। .फ्रानसिस ने भाग कर उसी टूटे गिरजे में शरण ली और साधु होने का निश्चय कर लिया। उनके पिता ने उनको नगर के विशप (धर्माधिकारी) के सामने बुलाया और बोले—

पिता——महाराज, .फ्रानसिस के भरोसे मैं अपनी सम्पत्ति नहीं छोड़ सकता।

.फ्रानसिस का मुख यह सुन कर प्रसन्नता से चमक उठा और वे बोले——"पिताजी मुझे तो आपकी दौलत नहीं चाहिये। अब मेरा आपकी सम्पत्ति पर कुछ अधिकार नहीं है। ये कपड़े आपके हैं। इन्हें भी लीजिये। अब तक मैं आपको पिताजी कहता था। अब मेरे पिता वे हैं, जो स्वर्ग में रहते हैं।" यह कह कर .फ्रानसिस ने कपड़े भी उतार कर पिता को दे दिये और "निर्धनता" देवी से विवाह करके जंगल को चल दिये। जंगल में एक दिन

इनको कुछ डाकू मिले, जिन्होंने डाट कर कहा "खड़ा रह ।"

फ्रानसिस——कहो भाई, क्या चाहते हो ।

डाकू——हम जो चाहते हैं, सो बता देंगे। तुम बताओ कि कौन हो?

फ्रानसिस——संसार के बादशाह का चोबदार ।

डाकू——अच्छा चोबदार साहब, जो कुछ, आपके पास है, उसे चुपचाप रख दीजिये ।

फ्रानसिस——भाई, मेरे पास तो कपड़े हैं, सो ले लो ।

डाकुओं ने उन्हें नंगा करके छोड़ दिया । समय रात्रि का था । बरफ पड़ रही थी । फ्रानसिस ठिठुरते हुए साधुओं के एक मठ पर पहुँचे । वहाँ बर्तन माँजने पर नौकर हो गये । फिर एक मित्र से साधुओं के कपड़े भीख में माँग लिये । और उनको पहिन कर अपने पुराने नगर में आये । फ्रानसिस ने नगर में घर घर से पत्थर के टुकड़े माँग कर उस टूटे हुए गिरजे में जमा किये और उस गिरजे को अपने ही हाथों से बनाया । नगर के लोग उनका यह अद्भुत कार्य देख कर दंग रह गये ।

इतना ही नहीं । एक दिन गिरजे में उपदेश हो रहा था । उपदेशक ने कहा——भगवान ईसा मसीह ने अपने चेलों को आज्ञा दी है कि "तुम इन भूले भटकों को सच्चे रास्ते पर लाओ । इनसे कहो कि अपने पापों के लिये पछतायें । तुम सोना चाँदी अपने पास मत रखो । न नोट रक्खो, दो कोट भी तुम मत रखो, न दो जोड़ी जूते या लकड़ी । इस प्रकार सब त्याग कर लोगों को धर्म का उपदेश करो ।"

बस फिर क्या था। फ्रानसिस ने बाहर आकर सब चीज फेंक दीं। उस दिन से नंगे पैर केवल एक चोगे को पहन और कमर में रस्सी बाँधे हुए घूम घूम कर लोगों को उपदेश करने लगे। उन लोगों पर ऐसा प्रभाव पड़ा कि बहुत से लोग इनके चेले होकर साधु हो गये और बहुत सी स्त्रियाँ भिक्षुणी हो गईं। फ्रानसिस ने उनके लिये अलग अलग मठ बनवा दिये। मठ क्या थे झोंपड़ियों के समूह थे। इनके चेले झोंपड़े भी अपने ही हाथों से बना लेते थे।

फ्रानसिस की आज्ञा थी कि उनका कोई चेला अपने पास कुछ भी धन न रखे। मठ में खाने की मेज़ भी बहुत ही साधारण थी। फ्रानसिस कहते थे कि ऐसी मेज़ रखनी चाहिये कि कोई भिखारी भी आवे तो खाना खाने में उसे ऐसा मालूम पड़े कि वह भिखारियों के साथ ही खाना खा रहा है।

एक बार रात्रि को मठ में किसी के कराहने की आवाज़ आई। फ्रानसिस ने उठ कर सुना तो एक साधु कह रहा था—अरे मरा। फ्रानसिस ने उसके पास जाकर पूछा—कहो क्या बात है?

साधु—मैं भूख से मर रहा हूँ।

वह साधु उपवास बहुत किया करता था। इस बार उपवास उसको सहन नहीं हुआ। फ्रानसिस ने सब साधुओं को बुलाया और सब लोग खाने के लिये बैठ गये। उस साधु के बराबर फ्रानसिस आप बैठ गये। सब ने खाना खाया, कि जिससे उस साधु को अकेले खाना खाने में लज्जा न लगे।

एक बार वे बीमार हो गये। उन दिनों जाड़ा अधिक पड़ रहा था। डाक्टर ने कहा आज कल सरदी पड़ती है। आपको कपड़े अधिक पहनने चाहिये।

फ़्रानसिस—परन्तु मैं तो एक चोग़े से अधिक कुछ नहीं पहन सकता।

डाक्टर—अच्छा चोग़े के नीचे उसी में एक बालदार खाल सिलवा लीजिये।

फ़्रानसिस—वाह, और लोगों को धोखा दूँ। ऊपर से तो मालूम हो कि बस चोग़ा है और भीतर उसके खाल सिली हो!

डाक्टर—भला इसमें धोखा क्या है? आख़िर वह रहेगा तो चोग़ा ही।

फ़्रानसिस—जी नहीं। जैसा ऊपर हो, वैसा ही भीतर होना चाहिये।

डाक्टर—अच्छा तो आप ऊपर भी खाल सिलवा लीजिये।

फ़्रानसिस—(कुछ सोचकर) अच्छा, यदि उतनी ही बड़ी खाल ऊपर भी सिल जाय तो ठीक है।

सन्त फ़्रानसिस और इनके चेले अपने खाने के लिये मज़दूरी करते थे। वे छोटे से छोटा काम करने के लिये भी तैयार रहते थे। किसानों के साथ काम करते करते बालकों के समान भगवान के गुणों को गाते जाते थे। सुनने वाले उनके भोलेपन पर मोहित हो जाते थे। यदि कहीं काम नहीं मिलता था तो भीख माँग कर पेट भरते थे।

सन्त फ़्रानसिस किसी पापी को तसल्ली देते तो उससे हिल-

मिल कर उसकी लज्जा को दूर कर देते थे। यदि वे कोढ़ियों के मकान पर जाते थे, तो उनके साथ एक ही थाली में खाना खाते थे, और कुछ भी मन न बिगाड़ते थे। उनका मन प्रेम से ऐसा भरा रहता था कि हिंसक पशु भी उनके सामने प्रेम से नम्र हो जाते थे।

एक बार सन्त .फ्रानसिस एक पहाड़ में भगवान का भजन करने चले गये। वहाँ उन्होंने चालीस दिन तक उपवास किया और भगवान ईसा मसीह के सूली पर चढ़ने के ध्यान में ऐसे मग्न हुए कि अपनी देह की सुध भूल गये। उस समय उन्होंने बड़े भारी प्रकाश में फ़रिश्तों के दर्शन किये। और उसी समय उनके शरीर पर उन घावों के चिन्ह बन गये कि जो भगवान ईसा मसीह के सूली लगाने के समय कीलें ठोकने से हो गये थे। ये चिन्ह सन्त .फ्रानसिस के शरीर में मरते समय तक बने रहे।

सन्त .फ्रानसिस का उपदेश बड़ा मधुर होता था। जब वे किसी नगर में उपदेश देने जाते तो वहाँ के लोग गाते व बजाते उनको आगे से लेने के लिये आते थे और बड़े आदर से नगर में लिवा ले जाते थे। गिरजाघरों के घन्टे उनके स्वागत के लिये बजने लगते थे। लोग उस जगह को चूमा करते थे जहाँ चलते समय उनके पैर पड़ते थे।

एक बार उनके उपदेश का ऐसा प्रभाव पड़ा कि जितने सुनने वाले थे सब ने कहा कि महाराज हमें भी अपना चेला बना लीजिये।

मरते समय भी इन्होंने भगवान का भजन करते हुए ही शरीर छोड़ा था।

सन्त फ़्रानसिस के उपदेश से ईसाई धर्म में फिर से एक नई शक्ति आ गई। ईसाई इनका नाम बड़े प्रेम से स्मरण करते हैं।

५—पारसी धर्म

१–पैग़म्बर ज़रदश्त

इस नाम के कई महात्मा हुए हैं। जिन महात्मा ने पारसी धर्म को चलाया है, वे ज़रदश्त स्पीतम नाम के थे। ये फारिस के एक प्रसिद्ध राजा गुश्तास्प के समय में हुए थे।

फारिस देश से पश्चिम की ओर एक देश है जिसका नाम अब आज़रवीजां है। पहिले इसका नाम आर्यमनमवीजो था। वहाँ एक नदी दैत्या नाम की है। उसी की एक शाखा दरेजा नदी है। दरेजा के किनारे उरमिया नगर में पुरशास्प के घर ज़रदश्त का जन्म हुआ था। उस समय उन देशों में मन्त्र तन्त्र का बहुत प्रचार था। बहुत से देवी देवता पूजे जाते थे। और उनके पुजारी लोगों को डरा धमका कर अपना मतलब सीधा किया करते थे। लोग एक ईश्वर की पूजा को भूल गये थे। इन मन्त्र उपचारों की ओट में पाप बहुत बढ़ने लगा था। कथा है कि उस समय पृथ्वी ने गऊ का स्वरूप रख कर भगवान अहुरमाज़दा से प्रार्थना की कि "हे भगवान मेरे ऊपर पापों का भार बढ़ रहा है। मेरी रक्षा कीजिये।" भगवान अहुरमाज़दा ने पृथ्वी को धैर्य दिया और

ज़रदश्त को आज्ञा दी कि संसार में जन्म लेकर सत्य धर्म का प्रचार करो और पृथ्वी का दुख दूर करो।

पुरुशस्प और उसकी स्त्री दुग़दॉ बड़े धर्मात्मा थे। उन की गाय भी ऐसी धर्मात्मा थी और अहिंसा का ऐसा पालन करती थी कि वह जंगल में हरे पत्ते भी नहीं खाती थी वरन पेड़ पर से गिरे हुए सूखे पत्ते खाती थी। इन्हीं के यहाँ ज़रदश्त ने जन्म लिया था। उस समय के जादूगरों ने ज़रदश्त के जन्म होने का हाल पहिले से ही जान लिया था। इसलिये उन्होंने भी ज़रदश्त को मार डालने की तैयारी की।

एक दिन दुग़दॉ ने एक ज्योतिषी से अपने एक स्वप्न का हाल पूछा:—

दुग़दॉ—ज्योतिषीजी, मैंने रात को एक बड़ा अनोखा स्वप्न देखा है। आप उसका अर्थ बताइये।

ज्योतिषी—क्या स्वप्न देखा है?

दुग़दॉ—मैंने देखा कि एक बड़ी भारी काली घटा आई है जिससे चारों ओर अँधेरा ही अँधेरा हो गया है। उसी अँधेरे में बहुत से जंगली जानवर मेरे घर पर घिर आये हैं। मैं उनको देख कर बहुत डरी। एकाएक उन जानवरों ने मेरे पेट को फाड़ डाला, और उसमें से बच्चा निकाल लिया। मैं अपना दुःख तो भूल गई और उस बच्चे के लिये रोने लगी।

ज्योतिषी—फिर क्या हुआ?

दुग़र्दों—एक साथ उन काले बादलों को चीर कर एक बड़ा भारी प्रकाश निकला। उस प्रकाश में एक फ़रिश्ता दिखाई दिया। उसके एक हाथ में एक पुस्तक और दूसरे हाथ में एक वृक्ष की डाली थी। उस फ़रिश्ते ने वह किताब उन जानवरों के ऊपर फेंक दी। वे जानवर डर कर भाग गये परन्तु उनमें से तीन जानवर फिर भी डटे रहे। तब उस फ़रिश्ते ने वह वृक्ष की डाली भी उनके ऊपर फेंकी, जिससे वे जानवर जल गये। फिर उस फ़रिश्ते ने उस बालक को मेरे पेट में रख दिया और वह घाव भी उसी समय अच्छा हो गया। बस, फिर मैं घबरा कर उठ बैठी।

ज्योतिषी—तुम्हारी जन्मपत्री भी है?

दुग़र्दों—हाँ, है।

ज्योतिषी—उसको लाकर मुझे दे दो। और फिर तीन दिन पीछे आकर अपना उत्तर ले लेना।

तीन दिन पीछे ज्योतिषी ने उत्तर दिया—तेरा पुत्र पैग़म्बर होगा। उस किताब का अर्थ यह है कि वह नया धर्म चलावेगा। वे जानवर जादूगर हैं। उसके तीन बड़े शत्रु होंगे परन्तु सब नष्ट हो जायँगे।

दुग़र्दों इससे बड़ी प्रसन्न हुई और उस बालक के बचाने की चिन्ता करने लगी। जब ज़रदश्त पैदा हुए तो नगर का हाकिम उनको मारने आया। उसने तलवार उठाई परन्तु वह तलवार उठी की उठी ही रह गई। वह उस बालक को मार नहीं सका। तब

जादूगरों ने ज़रदश्त के पिता को समझाया—"यह बालक हमारे और तुम्हारे बाप दादा के धर्म को नष्ट कर देगा। इसका जीवित रहना अच्छा नहीं है। इसलिये इसको हमको दे दीजिये।" पुरुशस्प ने अपने धर्म को बचाने के लिये यह बात मान ली। उसने दुग़दॉ के रोने का भी विचार नहीं किया। जादूगर बालक ज़रदश्त को जंगल में ले गये। एक जगह उसको रख कर चारों ओर लकड़ियाँ जमा करके उनमें आग लगा दी। और आग से घिरे हुए बालक को छोड़कर चल दिये। दुग़दॉ भी छिपी छिपी पीछे चली आई थी। उसने झट आग में से ज़रदश्त को निकाल लिया। भगवान की कृपा से उस समय तक आग ने ज़रदश्त को छुआ भी नहीं था। थोड़े दिन पीछे जादूगरों को यह भेद मालूम हो गया। वे फिर ज़रदश्त को उठा ले गये, और एक बैलों के तंग रास्ते में डाल दिया, कि जिससे वह उनके पैरों से कुचल कर मर जाय। परन्तु भगवान की कृपा से वे फिर बच गये। एक बैल उनको अपने चारों पैरों के बीच में करके खड़ा हो गया। और सब बैल उसके इधर उधर से निकल गये। दुग़दाँ उनको वहाँ से भी उठा लाई। तीसरी बार जादूगरों ने ज़रदश्त को और भी तंग रास्ते में डाल दिया। परन्तु यहाँ एक घोड़ा इसी तरह खड़ा हो गया और ज़रदश्त की जान फिर बच गई। चौथी बार जादूगर ज़रदश्त को भेड़ियों की माँद में डाल आये और भेड़ियों के बच्चों को मार डाला, कि जिससे भेड़िये क्रोध करके ज़रदश्त को मार डालें। जब सन्ध्या को भेड़िये लौट कर आये तो एक नई तरह के बालक के रोने को सुनकर घबरा

कर भाग गये। दुग़दों उनको वहाँ से भी उठा लाई। अब की वार माता ने पिता से कहा :—

दुग़र्दों—इस बालक को कई वार मारने का प्रयत्न किया गया है, परन्तु यह हर वार बच गया है। अब तो इस पर दया कीजिये। ईश्वर को जो करना होगा उसको आप टाल नहीं सकते। फिर क्यों इस बालक को दुःख देते हैं।

पुरुशस्प—अच्छा, मैं विद्वान् ज्योतिषी से पूछता हूँ।

पुरुशस्प पुरताष के पास गया। पुरताष ने जन्मपत्री देख कर कहा :—

पुरताप—यह बालक दीर्घायु होगा।

पुरुशस्प—तो क्या यह बालकपन में नहीं मर सकता ?

पुरताप—नहीं, यह दीर्घायु है।

पुरुशस्प ने यह हाल आकर दुग़र्दों से कहा। फिर दोनों ने सलाह करके ज़रदश्त को एक बूढ़े मनुष्य को सौंप दिया कि जिससे वह जादूगरों से बचा रहे। इस प्रकार कई वर्ष तक ज़रदश्त छिपे रहे। परन्तु फिर जादूगरों को उनका पता चल गया। एक दिन ज़रदश्त बीमार हो गये। एक जादूगर ने औषधि के बहाने से ज़रदश्त को विष दे दिया। ज़रदश्त ने उसे पहिचान कर फेंक दिया। जब यह समाचार पुरुशस्प को मालुम हुए तो वे ज़रदश्त को घर ले आये। इस समय ज़रदश्त सात वर्ष के थे। एक दिन पुरुशस्प ने बहुत से पुजारियों और जादूगरों की दावत की। खाने के पीछे बातचीत होने लगी।

पुरुशस्प—हे पुरताप, तुम सब जादूगरों के सरदार हो। कोई ऐसी करामात दिखाओ जिससे चित्त प्रसन्न हो।

ज़रदश्त—हे पिताजी, जादूगरी को छोड़ कर भगवान अहुरमाज़दा की पूजा कीजिये। जादूगरी से नर्क भोगना पड़ता है।

सात वर्ष के बालक की यह बात सुनकर लोग आश्चर्य करने लगे। परन्तु पुरताप को क्रोध आ गया। वह बोला—ज़रदश्त, तू और तेरा बाप कुछ चीज़ नहीं हो। दुनिया का कोई आदमी मेरे सामने ऐसी ढीठता नहीं कर सकता जैसी कि तेरे समान एक नादान बालक ने की है। इसके दण्ड में मैं तेरे सम्बन्ध में लोगों से ऐसी बातें कहूँगा कि जिससे वे तुझ से घृणा करने लगें।

ज़रदश्त—यदि आप झूँठ कहेंगे तो भगवान अहुरमाज़दा के सामने दोषी होंगे। मैं तो फिर भी सत्य बात ही कहूँगा। और अपनी युक्तियों से आपको लज्जित करूँगा।

ज़रदश्त बचपन से ही बड़े दयालु और विचारशील थे। न तो वे ऊधम मचाते थे और न व्यर्थ गप्प हाँका करते थे। बड़े-बूढ़ों का आदर करते थे। अपने पिता के गोदाम में से भुसा और घास निकाल कर दूसरों के भूखे गाय बैलों को खिला देते थे। एक दिन एक मनुष्य ग़रीबों को आटा बाँट रहा था। ये पहिले से उसे नहीं जानते थे। परन्तु फिर भी उसके काम में लग पड़े,, क्योंकि वह ग़रीबों की सेवा कर रहा था।

पन्द्रह वर्ष की आयु में ज़रदश्त घर से निकल पड़े और जंगल को चल दिये। वहाँ एक पहाड़ की गुफा में रहने लगे।

और भगवान अहुरमाज़दा का भजन करने लगे। रात को वह आकाश में तारों की चाल को भी देखा करते थे। कहते हैं कि उस पहाड़ के चारों ओर एक प्रकाश सा फैला रहता था। ज़रदश्त सिवाय दूध के और कुछ नहीं खाते थे। सात वर्ष तक वे मौन रहे। किसी से बोले भी नहीं। जब ज़रदश्त तीस वर्ष के हुए तब भगवान अहुरमाज़दा ने उनको दर्शन देकर धर्म का उपदेश दिया।

ज़रदश्त की इच्छा ईरान (फ़ारिस) जाने की थी। जब वे दैत्या नदी को पार करके दूसरे किनारे पर खड़े हुए तो उन्होंने अपने सामने एक बड़ा भारी प्रकाश देखा। उस प्रकाश में उनको वोहूमनः नाम का मुख्य फ़रिश्ता दिखाई दिया। उसके हाथ में एक चमकते हुए वृक्ष की डाल थी।

फ़रिश्ता—ज़रदश्त, तू क्या चाहता है ?

ज़रदश्त—मेरी बस यही इच्छा है कि जो कुछ अहुरमाज़दा की इच्छा हो वही हो। और मैं सदैव धर्म पर दृढ़ रहूँ।

फ़रिश्ता—चलो, तुम हमारे साथ चलो। तुमको भगवान अहु-रमाज़दा आप ही धर्म का उपदेश देंगे।

ज़रदश्त बेहोश हो गये। उनकी जीवात्मा उस फ़रिश्ते क साथ स्वर्ग को गई वहाँ स्वर्ग के सब दर्जे देखे। फिर भगवान अहुर-माज़दा के दर्शन किये। और भगवान ने ज़रदश्त को धर्म का उपदेश दिया और आज्ञा दी कि इसको लोगों में फैलाओ।

ज़रदश्त—भगवान, मनुष्य आपकी पूजा किस रूप में करें।

भगवान अहुरमाज़दा—ज़रदश्त, मेरे समान रूप की कोई वस्तु

संसार में नहीं है। फिर भी अग्नि को मेरा चिन्ह समझो क्योंकि वह प्रकाशवान है और सब का हित करने वाली है।

उसके पीछे ज़रदश्त बहुत वर्षों तक देशों में घूमे। कहते हैं कि वे चीन और भारतवर्ष तक आये थे। परन्तु किसी ने उनका धर्म स्वीकार नहीं किया। इस समय वे अनेक बार बेहोश हुए और अनेक दृश्य देखे। फ़रिश्तों से बातचीत भी की। दस वर्ष में ज़रदश्त का एक चचेरा भाई और उसके घर के लोग नये धर्म में आये। भगवान अहुरमाज़दा ने दर्शन देकर आज्ञा दी कि ईरान के बादशाह गुश्तास्प के पास जाओ। ज़रदश्त एक प्याले में जलती हुई अग्नि लेकर बादशाह गुश्तास्प के दरबार में पहुँचे।

बादशाह—तुम कौन हो? और क्या चाहते हो? तुम्हारे हाथ में यह क्या है?

ज़रदश्त—मैं अहुरमाज़दा का पैग़म्बर हूँ। उसने मुझे हुक्म दिया है कि सत्य धर्म को फैलाऊँ। यह देवी देवों की पूजा और जादूगरी नर्क में ले जाने वाली हैं। इसलिये, हे बादशाह, अहुरमाज़दा को पूजो। देखो, यह अग्नि उसका चिन्ह है, यह मेरे हाथ को जलाती भी नहीं।

बादशाह—क्या इस अग्नि की गर्मी तुमको मालूम नहीं होती?

ज़रदश्त—हे बादशाह, तू ख़ुद इसको हाथ में लेकर देख! यह दया के समुद्र भगवान का चिन्ह है। इससे तेरा भी हाथ नहीं जलेगा।

बादशाह ने भी उसको हाथ में लिया। और दूसरे लोगों ने

भी उस प्याले को हाथ में लिया पर किसी का भी हाथ नहीं जला। बादशाह ने ज़रदश्त के लिये कुर्सी मँगवाई और ज़रदश्त व बादशाह के दरबार के विद्वानों में शास्त्रार्थ हुआ। विजय ज़रदश्त की हुई।

बादशाह——अच्छा आप अपने को पैग़म्बर कहते हैं, तो कोई करामात दिखाइये।

ज़रदश्त——(ज़न्द अवस्ता निकाल कर) मेरी करामात तो बस यह किताब है।

ज़रदश्त किताब सुनाने लगे। दरबारी विद्वानों ने हार जाने से खिसिया कर एक षड्यन्त्र रचा। उन्होंने ज़रदश्त के रहने के स्थान पर कुत्ते बिल्ली के नाखून व हड्डियाँ रखवा दीं। जब दूसरे दिन ज़रदश्त किताब पढ़ कर सुना रहे थे तो विद्वानों ने बादशाह से कहा कि यह जादूगर है। इसने हमको जादू से जीता है, विद्वत्ता से नहीं। यदि विश्वास न हो तो इसके ठहरने की जगह की तलाशी ली जाय। बादशाह ने तलाशी लेने का हुक्म दिया। वहाँ पर वह सब चीजें मिलीं। बादशाह ने ज़रदश्त को जादूगर समझ कर कैद कर दिया। एक दिन पहिरेदार ज़रदश्त का खाना देर में लाया। ज़रदश्त ने उससे इसका कारण पूछा।

पहिरेदार——तुमको खाना मिल गया, यही बहुत समझो।

ज़रदश्त——क्यों भाई, ऐसी क्या बात हो गई?

पहिरेदार——आज कल किसी को भी चैन नहीं है। जब राजा

को दुख हो. तो प्रजा को भी दुख है, दुख में काम सब गड़बड़ हो जाते हैं ।

ज़रदश्त—राजा को क्या दुख है ?

पहिरेदार—राजा का प्यारा घोड़ा बीमार हो गया है । उसके चारों पैर मारे गये हैं ।

ज़रदश्त—राजा से कहो कि मैं उसके घोड़े के पैरों को अच्छा कर सकता हूँ ।

पहिरेदार—इतनी विद्या होती, तो यहाँ क्यों रहते ।

ज़रदश्त—तुम क्या समझो । जाकर राजा से कहो तो सही ।

जब राजा के पास ये समाचार पहुँचे, तो उसने ज़रदश्त को तत्काल बुला भेजा ।

बादशाह—ज़रदश्त, क्या मेरे घोड़े को अच्छा कर सकते हो ?

ज़रदश्त—हाँ, यदि बादशाह मेरी चार बातें मान जायँ, तो चारों पैर अच्छे हो जायँ ।

बादशाह—वे चार बातें क्या हैं ?

ज़रदश्त—बादशाह मेरे धर्म को स्वीकार करें और साथ में रानियाँ और प्रधान मन्त्री भी करें और बादशाह का बेटा इसके प्रचार के कार्य का भार अपने ऊपर ले ।

बादशाह ने ये सब शर्तें मंजूर कर लीं और घोड़े के पैर अच्छे हो गये ।

बादशाह ने बहुत से अग्नि मन्दिर बनवाये और पारसी धर्म का प्रचार करने के लिये बहुत से विद्वान भारत और चीन को

भेजे। कहते हैं कि भारतवर्ष और यूनान से कितने ही विद्वान ज़रदश्त से बहस करने को आये। पर ज़रदश्त बहस से पहिले ही अपने किसी चेले से एक किताब पढ़वाते थे जिसमें वे सब प्रश्न लिखे हुए होते थे जिनको कि वे विद्वान करना चाहते थे। उनके उत्तर भी दिये हुए होते थे। इस आश्चर्य-जनक बात से विद्वान हार मान जाते थे।

तुर्किस्थान का राजा अरजास्प बादशाह गुश्तास्प के धर्म बदलने पर बहुत अप्रसन्न हुआ और उसने ईरान पर चढ़ाई करदी। पहिली लड़ाई में तो अरजास्प हार गया पर जब गुश्तास्प बाहर गया हुआ था तब अरजास्प ने उसकी राजधानी को लुट लिया। ज़रदश्त लगभग ८२ अन्य पुजारियों के साथ भगवान अहुरमाज़दा की स्तुति कर रहे थे। उसी समय अरजास्प ने जाकर उन सब पुजारियों को मार डाला। फिर बादशाह गुश्तास्प के लड़के स्फन्दयार ने अरजास्प को युद्ध में हरा कर अपने देश से भगा दिया और अनेक देशों में पारसी धर्म फैलाया।

२—अर्दशीर बावकान

यूनान के राजा सिकन्दर ने जब फारिस को जीत लिया था तब उसके पीछे बहुत से राजा हुए जिनके राज्य में लोग भगवान अहुरमाज़दा की पूजा फिर भूलने लगे। परन्तु बादशाह अर्दशीर

बाबकान के समय में पारसी धर्म फिर पहिले की तरह चमकने लगा। यह बादशाह पारसी धर्म के इतिहास में बड़ा प्रसिद्ध है।

जब फारिस देश में अर्दवान नाम का राजा राज्य करता था उस समय शहर इस्तख़ार का हाकिम एक मनुष्य बाबक था। बाबक की भेड़ों के चराने पर सासान नाम का एक मनुष्य नौकर था। एक दिन बाबक ने स्वप्नों का अर्थ बताने वाले विद्वानों को बुलाया और उनसे अपने तीन स्वप्नों का अर्थ पूछा।

बाबक—मैंने तीन रात तक बराबर बड़े अद्भुत स्वप्न देखे हैं। उन स्वप्नों का अर्थ अच्छा होगा या नहीं, इसके बताने के लिये मैंने आप लोगों को कष्ट दिया है।

विद्वान—राजन्, उन स्वप्नों का अर्थ अवश्य अच्छा ही होगा। हम ध्यान से सुन रहे हैं।

बाबक—पहिली रात को मैंने अपने सामने सासान को, जो मेरी भेड़ चराने वाला है, खड़े देखा। उसके सिर पर से सूरज के समान बड़ा भारी प्रकाश फैल रहा था। जिससे मेरी आँखें चौंधियाने लगीं।

विद्वान—और क्या क्या देखा ?

बाबक—उस रात को तो यही देखा ?

विद्वान—फिर दूसरी रात को ?

बाबक—दूसरी रात को मैंने देखा कि सासान हाथी पर चढ़ा जा रहा है। और फारिस के लोग उसको झुक कर प्रणाम कर रहे हैं।

विद्वान—फिर क्या हुआ।

बावक—बस उस रात को यही देखा। पर तीसरी रात को देखा कि सासान खड़ा है और उसके सन्मुख एक दस्तुर (पारसी पुजारी) खड़े हैं। उनके हाथ में तीन प्याले हैं। उनमें तीन प्रकार की अग्नि जल रही है। जिनको पुजारी, सिपाही और साधारण लोग जलाया करते हैं। उस अग्नि का प्रकाश चारों ओर फैल रहा है। बस येही तीन स्वप्न हैं। आप लोग कृपा करके इनका अर्थ बताइये।

विद्वान—महाराज, जिस मनुष्य को आपने इन तीनों स्वप्नों में देखा है वह या तो आप ही कहीं का राजा होगा या उसका बेटा राजा होगा। बस यह ही इनका अर्थ है।

बावक ने सासान भेड़ चराने वाले को अपने सामने बुलाया और पूछा।

बावक—सासान, सच बताओ कि तुम कौन हो और किस वंश के हो ?

सासान—मैं तो आपका भेड़ चराने वाला दास हूँ। और मैं क्या हो सकता हूँ। आपको ऐसी चिन्ता की क्या आवश्यकता है ?

बावक—नहीं, नहीं, हमको मालूम हो गया है कि तुम किसी ऊँचे वंश के हो। इससे ठीक ठीक क्यों नहीं बता देते !

सासान—यदि आप की ऐसी ही आज्ञा है तो सुनिये। बादशाह गुश्तास्प के पोते बेहमन दराज़दस्त का पुत्र सासान था। दराज़दस्त के मरने पर राज्य उसकी लड़की

को मिला। सासान को नहीं मिला। मैं उसी सासान की सन्तान में हूँ। समय के चक्कर से अब हम लोग निर्धन हो गये हैं।

बाबक ने सासान का बड़ा आदर किया। उसके लिये एक महल बनवा दिया और अपनी बेटी से उसकी शादी कर दी। इसी सासान का लड़का अर्दशीर हुआ। बाबक अर्दशीर को बेटे के समान रखता था। इसलिये उसका नाम अर्दशीर बाबकान पड़ गया। अर्दशीर बड़ा साहसी और चतुर था। बाबक ने उसको राज्य का कार्य भी सिखा दिया था। बादशाह अर्दवान के कानों तक भी उसकी प्रशंसा पहुँची। बादशाह ने उसे अपने पास बुला लिया और अपने साथ रखने लगा। एक दिन बादशाह, उसका लड़का, और अर्दशीर शिकार खेलने को गये। शिकार के समय एक भयानक हिंसक पशु बादशाह के लड़के पर दौड़ पड़ा। अर्दशीर ने तुरन्त ही मार कर उसे गिरा दिया। इतने में बादशाह के लड़के ने भी उसके तीर मारा। अब दोनों में उस जानवर के लिये झगड़ा हुआ।

अर्दशीर—इस जानवर को तो मैंने तीर मार कर गिराया है। इसलिये यह मेरा है।

शाहज़ादा—तुमने तीर मारा ही क्यों। यह तो मेरा शिकार है।

अर्दशीर—वह तो आपके ऊपर दौड़ पड़ा था। मैंने तो उससे आपकी जान बचा दी। क्या इसमें भी कुछ बुराई की।

शाहज़ादा—मैं अपनी जान आप बचा सकता था। तुमने बीच

में ही तीर मार कर यह झगड़ा खड़ा कर दिया। शिकार तो मेरा ही है।

अर्दशीर—शिकार मेरा है, क्योंकि मेरे तीर से गिरा है।

अन्त में यह झगड़ा बादशाह तक पहुँचा और बादशाह बोले "अर्दशीर तुम शाहज़ादे की बराबरी करते हो। तुम उसके पास रहने योग्य नहीं हो। इसलिये आज से तुमको अस्तबल का हाकिम बना दिया गया। हम इससे कठोर दण्ड इसलिये नहीं देते कि तुमने हमें अपनी होशियारी और बहादुरी से प्रसन्न किया है।"

परन्तु अर्दशीर इस अपमान को नहीं सह सका। वह राजधानी से भाग आया और इस्तखार में ही रहने लगा। बाबक के मरने पर अर्दशीर इस्तखार का राजा बन गया। उसने बादशाह अर्दवान को कर देना बन्द कर दिया, और अपनी स्वतन्त्रता की घोषणा कर दी। इतना ही नहीं, वह आसपास के देशों को भी अपने राज्य में मिलाने लगा। जिन देशों को वह जीतता था, वहाँ पारसी धर्म का फिर से प्रचार करता जाता था।

जिस नगर को आज कल करमानशाह कहते हैं, उसका नाम उन दिनों किर्मानशाह था। वह नगर किर्म अज़दहे (अजगर साँप) की राजधानी था। वहाँ पर एक क़िले के भीतर एक मन्दिर था, जिसमें वह अज़दहा रहा करता था। अर्दशीर को यह देख कर बहुत दुःख हुआ कि कुछ लोग उसके पुजारी बन रहे थे और उसके नाम पर आसपास के प्रदेश में शासन करते थे। प्रतिदिन भेड़ों और बैलों का खून उस अज़दहे को पिलाया जाता था। अर्दशीर

सोचने लगे कि ये लोग कितने मूर्ख हो गये हैं कि भगवान को छोड़ कर साँप की पूजा करते हैं, और उस पूजा के लिये इतने जानवर मारने का पाप करते हैं। उसने किर्म को मारने की ठानी और कुछ फौज लेकर व्यापारी का रूप रख कर किर्मानशाह की ओर चला। उसके साथ बहुमूल्य वस्तुओं से भरे बहुत से बैल थे। जब नगर में पहुँचा तो फौज को तो क़िले के पास छिपा दिया और सिपाहियों से कह दिया कि जब तुम क़िले के बीच में से धुआँ निकलते देखो तो फौरन धावा बोल देना। फिर वे दो-तीन सिपाहियों को साथ लेकर क़िले के नीचे गये और पहिरेदार से बातचीत करने लगे।

पहिरेदार—तुम कौन हो और क्या चाहते हो?

अर्दशीर—मैं शाह किर्म को भेंट चढ़ाने आया हूँ। तुम पुजारी को खबर कर दो। सूचना मिलने पर पुजारी बाहर आये।

पुजारी—क्यों भाई, क्या चाहते हो?

अर्दशीर—महाराज, मुझे शाह किर्म की कृपा से व्यापार में बड़ी सफलता हुई है। इससे मैं उनकी भेंट के लिये यह कुछ थोड़ा सा सामान लाया हूँ। मुझे भीतर आने की आज्ञा मिल जानी चाहिये। पुजारी ने उसको भीतर आने की आज्ञा दे दी। अर्दशीर ने बड़े बड़े बहुमूल्य सामान निकाल निकाल कर क़िले के सब लोगों को बाँट दिये। इससे सब उससे प्रसन्न हो गये। जब इस प्रकार सबसे मेल हो गया तो कई दिन तक अर्दशीर ने क़िले वालों को

दावत खिलाई । फिर एक दिन मुख्य पुजारी से बोले—

अर्दशीर—महाराज, मुझे यह सब शाह किर्म की कृपा से मिला है । इसलिए मेरी बड़ी इच्छा है कि मैं दो तीन दिन उन की आपही पूजा करूँ और उनको भोग चढ़ाऊँ ।

पुजारी—तुम सच ही शाह किर्म के बड़े भक्त हो । हम तुम्हारी प्रार्थना अस्वीकार नहीं कर सकते । तुम अवश्य उनको भोग लगाओ ।

जिस दिन उसके भोग लगाने की बारी आई, तो उस दिन उसने क़िले वालों की भी फिर दावत की, और खाने में ऐसी चीज़ें मिला दीं जिन्हें खाकर वे बेहोश हो जायँ । फिर अर्दशीर ने भेड़ों के खून के साथ ताँबा पिघला कर तय्यार किया । पिघला हुआ ताँबा भी कुछ कुछ खून सा दिखाई देता था । किर्म को भोग देने के समय खून के बदले पिघला हुआ ताँबा उसके मुख में डाल दिया । गर्म गर्म ताँबे से किर्म का शरीर फट गया, और किर्म बड़ा भारी शब्द करके मर गया । उसके बड़े भारी शरीर से धुआँ निकलने लगा । धुएँ को देख कर फ़ौज ने भी धावा बोल दिया । किर्म के शब्द को सुन कर क़िले वालों की बेहोशी दूर हो गई । बड़ी लड़ाई हुई । अन्त में क़िले पर अर्दशीर का अधिकार हो गया । उस प्रदेश को भी उसने अपने राज्य में मिलाकर, वहाँ भी भगवान अहुरमाज़दा की पूजा चलाई ।

जब बादशाह अर्दवान ने देखा कि अर्दशीर का बल बढ़ता ही जाता है तो वे भी फ़ौज लेकर लड़ने को आये, परन्तु विजय अर्दशीर

की ही हुई। अर्दवान मारा गया और अर्दशीर सारे फ़ारिस देश के राजा हो गये। अर्दशीर बड़े बुद्धिमान थे। वे दूरदर्शी, दयालु और उदार भी थे। उनके राज्य में प्रजा सुखी व निर्भय रहती थी। जब वे बहुत बूढ़े हो गये तो अपने बेटे को राज्य सौंप कर आप भगवद्-भजन करने लगे। उस समय अर्दशीर ने अपने बेटे को बहुमूल्य उपदेश दिया और कहा कि "तुम कभी यह मत भूलना कि तुमको धर्म की वैसी ही रक्षा करनी चाहिये जैसी कि राज्य की। राज्य और धर्म एक दूसरे को शक्ति प्रदान करते हैं। धर्म तो बिना राज्य के रह भी सकता है, परन्तु राज्य बिना धर्म के स्थिर नहीं रह सकता। राज्य में शान्ति रहने के लिये धार्मिक बन्धन ही सर्वोत्तम साधन है। इसलिये तुम अपनी प्रजा के सामने अपने जीवन से ही धर्म का आदर्श उपस्थित करो कि जिससे तुम्हारी प्रजा तुमको और मुझको दोनों को आशीर्वाद दे।"

पारसी धर्म में जो बाहरी बातें घुस गई थीं उनको दूर करने के लिये अर्दशीर ने एक बड़ी भारी सभा की। उसमें चालीस हज़ार दस्तूर और विद्वान जमा हुए। उनमें से चार हज़ार मुख्य विद्वान चुने गये। फिर उनमें से चार सौ चुने गये। उन चार सौ को ज़न्द अवस्ता अच्छी तरह ज़बानी याद थी। इन चार सौ में से भी चालीस और उनमें से भी सात सर्वश्रेष्ठ विद्वान चुने गये। इनसे बादशाह अर्दशीर ने कहा—"आप लोगों में से क्या कोई शरीर को छोड़ कर स्वर्ग में जा सकते हैं और वहाँ का हाल देख कर यहाँ बता सकते हैं?"

विद्वान—यह वही कर सकता है जिसने सात वर्ष की आयु से अभी तक कोई पाप न किया हो।

अर्दशीर—क्या ऐसा कोई एक भी है।

विद्वान—हाँ, वीराफ इस योग्य है।

कहते हैं कि अर्दाये वीराफ होमरस (सोमरस) पीकर एक तख्ते पर सो गये और सात दिन तक बेहोश रहे। उस समय में उनकी आत्मा ने जाकर स्वर्ग और नर्क के हाल देखे। जब वे होश में आये तो उन सब का वर्णन किया। जो जो वे कहते गये वह सब लिख लिया गया। इस किताब का नाम अर्दाये वीराफ पड़ा। पारसी लोग इसको ज़न्द अवस्ता के पीछे धर्म की मुख्य पुस्तक मानने लगे। अर्दशीर ने विद्वानों को देश देशान्तरों में इस पुस्तक का प्रचार करने के लिये भेजा।

अर्दशीर ने भी दो पुस्तकें लिखी हैं। उनमें से एक सदाचार पर है। बादशाह नौशेरवाँ आदिल ने उसकी बहुत सी कापियाँ बनवा कर सारे देश में फैला दी थीं।

३—बहराम गोर

अर्दशीर बाबकान के पीछे बहराम गोर और नौशेरवाँ आदिल पारसी इतिहास में बहुत प्रसिद्ध हैं। ज़रदश्त को भगवान् आहुर-माज़दा के दर्शन हुए थे। उस समय भगवान अहुरमाज़दा ने भी इन्हीं तीन बादशाहों का विशेष वर्णन किया था। कहते हैं

कि उस समय भगवान अहुरमाज़दा ने ज़रदश्त को शहद के समान कोई मीठी चीज़ खाने को दी। उसको खाते ही ज़रदश्त को समाधि अवस्था प्राप्त हो गई, जिसमें उन्होंने स्वर्ग व नर्क की सब छिपी हुई बातें देखीं। उस समय उन्होंने एक सात शाखाओं-वाला वृक्ष देखा। जब वह उस समाधि से जागे तो उन्होंने भगवान अहुरमाज़दा से उस वृक्ष का अर्थ पूछा।

भगवान अहुरमाज़दा—वह वृक्ष पारसी धर्म का चिन्ह है।

ज़रदश्त—उसकी सात शाखायें क्यों हैं?

भगवान अहुरमाज़दा—पहिली शाखा तेरे पैग़म्बर होने का चिन्ह है। दूसरी शाखा का अर्थ गुश्तास्प का पारसी धर्म स्वीकार करना है। तीसरी शाखा से गुश्तास्प के पीछे के राजाओं का संकेत है। चौथी अर्दशीर बाबकान का चिन्ह है। यह पारसी धर्म को फिर से फैलावेगा। पाँचवीं शाखा बहराम गौर की है। इसके राज्य में धर्म बलवान् होगा। छठीं शाखा नौशेरवाँ की है। इसके राज्य में बिगड़ी हुई दशा फिर सुधरेगी और सातवीं शाखा पारसियों के राज्य का अन्त समय का चिन्ह है।

बहराम गौर बड़ा दयालु और उदार बादशाह हुआ है। इसके पिता ने इसको अपने मित्र अरब के राजा के पास शिक्षा प्राप्त करने के लिये भेज दिया था। जब उसके पिता की मृत्यु हो गई तो फारिस के सरदारों ने छोटे राजकुमार ख़ुसरो को राजा बना दिया। बहराम के साथ अरब के राजा ने फ़ौज भेजी कि उसकी सहायता से वह

अपने राज्य पर अधिकार कर ले। परन्तु बहराम को अपने देश-वासियों का खून बहाना अच्छा नहीं लगा। इससे उसने लड़ाई नहीं की वरन् फारिस के सरदारों के पास एक सन्देश भेजा कि "आपस के झगड़े में व्यर्थ खून बहाना ठीक नहीं है। मुझमें और .खुसरो में जो राज्य के योग्य हो उसी को राजा बनाया जाय। इसकी परीक्षा यह है कि राज-मुकुट को दो भूखे शेरों के बीच में रख दिया जाय। हममें से जो उस राज-मुकुट को उठा लावे वही राजा हो।" सरदारों ने यह बात मान ली। मुकुट बीच में रख कर दोनों ओर से दो भूखे शेर छोड़े गये। और दोनों राजकुमारों से मुकुट लाने को कहा गया।

.खुसरो—मुझे यह राज्य नहीं चाहिये। यह भी कोई परीक्षा की विधि है! कहाँ राज-कार्य की चतुरता और कहाँ यह बेढंगी बात।

बहराम—मैं उस मुकुट को अभी उठा लाता हूँ।

यह कहकर वह अखाड़े में कूद पड़ा और दोनों शेरों के बीच में से मुकुट उठा लाया।

सब ने कहा—"मुकुट आपका ही है, क्योंकि आपही उसको शेरों से छुड़ा कर लाये हैं।"

बस बहराम राजा हो गया। उसने लड़ाई ही नहीं बचा दी, वरन् उन सरदारों को भी, जिन्होंने इसको राज्य से वंचित रखने का षड्यंत्र रचा था, क्षमा करके अपना प्यारा बना लिया।

बादशाह बहराम बड़ा दानी था। यदि उसके पास कोई सहायता माँगने को जाता था, तो वह उसकी भरपूर सहायता करता था। इस प्रकार दान करने से ख़जाना ख़ाली होने लगा। तब सब वज़ीर मिल कर उसको समझाने के लिये गये।

वज़ीर——हूज़ूर राज्य की शक्ति तब ही तक बनी रह सकती है जब तक कि उसके ख़जाने में धन हो। यदि आप इस प्रकार धन दान करेंगे तो ख़जाना ख़ाली हो जायगा।

बादशाह बहराम——ख़ज़ाना ख़ाली होने से फिर क्या होगा?

वज़ीर——दूसरे देश वाले राज्य को निर्बल समझ कर आक्रमण करेंगे और फिर उनको रोकना कठिन हो जायगा।

बादशाह बहराम——यदि प्रजा की भक्ति राज्य में न हो, तो क्या केवल धन से राज्य की रक्षा हो सकती है?

वज़ीर——नहीं, कदापि नहीं।

बादशाह बहराम——अब यह बताओ कि प्रजा में प्रेम उत्पन्न करने के लिये उसे सुख देने के सिवाय और क्या विधि है?

वज़ीर यह उत्तर सुन कर चुपचाप चले गये। बादशाह बहराम गौर अपनी प्रजा की दशा देखने को घूमने जाया करते थे। एक दिन उन्होंने देखा कि कुछ लोग नाच रहे हैं, परन्तु मुख से कुछ नहीं बोलते। यह देख बादशाह को बड़ा आश्चर्य हुआ।

बादशाह बहराम——भाई, तुम चुपचाप क्यों नाच रहे हो। गाते क्यों नहीं?

नाचने वाले——हम को गाना नहीं आता।

बादशाह बहराम—यदि तुम को नहीं आता, तो किसी दूसरे को बुला लेते। परन्तु बिना गाने के नाच कैसा?

नाचने वाले—हमने बहुत ढूँढ़ा परन्तु कोई गाने वाला मिला ही नहीं। हम सौ अशर्फी तक देने को तय्यार थे।

बादशाह ने राजमहल को लौट कर हुक्म दिया कि भारतवर्ष से गाने वाले बुलाये जायँ। कहते हैं कि बारह हज़ार भारतवर्षीय गाने वाले फारिस जाकर रहने लगे।

जब दूसरे देश वालों ने बहराम की ऐसी बातें सुनीं तो उन्होंने समझा कि अब तो फारिस वाले नाच रंग में लगे रहते हैं, अब भला वे लड़ेंगे क्या। यह सोच कर तूरान के तुर्कों ने फारिस पर चढ़ाई कर दी। वे देश को उजाड़ते हुए राजधानी तक पहुँच गये। बादशाह बहराम गौर राज्य का कार्य अपने वज़ीर को सौंप कर कहीं चला गया। लोगों ने समझा कि बादशाह डर कर भाग गया। तुर्क बहुत खुश हुए और नाच रंग में लग गये। फारिस के सरदारों ने भी हिम्मत छोड़ दी। एक रात को जब तुर्क लोग नाच रंग में लगे थे। तब उन्होंने एक बड़ा अद्भुत शब्द सुना। वे आश्चर्य कर ही रहे थे कि बहराम ७००० चुने हुए सवारों के साथ उन पर टूट पड़ा। हर एक सवार के पास सूखी खाल का एक थैला लटक रहा था। उन थैलों में कंकड़ भरे हुए थे। उन कंकड़ों के बजने से बड़ा घोर शब्द हो रहा था, जो तुर्कों की समझ में न आया। उससे वह भयानक रात और भी भयानक हो गई। तुर्कों का राजा मारा गया और तुर्क भाग

गये। इस युद्ध से बहराम की धाक फिर जम गई। परन्तु बहराम ने जीत कर भी तुर्कों के देश पर अधिकार नहीं किया वरन् अपने सब पड़ोसियों से सन्धि कर ली। उस समय बहराम का प्रताप इतना बढ़ा हुआ था कि रूम का बादशाह भी उसको कर देता था। बहराम तीर चलाने में बड़ा चतुर था। एक बार अपनी एक प्रिय स्त्री के साथ वन में गया। वहाँ एक हिरन सोया हुआ था। बहराम ने एक तीर ऐसा मारा कि वह हिरन के कान को ज़रा छूकर ही निकल गया। हिरन ने सोते सोते समझा कि कोई मक्खी बैठ गई है। उसने मक्खी उड़ाने के लिये पंजे से कान को झाड़ दिया। जब वह कान को झाड़ रहा था उस समय बहराम ने एक तीर और मारा, जिससे कान और पैर छिद कर जुड़ गये।

बहराम (रानी की ओर देख कर)—कहो, कैसा तीर मारा।

रानी (हँस कर)—अभ्यास से सब हो जाता है।

बहराम (असन्तुष्ट होकर)—ज़रा तुम ही अभ्यास करके दिखा दो।

रानी—देखा जायगा।

बहराम—बहुत अच्छा।

रानी कुछ दिन के लिये अलग एक गाँव में रहने लगी। वहाँ उसने एक गाय का बछड़ा मोल लिया। वह उस बछड़े को लिये हुए छत पर चढ़ती और उतरती थी। जैसे जैसे वह बछड़ा बड़ा होता गया वैसे वैसे रानी का अभ्यास भी बढ़ता गया। लगभग चार वर्ष पीछे एक दिन शिकार खेल कर बहराम उसी गाँव में ठहरा। उसने एक स्त्री को एक गाय को लिये हुए छत पर चढ़ते देखा।

उसे बड़ा आश्चर्य हुआ। उसने वज़ीर से पूछा कि यह कौन स्त्री है जो एक गाय को लेकर छत पर चढ़ जाती है।

वज़ीर—हुजूर मैं अभी पूछ कर आता हूँ।

वज़ीर रानी के पास पहुँचा।

वज़ीर—देवी, बादशाह बहराम को यह देख कर बड़ा आश्चर्य है कि तुम गाय को ले कर ऊपर चढ़ जाती हो। उन्होंने आपका परिचय पूछा है।

रानी—मैं अपना नाम सिवाय बादशाह के और किसी को नहीं बता सकती। यदि वे जानना चाहते हैं तो आप आवें और अकेले आवें, नहीं तो मैं उनको भी नहीं बताऊँगी।

वज़ीर यह सन्देशा ले कर राजा के पास गया। बहराम यह सुन कर स्वयं वहाँ गये।

बहराम—देवी, तुम बड़ी बलवान हो जो गाय को लेकर ऊपर चढ़ जाती हो।

रानी—अभ्यास से सब कुछ हो जाता है।

यह कह कर रानी ने मुँह खोल दिया।

बहराम—ओ हो! तुम मेरी खोई हुई रानी हो। यह तुमने मुझे उस दिन का दण्ड दिया है, तुम जीतीं और मैं हारा।

बहराम को अपने राजा होने का कुछ भी अभिमान न था। उसका बेटा बड़ा मूढ़ था। उसको विद्या पढ़ाने का बहुत प्रयत्न किया गया, परन्तु उसने कुछ न पढ़ा। एक दिन उसको पढ़ाने वाले गुरु बहराम के पास आये और कहने लगे।

गुरुजी——महाराज, राजकुमार पढ़ता लिखता तो कुछ भी नहीं है। परन्तु अब उसकी विवाह करने की इच्छा मालुम होती है। जिससे वह विवाह करना चाहता है वह एक बहुत ही ग़रीब मनुष्य की लड़की है। मैंने आपको यह सूचना दे दी है जिससे फिर आप मुझको दोष न दें।

बहराम ने उस मनुष्य को बुलाया और बोले। भाई मुझे मालूम हुआ है कि राजकुमार तुम्हारी लड़की से विवाह करना चाहता है। मुझे इसमें कुछ आपत्ति नहीं है। परन्तु यदि तुम्हारी लड़की चाहे तो राजकुमार के जीवन को सुधार सकती है।

निर्धन मनुष्य——महाराज, मेरे ऊपर आपकी बड़ी कृपा है। कहाँ आप और कहाँ मैं? फिर भी आप मेरी लड़की को पुत्रवधू बनाना चाहते हैं, यह बड़े सौभाग्य की बात है। हम तो आपके दास हैं। जो आज्ञा हो वही किया जाय।

बहराम——तुम्हारी लड़की राजकुमार से यह कहे कि वह उस समय तक विवाह न करेगी जब तक राजकुमार अपने पद के योग्य विद्या प्राप्त न कर लेगा।

मनुष्य——महाराज, वह अवश्य ऐसा करेगी।

हुआ भी ऐसा ही। राजकुमार शीघ्र ही बड़े चतुर और विद्वान हो गये। बादशाह बहराम ने उनका उसी निर्धन मनुष्य की लड़की से विवाह कर दिया। यह बादशाह गौर नाम के एक जंगली जानवर का शिकार बहुत खेला करते थे। इसीसे इनका नाम बहराम गौर पड़ गया था। एक दिन बादशाह शिकार खेलने को गये और

जब वे शिकार के पीछे घोड़ा दौड़ा रहे थे तो अकस्मात् उनका घोड़ा एक तालाब में गिर गया। वह तालाब इतना गहरा था कि फिर बहराम या उनके घोड़े का पता न लगा। इस प्रकार इस लोकप्रिय बादशाह ने स्वर्ग को गमन किया।

४—नौशेरवाँ आदिल

पारसी बादशाहों में नौशेरवाँ आदिल का नाम बड़ा प्रसिद्ध है। यह राजा अपनी न्यायप्रियता के लिये विख्यात है? इसीसे इसका नाम आदिल (जो न्याय करने वाला हो) पड़ गया है।

इसके पिता के समय में मज़दकी धर्म एक नया धर्म चला था। इसका पिता कोबाद भी मज़दक का चेला था। मज़दक का सिद्धान्त था कि सब वस्तुएँ ईश्वर की हैं। किसी एक मनुष्य की नहीं हैं। इसलिये उसके साथी चाहे किसी चीज़ को छीन लेते थे। मज़दक बादशाह कोबाद को भी अपना चेला बनाने को आया।

मज़दक—मुझे ईश्वर ने आज्ञा दी है कि मैं सत्य धर्म को चलाऊँ, और मेरा जो सिद्धान्त है वही धर्म है।

बादशाह कोबाद—यदि तुम पैग़म्बर हो तो कोई करामात दिखाओ।

मज़दक—अवश्य, आप लोग अग्नि को ईश्वर का स्वरूप मानते हो। यदि वह मेरे पैग़म्बर होने की गवाही दे तो आप लोग मानेंगे?

बादशाह कोबाद—हाँ, अवश्य मानेंगे।

मज़दक बादशाह कोबाद को अग्नि मन्दिर में लिवा ले गया

और चालाकी से अग्नि के पीछे एक मनुष्य को छिपा दिया। उसने अग्नि के पीछे से गहरी आवाज़ में कहा कि मज़दक मेरा पैग़म्बर है और उसका धर्म सच्चा है। बादशाह कोबाद को विश्वास हो गया। जब बादशाह मज़दकी हो गया तो उस धर्म को देशवासी भी मानने लगे। इस धर्म की अनियमितता से नियमों के बंधन ढीले होने लगे। लोग एक दूसरे की चीज़ निडर होकर छीनने लगे। राज्य की नींव खोखली होने लगी। थोड़े दिनों में बादशाह कोबाद मर गया। फारिस के सरदार नौशेरवाँ के पास गये।

सरदार—बादशाह कोबाद की मृत्यु से राज्य आपका हुआ। आप उसको सँभालिये।

नौशेरवाँ—मुझे राज्य नहीं चाहिये। आप किसी और को बादशाह बना दीजिये।

सरदार—यह आप क्या कहते हैं? आप से योग्य और कौन है जिसे बादशाह बनावें।

नौशेरवाँ—राज्य की दशा बिगड़ रही है। उसे सुधारने के लिये मुझे सख़्ती करनी पड़ेगी।

सरदार—यह तो आपका अधिकार है। आप जो उचित समझें वह करें।

नौशेरवाँ—सम्भव है कि जिनको मैं अब आदर और प्रेम की दृष्टि से देखता हूँ जाँच करने पर वे ऐसे न निकलें, तो उनको भी दुःख हो और मुझको भी दुःख हो। मैं ऐसे झगड़े में नहीं पड़ना चाहता।

सरदार—चाहे जो कुछ भी हो, राज्य तो आपको स्वीकार करना ही पड़ेगा। इसके सुधारने की योग्यता हम और किसी में नहीं देखते।

नौशेरवाँ—नहीं, ऐसा नहीं होगा। जब मैं सख्ती करूँगा, तब फिर आप लोग मेरा विरोध करेंगे।

सरदार—नहीं, ऐसा कभी नहीं हो सकता। हम प्रतिज्ञा करते हैं कि आपकी आज्ञा का पालन करेंगे।

जब सरदार नहीं माने, तो नौशेरवाँ ने राज्य ग्रहण कर लिया। कहते हैं कि अरब देश का राजा, मन्ज़र विद्रोही हो गया था। परन्तु नौशेरवाँ के राजा होने पर वह भी दरबार में चला आया और उसने अधीनता स्वीकार कर ली। उस समय मज़दक भी दरबार में बैठा था।

नौशेरवाँ—मन्ज़र, तुम्हारे दरबार में आ जाने से मेरी एक हार्दिक इच्छा तो पूरी हो गई। दूसरी इच्छा तब पूरी होगी, जब मज़दकी धर्म को नष्ट कर दूँगा।

मज़दक (क्रोध से)—नौशेरवाँ, तुम यह क्या कहते हो ? जिस धर्म को हज़ारों स्त्री पुरुष मानते हैं, उस धर्म को तुम नष्ट कैसे कर दोगे।

नौशेरवाँ—जो धर्म समाज के सब नियमों को तोड़कर राज्य को ही नष्ट करता है उसका रहना ठीक नहीं।

इसी समय एक मनुष्य ने दरबार में आकर नौशेरवाँ से शिकायत की "हुजूर, न्याय कीजिये। आपकी दुहाई है। मज़दक के चेले ने मेरी स्त्री छीन ली है।"

नौशेरवाँ (क्रोध से)—मज़दक, अब यह अन्धेर आगे नहीं चलेगा। अपने चेले से कहो कि इसकी स्त्री को लौटा दे और अपने धर्म का प्रचार बन्द करो।

मज़दक—कोबाद के पुत्र को मुझे हुक्म देने का अधिकार नहीं है।

यह कह कर वह उठ कर चला गया। नौशेरवाँ ने हुक्म दिया कि सब मज़दाकियों को क़ैद कर लिया जाय, और जो उन्होंने दूसरों की चीज़ें ली हैं वे उनके मालिकों को लौटा दी जायँ। स्वयं मज़-दक को भी प्राण दण्ड दिया गया। नौशेरवाँ ने मज़दक धर्म को तो नष्ट कर दिया, परन्तु अन्य धर्मों का वह आदर करता था। उसके राज्य में ईसाई, यहूदी, हिन्दू आदि सब स्वतंत्रता से रह सकते थे। उस की एक स्त्री ईसाई थी। वह महल में भी ईसाई धर्म का ही पालन करती थी। नौशेरवाँ ने बहुत सी संस्कृत, यूनानी, यहूदी और अरबी की किताबों का अनुवाद कराया था। रूम के बादशाह ने सात यूनानी विद्वानों को देश से निकाल दिया था। नौशेरवाँ ने उनको अपने यहाँ आश्रय ही नहीं दिया वरन् उनके लिये रूम के बादशाह से लड़ाई की, और उनको रूम को लौट जाने की आज्ञा दिलवाई।

नौशेरवाँ जब राजकुमार था तो उसने एक दिन देखा कि एक मनुष्य ने एक कुत्ते के एक पत्थर मारा। कुत्ते की टाँग टूट गई। दूसरी ओर से एक घोड़ा दौड़ा आ रहा था। घोड़े ने उस मनुष्य के लात मारी। वह मनुष्य ऐसा गिरा कि उसकी टाँग टूट गई। थोड़ी दूर दौड़ने पर वह घोड़ा एक गड्ढे में गिर गया जिससे उस

घोड़े की टाँग टूट गई। इस घटना का उसके मन पर बड़ा भारी प्रभाव पड़ा और वह बड़ा दयालु और न्यायप्रिय हो गया। उसकी यह कथा प्रसिद्ध है कि उसने एक पुस्तक बनाई और बना कर एक विद्वान को दिखाई। विद्वान ने कुछ दोष बताये। नौशेरवाँ ने उनको शुद्ध कर दिया और विद्वान के जाने पर पहिले जैसा ही कर दिया। जब वह विद्वान चला गया तो एक पास में बैठे हुए सज्जन ने कहा—"बादशाह, यह आपने क्या किया? जब काटना ही था तो पहिले शुद्ध क्यों किया था?"

नौशेरवाँ—भाई, यदि मैं उस समय न सुधारता तो उस विद्वान का मन दुखी होता।

सज्जन—फिर अब क्यों काट दिया?

नौशेरवाँ—इसलिये कि मैं जानता हूँ कि उसकी बात ठीक नहीं है। इसी से मैंने उसके चले जाने पर जैसा का तैसा कर दिया।

नौशेरवाँ अपनी प्रजा की दशा देखने को आप घूमा करता था। उसके बड़े राज्य में अनेक प्रान्त थे। उन प्रान्तों के शासकों पर नौशेरवाँ कड़ी निगाह रखता था। एक बार तातार देश से बहुत से गीदड़ फारिस देश में घुस आये और लोगों को दुःख देने लगे। नौशेरवाँ ने मूबद (मुख्य दस्तूर) को बुला कर इसका कारण पूछा।

नौशेरवाँ—क्या आप बता सकते हैं कि इतने गीदड़ क्यों देश में घुस आये हैं?

मूबद—बादशाह, गीदड़ उसी राज्य में बढ़ जाया करते हैं जिस में अन्याय होने लगता है। तुम इसका पता लगाओ कि तुम्हारे राज्य में अन्याय तो नहीं होता।

नौशेरवाँ ने तत्काल एक कमेटी बनाई और उसको आज्ञा दी कि वह सारे राज्य में घूम कर देखे कि कहीं अन्याय तो नहीं हो रहा है। फल स्वरूप चौबीस प्रान्त के शासकों को उनके अन्याय करने के कारण दंड दिया गया।

नौशेरवाँ का राज्य अरब देश से लेकर भारतवर्ष में सिन्धु नदी तक था। नौशेरवाँ का छोटा सा अफसर भी रूम के बादशाह के साथ एक ही मेज़ पर बैठ कर खाना खाता था।

एक बार रूम के बादशाह का एक राजदूत नौशेरवाँ की महल की खिड़की से महल के उपवन को देख कर प्रसन्न हो रहा था। उसने देखा कि महल के चारों ओर तो सुन्दर बाग़ है परन्तु एक ओर एक टूटी सी गन्दी झोंपड़ी है। उसे यह देख कर बड़ा आश्चर्य हुआ। उसने पास ही खड़े हुए एक पारसी सरदार से इसका कारण पूछा।

राजदूत—महल के एक ओर यह ऐसी झोंपड़ी कैसे रह गई?

सरदार—नौशेरवाँ की न्याय-प्रियता के कारण।

राजदूत— यह कैसे?

पारसी सरदार ने उसकी कथा वर्णन की कि "जब नौशेरवाँ महल बनवा रहे थे उस समय उस बुढ़िया को बुला कर झोंपड़ी बेच देने के लिये कहा।

नौशेरवाँ—बुढ़िया, तू इस झोंपड़ी का चाहे जो मोल ले ले, और इसे मुझे दे दे।

बुढ़िया—बादशाह, मेरे घर के सब लोग इसी में रहे और इसी में मरे। मैं अब कितने दिन जीऊँगी। भला इस अपने प्यारों की एक स्मृति को कैसे बेच दूँ।

नौशेरवाँ—तेरे लिये इसी झोंपड़ी की जगह सुन्दर मकान बनवा दूँ।

बुढ़िया—मैंने अभी तक कभी दान नहीं लिया। अब मैं किस के लिये दान का बोझ अपने ऊपर लूँ।

नौशेरवाँ—मेरा उपवन बिगड़ा जाता है। यह बात तू मेरे कहने से करदे।

बुढ़िया—तेरा इतना बड़ा राज्य है। चाहे जहाँ अच्छे से अच्छा महल बनवा ले। फिर मेरी इस छोटी सी झोंपड़ी के पीछे क्यों पड़ता है।

बादशाह नौशेरवाँ ने बाग़ को अधूरा रहने दिया। परन्तु उस बुढ़िया की झोंपड़ी को उठा देना अन्याय समझा। बस यही कारण है कि गन्दी झोंपड़ी रह गई।"

राजदूत—न्याय और दया से पवित्र की हुई यह गन्दी झोंपड़ी बादशाह के बाग़ से अधिक सुन्दर है। इस झोंपड़ी से तुम्हारे बादशाह का जितना यश बढ़ गया उतना अत्यन्त सुन्दर महल बनाने से नहीं बढ़ता।

ऐसे ही गुणों के कारण नौशेरवाँ "आदिल" कहलाता है।

५—आज़र कैवाँ

आज़र कैवाँ उसी घराने के थे जिसके सासान, अर्दशीर बाबकान बहराम गौर, और नौशेरवाँ थे। ये पारसियों में एक बहुत बड़े विद्वान और सन्त हो गये हैं। इनके बहुत से प्रसिद्ध चेले थे। इन्होंने कितनी ही किताबें लिखी हैं। ये इस्तख़ार के रहनेवाले थे। ये भारतवर्ष में भी आये थे और पटने में रहते थे। जिस समय पारसियों का राज्य जा चुका था और मुसलमानी धर्म का सितारा चमक रहा था उस समय भी इन्होंने पारसी धर्म का ऐसा ऊँचा आदर्श दिखाया कि बड़े बड़े मुसलमान सूफी भी आपका आदर करते थे। आप पाँच वर्ष की आयु से ही रात को उठकर भगवान का भजन करते थे और बराबर अट्ठाईस वर्ष तक भगवान के दर्शन पाने के लिए भजन करते रहे। अन्त में अपने प्रयत्न में सफल भी हुए। ये पचासी वर्ष जीवित रहे, परन्तु भगवद्-भजन कभी नहीं छोड़ा। सदैव ध्यान में ही लगे रहते थे। साधन के दिनों में बहुत कम खाते थे। दिन रात में केवल एक तोला भर खाना खाते थे। एक बार सूफी सैयद हसन शीराज़ी को इनके सन्त होने में सन्देह हुआ। उस समय सैयद हसन गुरु से साधन सीखते थे। कहते हैं कि जब उनके गुरु भजन करते-करते समाधि में लीन हुए तो हज़रत मुहम्मद साहब ने उनको दर्शन दिया और कहा कि तुम अपने चेलों से कहो कि आज़र कैवाँ को पूरा सन्त समझें। जब गुरु समाधि से जागे तो सैयद हसन शीराज़ी वहीं बैठे थे।

गुरुजी—ये आज़र कैवाँ कौन हैं ?

शीराज़ी—ये एक पारसी साधु हैं। फारिस से पटने में आये हुए हैं।

गुरुजी—क्या तुमको उनका मकान मालूम है ?

शीराज़ी—जी हाँ।

गुरुजी—चलो उनसे मिलें तो सही।

जब वे लोग आज़र कैवाँ के घर की ओर चले तो रास्ते में आज़र कैवाँ का एक चेला उनको मिला। उसने इनको प्रणाम किया और बोला कि "हज़रत आज़र कैवाँ ने मुझे भेजा है कि आपको आदर सहित उनके पास लिवा ले चलूँ।" यह सुन कर ये लोग बड़े चकराये। जब आज़र कैवाँ के पास पहुँचे तो कैवाँ ने उनको प्रणाम करने का अवसर न दिया, वरन् पहिले से आप ही प्रणाम किया और अरबी भाषा में उनसे बातचीत करने लगे। अन्त में आज़र कैवाँ ने कहा कि जो कुछ आप ने मेरे सम्बन्ध में जाना है, उसको दूसरे से न कहियेगा। आज़र कैवाँ अपने आप को प्रसिद्ध करना नहीं चाहते थे। वे बहुत कम बोलते थे। जब बोलते थे तो दूसरों के प्रश्नों का उत्तर देने के लिये ही बोलते थे, और बड़ी गहरी बातें कहते थे। एक दिन एक मुसलमान उनके पास आया। उसने एक सवाल किया—

मुसलमान—हज़रत, आप अपने चेलों को जानवरों को मार कर

मांस खाने को क्यों मना करते हैं ।

आज़र कैवाँ—भाई, यह तो तुम जानते हो कि काबा शरीफ़ की यात्रा करने के समय जानवर मारना या मांस खाना मना है ।

मुसलमान—जी हाँ, यह ठीक है ।

आज़र कैवाँ—भाई, जो ख़ुदा की तलाश करता है उसके लिये दिल ही काबा है, क्योंकि इस दिल में ही ख़ुदा का घर है। इसलिये जो दिल में ख़ुदा की पूजा करे, उसके लिये जानवर मारना या मांस खाना ठीक कैसे हो सकता है ।

एक मनुष्य ने पूछा—हज़रत दुनिया में इतने मज़हब (धर्म) हैं उनमें से कौन सा ठीक है ? किसको मानना चाहिये ।

आज़र कैवाँ—भाई, यह विश्वास ठीक है कि अब तक जो हुआ वह ख़ुदा की मर्ज़ी से हुआ है और आगे भी जो ख़ुदा की मर्ज़ी होगी, वही होगा । जिस मज़हब में यह विश्वास है वही ठीक है ।

एक बार एक मनुष्य ने आज़र कैवाँ से आकर कहा—

मनुष्य—मैंने पक्का विचार कर लिया है कि दुनिया को छोड़ दूँ । इसके बन्धन तोड़ दूँ ।

आज़र कैवाँ—बहुत अच्छा ।

मनुष्य—मैंने यह अब तक कर लिया होता, परन्तु अभी माला, कमंडलु, गुदड़ी आदि फ़क़ीरों के योग्य चीज़ें नहीं मिलीं ।

आज़र कैवाँ—भाई, फ़क़ीरी सामान छोड़ने में होती है या सामान जमा करने में ? तू अभी सन्यासी होने के योग्य नहीं है ।

एक व्यापारी साधु हो गया। उसने बहुत से चेले भी बना लिये। एक दिन वह आज़र कैवाँ से मिला।

व्यापारी साधु—जब से मैं साधु हुआ हूँ बड़े सुख से हूँ। पहिले तो मुझे सदैव यही चिन्ता लगी रहती थी कि चोर मेरा माल न ले जायँ। अब सुख की नींद सोता हूँ।

आज़र कैवाँ—ठीक है। पहिले चोर तुझे लूटते थे अब तू लोगों को लूटेगा। भाई दरवेशी (सन्यास) दुनिया के झगड़ों से भागने से नहीं होती, वरन् भगवान का भजन करने से होती है।

आज़र कैवाँ का एक चेला फरज़ाना ख़ुशी लिखता है कि "जब मैं गुरुजी की तलाश में था तो हिन्दुस्तान, फारिस और रूम के कितने ही ईसाई, यहूदी, मुसलमान, और हिन्दू विद्वानों के पास गया, परन्तु सब अपने अपने धर्म की प्रशंसा करते थे। मैं अपना धर्म छोड़ना नहीं चाहता था। फिर स्वप्न में मुझे फरिश्ते ने आज़र कैवाँ के पास जाने को कहा। मैं इनके पास आया और इनको पक्षपात रहित पाया।" आज़र कैवाँ के चेले भी बड़े योगी और महात्मा हो गये हैं। उनके चेले मूबद होशियार के लिये लिखा है कि वह रात भर योगियों के से आसन लगा कर सोता था और निगाह दोनो आँखों के बीच में करके प्राणायाम करता था। इसी प्रकार दूसरे चेले मूबद सरोष कान का रियाज अर्थात साधन (अनहद शब्द सुनना) करते थे, और सुनते सुनते बेहोश हो जाते थे।

६—बहराम बिन फ़रशाद

बहराम बिन फ़रशाद आज़र कैवाँ के चेले थे। ये मानो प्रेम की मूर्ति थे। इनके सामने जो आता था वह प्रेम से भर जाता था। एक सज्जन बहराम की परीक्षा लेने गये। पर वहाँ पहुँचने पर परीक्षा लेने के बदले बहराम के पैरों पर गिर पड़े और उनके चेले हो गये। बहराम कहा करते थे कि मनुष्य को चाहिये कि प्रत्येक श्वास के साथ भगवान का नाम ले। और यही प्रार्थना करे कि हे भगवान, मुझे तेरे दर्शन के सिवाय और कुछ नहीं चाहिए।

एक दिन बहराम का एक चेला माहआब कहीं जा रहा था। उसने देखा कि किसी सिपाही ने एक मनुष्य को पीटना शुरू किया। माहआब ने पूछा कि भाई, तू इसको क्यों मारता है?

सिपाही—इसका भाई मेरा नौकर था। वह भाग गया है। मैं इससे अपने रुपये माँगता हूँ जो इसके भाई को दिये थे। यह देता नहीं है।

वह आदमी—मैं उस भाई को बुला दूँगा। फिर रुपये क्यों दूँ?

सिपाही—और जब तक मेरा काम कौन करे?

माहआब—तब तक मैं तुम्हारा काम करूँगा।

सिपाही—अच्छी बात है! चलो।

जब सिपाही माहआब को लेकर घर पहुँचा तो किसी मित्र ने माहआब को पहिचान लिया। उसने सिपाही से कहा कि तू किसको पकड़ लाया है; यह तो बहराम के चेले माहआब हैं। जब सिपाही

को यह मालूम हुआ, तो वह चकराया और हाथ जोड़ कर बोला "महाराज मुझे क्षमा कीजिये। मैंने आपको पहिचाना नहीं था। आप जाइये। मुझे उस नौकर की आवश्यकता नहीं है।"

माहआब—नहीं भाई, इसमें कुछ बुराई नहीं है। सेवा करना तो हमारा धर्म ही है। तुम्हारा काम क्यों पड़ा रहे? तुम रुपया दे चुके हो।

सिपाही—परन्तु क्या मैं आप से काम करा सकूँगा?

माहआब—भाई, मैं जब तक वह नौकर न आ जायगा, नहीं जाऊँगा। तुम प्रसन्नता से काम कराओ।

जब माहआब नहीं माने तो सिपाही बहराम के पास दौड़ा गया। बहराम वहाँ आये।

बहराम—चलो माहआब, अब चलो। यह सिपाही सचमुच पछताता है।

माहआब—तो क्या यह प्रतिज्ञा करता है कि फिर कभी किसी को नहीं मारेगा?

सिपाही—जी हाँ, भगवान को साक्षी करके प्रतिज्ञा करता हूँ।

तब माहआब बहराम के साथ चले गये। ऐसी बहुत सी कथाएँ बहराम और उनके चेलों के बारे में प्रसिद्ध हैं।

६—जैन धर्म

१—भगवान ऋषभदेव

भगवान ऋषभदेव ही जैन मत को चलाने वाले हैं। हिन्दू लोग भी इनको भगवान का अवतार मानते हैं। जैनियों के जसे चौवीस तीर्थंकर प्रसिद्ध हैं ऐसे ही सनातनी हिन्दुओं के चौबीस अवतार प्रसिद्ध हैं। उन अवतारों में भगवान ऋषभदेव आठवें अवतार हैं। यहाँ पर हम उनका हाल जैसा जैन पुराणों में लिखा है, वैसा ही लिखेंगे।

तीर्थंकर लोगों को धर्म की शिक्षा देते हैं, और समाज के ठीक तरह से चलते रहने का प्रबन्ध करते हैं। ये पूर्णज्ञानी होते हैं, और अन्त में मोक्ष प्राप्त करते हैं। भरतखंड (भारतवर्ष) में एक कुलकर (राजकुल को चलाने वाले) महाराज नाभिराय अयोध्या में राज्य करते थे। उनकी रानी का नाम मरुदेवी था। महाराज नाभिराय के समय में मनुष्य बड़े सीधे, सच्चे और भोले होते थे। महाराज नाभिराय ने ही लोगों को खेती करना सिखाया, और मिट्टी के बरतन बनाने बताये। उनके समय में सब लोग एक समान ही रहते

थे। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र का भेद नहीं था। एक दिन प्रातःकाल महारानी मरुदेवी प्रसन्न मन से महाराज नाभिराय के पास आईं। महाराज नाभिराय ने उनको बड़े प्रेम से सिंहासन पर अपने पास बिठा लिया।

महारानी मरुदेवी—महाराज, रात तो बड़े आश्चर्य की बात हुई।

महाराज नाभिराय—क्यों क्या हुआ ?

महारानी मरुदेवी—मैंने बड़े अद्भुत स्वप्न देखे।

महाराज नाभिराय—क्या देखे ? हमको भी सुनाओ।

महारानी मरुदेवी—पहिले तो मैंने एक श्वेत रंग का बड़ा सुन्दर हाथी देखा। फिर देखा कि हाथी के स्थान पर चमकता हुआ श्वेत रंग का बैल है और वह बड़ा सुन्दर शब्द कर रहा है। फिर जो स्वप्न बदला तो मुझे सिंह दिखाई देने लगा। फिर एक बड़ा सुन्दर स्वप्न देखा। मैंने देखा कि समुद्र में कमल खिल रहे हैं। उन कमलों पर लक्ष्मी बैठी हुई हैं और दोनों ओर दो सुन्दर हाथी सूँड़ में स्वर्ण के कलशों को दबाये हुए पवित्र जल गिरा रहे हैं। ऊपर आकाश में दो सुन्दर फूल मालायें देखीं। फिर एक साथ दृश्य बदला और चाँदनी रात देखी। चन्द्रमा का प्रकाश बड़ा सुन्दर मालूम पड़ता था। चन्द्रमा के साथ ही साथ आकाश में कहीं कहीं तारे दिखाई पड़ रहे थे। इसके पीछे बड़े-बड़े रत्न देखे। महल देखे। सिंहासन देखा। विमान देखे। बस यह समझिये कि रात

भर इन अद्‌भुत स्वप्नों का आनन्द लूटती फिरी। और एक बड़े आश्चर्य की बात यह हुई कि सब के पीछे एक सुन्दर बैल मेरे मुख में प्रवेश करता हुआ मालूम हुआ। परन्तु फिर भी मुझे कुछ भी भय नहीं लगा।

महाराज नाभिराय——ये सब स्वप्न मन की शुद्धि और ज्ञान की प्राप्ति को दिखाते हैं, जो योगियों को हुआ करते हैं। तुम्हारे गर्भ में कोई बड़े योगेश्वर, धर्म के आचार्य, आये हैं। उनके प्रभाव से तुम्हें ऐसे स्वप्न दिखाई दिये हैं। तुम्हारा पुत्र बड़ा प्रतापी और धर्म को चलाने वाला तीर्थंकर होगा।

उस दिन से महाराज नाभिराय के महल में रोज़ नये नये आनन्द और उत्सव होते थे। सारे राज्य में सुख और शान्ति फैल गई। जब भगवान ऋषभदेव का जन्म हुआ तो सारे राज्य में बड़ा भारी उत्सव हुआ। बालक ऋषभदेव बालकपन से ही ध्यान और योग को करते थे। यहाँ तक कि जब वे युवा हो गये तो महाराज नाभिराय ने उनसे विवाह करने के लिये कहा और भगवान ऋषभदेव ने ओम् शब्द का उच्चारण करके ही अपनी सम्मति दिखा दी, परन्तु अपना ध्यान नहीं छोड़ा। भगवान ऋषभदेव को गृहस्थ जीवन का आदर्श भी दिखाना था कि जिससे गृहस्थों के धर्म नियमित हो सकें। इसलिये उन्होंने विवाह करना स्वीकार कर लिया। भगवान ऋषभदेव के सौ पुत्र और दो पुत्रियाँ हुईं। सब से बड़े पुत्र का नाम भरत था। भगवान ऋषभदेव के पीछे भरत ही राजा हुए। उन्होंने भारतवर्ष के सारे राजाओं को जीत लिया और

सारे देश का बड़ी सुन्दरता से राज्य किया था। इसी लिये इस देश का नाम भारतवर्ष व भरतखंड पड़ गया। भगवान सारे शास्त्रों को जानने वाले थे। उनको अपने पहिले जन्मों का भी हाल मालूम था और भूत और भविष्य की सब बातें जानते थे। कहते हैं कि भाषा के अक्षर पहिले पहिल इन्होंने ही बनाये और अपनी पुत्री ब्राह्मी और सुन्दरी को उनकी शिक्षा दी। इन्होंने व्याकरण भी बनाया और बहुत से विषयों के शास्त्र बनाये, और उन शास्त्रों की शिक्षा अपने लड़कों को दी।

इन्होंने लोगों को ईख की खेती करना और गुड़ निकालना बताया। प्रजा का हित करने के लिये इन्होंने उसे शिक्षा दी। इसलिये लोग इन्हें मनुजी कहते थे। और ईख, 'इक्षु' की खेती करनी बताई। इससे इनको इक्ष्वाकु भी कहते हैं। जैनियों के अनुसार ये ही इक्ष्वाकु वंश के चलाने वाले थे। भगवान् रामचन्द्रजी का जन्म इन्हीं के वंश में हुआ था।

कुछ समय के पीछे महाराज नाभिराय ने भगवान ऋषभदेव को राज्य सौंप दिया और आप तप करने को वन में चले गये। भरतखंड के सब राजाओं ने आपको अपना महाराजाधिराज (सम्राट्) स्वीकार कर लिया। भगवान ऋषभदेव ने प्रजा के लिये गाँव व नगर बसाये और उनके प्रबन्ध के लिये नियम बना दिये।

उस समय जातियों का भेद नहीं था। भगवान ऋषभदेव ने लोगों को शस्त्र चलाना सिखाया और उन लोगों का नाम क्षत्रिय रख कर राज्य-रक्षा का कार्य उनको सौंपा। भगवान ने व्यापार

करने वाले और खेती तथा अन्य व्यवसाय करने वालों का नाम वैश्य रखा। और जो इन लोगों की सेवा करके पेट भरें उन्हें शूद्र का नाम दिया। इस प्रकार उनके राज्य में सब जगह ठीक-ठीक प्रबन्ध होने लगा, और सब लोग सुख से रहने लगे।

एक बार देवताओं के राजा इन्द्र भगवान् ऋषभदेव से मिलने आये। उनके साथ बहुत से गाने वाले गन्धर्व और नाचने वाली अप्सराएँ थीं। उनमें एक अप्सरा का नाम नीलांजना था। इन्द्रदेव ने भगवान ऋषभदेव को प्रसन्न करने के लिये अपने गन्धर्व और अप्सराओं को सभा में गाने व नाचने का हुक्म दिया। जब नीलांजना नाच रही थी तो एकाएक वह बीच में से ही नाचते नाचते निकल कर अदृश्य हो गई। परन्तु उसी के समान रूप वाली वैसी ही अप्सरा उस स्थान पर नाचने लगी। यह काम इतना शीघ्र हुआ कि किसी को पता भी न चला। परन्तु भगवान ऋषभदेव ने इसको समझ लिया। इसलिये उन्होंने इन्द्र से इसका कारण पूछा।

भगवान ऋषभदेव—यह नीलांजना कहाँ चली गई? वह तो बड़ी चतुरता से नाच रही थी फिर आपने उसे क्यों बन्द कर दिया?

इन्द्रदेव—भगवान, मैंने उसको बन्द नहीं किया। मेरे एक सेवक ने अभी समाचार दिया है कि नाचते-नाचते उसके हृदय में कष्ट मालूम होने लगा। इसलिये वह शीघ्र ही बाहर निकल गई। उसको यह रोग हो जाया करता है। इसलिये उसके रूप की दूसरी अप्सरा तैयार रहती है कि जिसमें नाच बीच में बिगड़ने न पाये।

भगवान ऋषभदेव—आपके यहाँ ये नाचने गाने वाले तो बड़े चतुर हैं।

इन्द्रदेव—हाँ महाराज, यह सब आपका ही प्रताप है। परन्तु मुझको शोक है कि इनमें से जो सब से अधिक चतुर थी वह अब इस संसार में नहीं है।

भगवान ऋषभदेव—भला वह कौन थी ?

इन्द्रदेव—वही नीलांजना, जो महाराज के सन्मुख नाच रही थी।

भगवान ऋषभदेव—क्या हुआ, मर गई ! अभी तो वह नाच ही रही थी।

इन्द्रदेव—महाराज इस शरीर का क्या भरोसा ! यहाँ से जाकर वह मूर्छित हुई और उसी मूर्छा में शरीर छोड़ दिया।

भगवान ऋषभदेव—इन्द्रदेव, ठीक है। हमने भी बहुत राज्य कर लिया। अब हम केवल ज्ञान प्राप्त करने के लिये तप करेंगे।

भगवान ऋषभदेव ने अपने पुत्र भरत को राज्य सौंप दिया और आप बन को चल दिये। वहाँ पहुँच कर आपने सिर के सारे बाल पाँच बार मुट्ठी में पकड़ कर उखाड़ डाले। उन बालों को इन्द्रदेव ने बड़ी श्रद्धा से एक सुवर्ण के डिब्बे में रख लिया। बाल उखाड़ने में अत्यन्त कष्ट हुआ, परन्तु भगवान ने उसकी कुछ भी परवाह न की। आपने आभूषण भी सब त्याग दिये, और खड़े रह कर छै महीने ध्यान किया। इस समय में उन्होंने कुछ भी नहीं खाया पिया। तप के आरम्भ में ही उनको मनःपर्य्य ज्ञान हो गया जिससे भगवान दूसरों के मन की बातें तत्काल समझ जाते थे। छै महीने

पीछे जब भगवान की समाधि खुली तो वे नगर में भोजन करने आये, परन्तु किसी ने ऐसा भोजन न दिया जैसा लेने का वे मन में निश्चय कर चुके थे। वे किसी को बताते भी नहीं थे कि कैसा भोजन मिलना चाहिये। इसलिये महीने भर तक फिर उपवास करना पड़ा। अन्त में एक दिन हास्तिनागपुर के राजकुमार श्रेयांस ने उनको ईख का रस दिया, और उसे उन्होंने स्वीकार किया। इसके पीछे फिर भगवान बन में तपस्या करने लगे और कुछ दिन में योगाभ्यास से कैवल्य ज्ञान की ज्योति प्रकाशित हो गई।

भगवान ऋषभदेव जिस बन में तपस्या करते थे उसमें शान्ति ही शान्ति फैल जाती थी। हिंसक पशु भी आपस का बैर छोड़ देते थे। हिरणों के बच्चे किसी बाघनी के पास चले जाते थे और भूखे होते तो उसका ही दूध पीने लगते थे और वह बाघनी बड़े प्रेम से उनको दूध पिलाती थी। हाथी अपनी सूँड़ों से कमल के फूल तोड़-तोड़ कर ले आते और तप करते हुए भगवान ऋषभदेव पर भक्ति के साथ चढ़ा देते थे।

जब भगवान को कैवल्य (आवागमन से छुडा कर मुक्ति देने वाला अपनी आत्मा का ज्ञान वा दर्शन) ज्ञान हो गया तो भगवान धर्म का उपदेश करने लगे। भगवान जिस मंडप (समवशरण) में उपदेश करते थे, उसमें देवता, मनुष्य, पशु आदि सब के लिये स्थान बने थे। उसमें स्त्रियाँ भी आती थीं। किसी को नीच ऊँच का ध्यान नहीं होता था। सब जातियों के मनुष्य एक साथ ही बैठकर उपदेश सुनते थे। उपदेश के समय भगवान के शरीर से

एक दिव्य ध्वनि निकलती थी। उनके दाँत, ओंठ, जीभ कुछ भी नहीं हिलते थे। उस ध्वनि को सब जाति के लोग अपनी अपनी भाषा में समझ लेते थे। उन्होंने जैनियों को चार विभागों में बाँट दिया था। एक तो मुनि लोग थे जो तप करते थे। दूसरे भाग में तपस्विनी स्त्रियाँ थीं इनको आर्यिका कहते हैं। इसी प्रकार दो भाग गृहस्थ जैन स्त्रियों और पुरुषों के थे। इनको श्रावक और श्राविका कहते हैं। भगवान के दस पुत्र अनन्त वीर्य, बाहु बली आदि भी मुनि हो गये। उनकी पुत्रियाँ ब्राह्मी व सुन्दरी तपस्विनी हो गईं और आर्यिकाओं में मुख्य हो गई हैं। एक दिन महाराजा भरत भगवान के पास अपने पुत्र मारीचि सहित आये। भगवान ने उनको अहिंसा धर्म का उपदेश दिया। फिर महाराज भरत भगवान से प्रश्न करने लगे।

भरत—भगवान, क्या इस सभा में कोई ऐसा मनुष्य है जो किसी जन्म में तीर्थंकर होगा?

भगवान ऋषभदेव—हाँ है। यह जो तेरा पुत्र मारीचि है वह इसी युग का तीर्थंकर भगवान महावीर के नाम से होगा। उससे पहिले यह कितने ही और जन्म धारण करेगा और एक जन्म में यह नारायण होगा और इस युग का प्रथम नारायण होगा।

भरत—भगवान नारायण कौन होते हैं, यह कृपापूर्वक बताइये।

भगवान ऋषभदेव—संसार में पाँच प्रकार के महापुरुष होते हैं। इनमें पहिले तो तीर्थंकर होते हैं जो कैवल्य ज्ञान प्राप्त करके धर्म का उपदेश करते हैं, और मुनि, आर्यिकायें, श्रावक

श्राविकायें, इन चार तीर्थों की व्यवस्था करते हैं। इनको तीर्थ इसलिए कहते हैं कि इनका धर्म पालन करने से मनुष्य अन्त में मोक्ष प्राप्त करता है। दूसरे चक्रवर्ती राजा होते हैं। ये सारे भरतखंड के राजाओं के मालिक होते हैं। तुम पहिले चक्रवर्ती राजा हो। तीसरे प्रति नारायण होते हैं जो भरतखंड के तीन खंड के राजा होते हैं। चौथे नारायण होते हैं और पाँचवें बलभद्र होते हैं। बलभद्र नारायण के बड़े भाई होते हैं। नारायण और प्रतिनारायण में शत्रुता होती है। उनमें युद्ध होता है।जिसमें नारायण विजय प्राप्त करके तीन खंड के मालिक बन जाते हैं। मारीचि त्रिपृष्ठ नाम का पहिला नारायण होगा।

भरत—भगवान क्या और भी कोई नारायण आदि होंगे?

भगवान ऋषभदेव—हाँ, बहुत होंगे। हमारे वंश में ही राजा दशरथ के पुत्र महाराज रामचन्द्र बलभद्र होंगे और उनके छोटे भाई लक्ष्मण नारायण होंगे। उस समय रावण नाम का प्रतिनारायण होगा। फिर हरिवंश में भी श्रीकृष्णचन्द्र नारायण होंगे और बलराम बलभद्र होंगे, व जरासंधि प्रति-नारायण होगा। यही "कृष्ण" अगले युग में तीर्थंकर होंगे।

भगवान् ऋषभदेव अमृत पिया करते थे और कुछ नहीं खाते पीते थे। इस प्रकार बहुत वर्षों तक भगवान संसार में धर्मोपदेश करते रहे और फिर मोक्ष को प्राप्त हुए।

२—भरत चक्रवर्ती

महाराजा भरत भगवान ऋषभदेव के सबसे बड़े पुत्र थे। जब भगवान ऋषभदेव वन को तपस्या करने को चले गये तो राज्य भरत को दे गये थे। महाराज भरत ने फिर सब राजाओं को जीतकर चक्रवर्ती का पद प्राप्त किया। युद्ध में ये केवल भगवान् बाहुबली से हारे थे। परन्तु अन्त में वे भी इनके चक्रवर्ती पद को स्वीकार करके अपने पुत्र को राज्य देकर वन में तपस्या करने चले गये थे। इनके नौ छोटे भाई और भी ऐसे थे कि जिन्होंने भरत की अधीनता स्वीकार नहीं की और तपस्वी हो गये।

महाराजा भरत राज्य करते हुए घर पर ही तपस्या किया करते थे। उनकी तपस्या घर पर भी इतनी कठिन होती थी और उनका शरीर इतना दुर्बल हो गया था कि उनके हाथों में से आभूषण अपने आप खिसक पड़ते थे। जिस समय वे उपवास करके समाधि में बैठते थे, तो मुनियों के समान ही भजन करते थे।

उनके पास सब प्रजा के लोग जा सकते थे। वे प्रजा की दशा आप देखा करते थे। उनके राज्य में प्रजा को अत्यन्त सुख था। इसीलिये उनके पीछे इस देश का नाम, ऐसे धर्मात्मा और प्रतापी राजा के नाम के अनुसार, भारतवर्ष अथवा भरतखंड पड़ा। एक बार एक किसान उनके पास आया और उसने उनसे पूछा :

किसान—महाराज, लोग कहते हैं कि आप बड़े तपस्वी हैं, परन्तु आप चक्रवर्ती राजा हैं और इतने बड़े राज्य का आपको

प्रबन्ध करना पड़ता है। आप तपस्या और राज्य का प्रबन्ध दोनों काम एक साथ कैसे कर लेते हैं?

महाराज भरत—क्यों भाई, इसमें क्या कठिनाई है?

किसान—महाराज, तपस्वी लोग तो वन में रहते हैं। संसार के सब कामों को छोड़ देते हैं। तब तपस्या कर पाते हैं।

महाराज भरत—प्यारे भाई, तपस्या तो मन को वश में करने के लिये है। इसलिये अपने शरीर से तो मैं राज्य का प्रबन्ध करता हूँ और मन को भगवान ऋषभदेव के चरणों में लगाये रखता हूँ।

किसान—महाराज, भला काम करने में मन भी तो लगेगा। फिर वह अलग जप कैसे कर सकता है?

महाराज भरत—भगवान के नाम का मन में ध्यान बनाये रखना ही जप है।

किसान—महाराज, यह बात मेरी समझ में अच्छी तरह से नहीं आई।

महाराज भरत—अच्छा, तुम पहिले एक काम करो। फिर तुम को ठीक-ठीक समझा देंगे। तुम एक कटोरे में ऊपर तक भरा हुआ तेल ले जाओ। और हमारी सेना को देखने जाओ। हम सेवक को तुम्हारे साथ भेजे देते हैं। परन्तु याद रखना यदि इस कटोरे में से एक बूँद भी तेल गिर गया तो फाँसी पर लटका दिये जाओगे।

महाराज भरत ने एक सेवक को आज्ञा दी कि उसको एक

तेल का कटोरा दे और सेना दिखा लाये। महाराज की आज्ञा पा कर वह किसान सेना देखने गया। उसने हाथी खाने, घोड़ों के अस्तबल, सिपाहियों के रहने की जगह, अस्त्र-शस्त्रों के भंडार देखे। परन्तु उसका ध्यान हर दम उस कटोरे पर लगा हुआ था क्योंकि महाराज का हुक्म था कि यदि एक बूँद भी तेल गिरेगा तो फाँसी दे दी जायगी। इसलिये वह ऊपरी ढंग से ही देख सका। वह यह न देख सका कि अस्त्र-शस्त्र कैसे कैसे अद्‌भुत रूप के हैं। किस घोड़े का रंग कितना सुन्दर है इत्यादि। जब वह महाराज के पास आया तो महाराज ने सेवक से पूछा कि इनसे तेल गिरा तो नहीं। सेवक ने उत्तर दिया कि नहीं महाराज, एक बूँद भी नहीं गिरा।

महाराज भरत——कहो भाई, तुमने सेना देखी? बताओ तो कितने रंग के घोड़े देखे और कितने प्रकार के अस्त्र शस्त्र देखे?

किसान——महाराज, मैंने घोड़े देखे तो कितने ही रंग के, अस्त्र-शस्त्र भी बहुत देखे। परन्तु उनका हाल नहीं बता सकता क्योंकि इतने ध्यान से नहीं देखे। मेरा ध्यान तो इस कटोरे की ओर लगा हुआ था।

महाराज भरत——बस, इसी प्रकार मेरा ध्यान तो भगवान ऋषभ-देव के चरणों में लगा रहता है और काम काज राज्य के भी सब करता ही हूँ।

किसान——धन्य हो महाराज, अब समझ में आ गया।

एक वार महाराजा भरत ने एक चौक में हरी हरी दूब की घास लगवा दी और बहुत से फल फूल के पौदे भी लगवा दिये। उसमें थोड़ी सी भी जगह दूब से खाली नहीं रही। फिर नगर के लोगों को व राजाओं को उनके इष्ट मित्र व सेवकों सहित मिलने के लिये बुलाया। जब लोग महाराज का दर्शन करने आये तो महाराज दूब के दूसरी ओर सिंहासन पर बैठ गये। सिपाही लोग, वणिक, सेवक आदि बहुत से लोग तो दूब को पार करके चले गये परन्तु बहुत से लोग दूब के इसी ओर रह गये। महाराज ने उनको बहुतेरा बुलाया परन्तु वे नहीं गये। दूसरे लोग, जो महाराज के पास थे, डरने लगे कि अब इन लोगों की जान नहीं बचेगी। ये महाराज की आज्ञा का पालन नहीं करते। महाराज इन्हें अवश्य दण्ड देंगे। अन्त में महाराज ने उन लोगों को दूसरे रास्ते से अपने पास बुलाया और पूछा--

महाराज भरत——क्यों भाई, आप लोग क्यों नहीं आये? क्या आपको अपने प्राणों का भय नहीं है, जो आपने राजाज्ञा का उल्लंघन किया।

उनमें से एक——महाराज, हम हरी हरी दूब व फूल फल के पौदों पर कैसे चलते।

महाराज——क्यों, इसमें क्या कठिनाई थी?

दूसरा मनुष्य——महाराज, इनमें भी तो जीव हैं। इससे भी तो हिंसा होती।

तीसरा मनुष्य——महाराज, हमारे शरीर आपकी सेवा के लिये

उपस्थित हैं। आप जो चाहें दंड दीजिये, वह हमें सहर्ष स्वीकार है। परन्तु हम हिंसा करके अधर्म नहीं करेंगे।

महाराज—मैंने तुम लोगों की परीक्षा ली थी। जो धर्म में इतने दृढ़ हैं, वही गृहस्थी को धर्म-कार्य कराने में सहायता दे सकते हैं, और शास्त्र अच्छी तरह से पढ़ा सकते हैं। इसलिये आज से मैं तुम लोगों का एक नया वर्ण बनाता हूँ। तुम ब्राह्मण कहलाओगे। विद्या पढ़ाना तथा धर्म के अनुसार संस्कार कराना तुम्हारा काम होगा। राज्य तथा प्रजा से जो दान मिले उससे तुम्हारी जीविका होगी। सब वर्णों से ऊपर तुम्हारा स्थान रहेगा। बोलो स्वीकार है?

सब लोग—महाराज की आज्ञा स्वीकार है। भगवान ऋषभदेव हमको इस कठिन धर्म को पालन करने की शक्ति दें।

उसी दिन से चौथा वर्ण ब्राह्मणों का भी बन गया। उस समय तक भगवान ऋषभदेव के बनाये हुए केवल तीन वर्ण क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र ही थे। फिर महाराज भरत ने सब वर्णों को उनके कर्मों का उपदेश किया कि जिससे अपने अपने कार्य में सब सचेत रहें।

महाराज भरत ने राज्य के सब भवनों के द्वारों पर छोटी छोटी घंटियो की मालायें टँगवादी थीं। उन घंटियों पर भगवान ऋषभदेव की मूर्ति बनी हुई थी। जब कोई द्वार से निकला तो वे घंटियाँ उसके सिर से लग कर बजने लगती थीं। उनके बजने से उसे झट भगवान की याद आ जाती थी। इस प्रकार संसार के

काम करते हुए भी भगवान की याद बनी रहती थी। इन्हीं घंटियों की मालाओं के स्थान पर आजकल आम के पत्तों के बंदनवार बाँधते हैं। ऐसी घंटियाँ बाँधनी चाहिये।

महाराज भरत बड़े न्यायी थे। उनका बड़ा पुत्र मारीचि तो भगवान ऋषभदेव के उपदेश से तपस्वी हो गया था। उनके दूसरे पुत्र अर्ककीर्ति राज्य के अधिकारी थे। एक बार बनारस के राजा अकंपन ने अपनी पुत्री सुलोचना का स्वयंवर किया। उसमें बहुत से राजा लोग आये थे। राजकुमार अर्ककीर्ति भी गये। राजा अकंपन ने इनका बड़ा आदर किया। स्वयंवर के समय राजकुमारी सुलोचना ने एक राजा जयकुमार के गले में माला डाली थी इसलिये नियमानुसार राजा जयकुमार का सुलोचना से विवाह होना निश्चित हो गया। परन्तु दुर्मर्षण ने अर्ककीर्ति को बहकाया कि यह बड़े अपमान की बात होगी जो चक्रवर्ती के पुत्र होते हुए राजकुमारी दूसरे को विवाही जाय। क्षत्रिय लोग युद्ध करके कन्या प्राप्त कर सकते हैं। इसलिये आप इस विवाह के होने से पहले ही जयकुमार को युद्ध में जीत कर सुलोचना से विवाह कीजिये। अन्त में अर्ककीर्ति और जयकुमार में युद्ध हुआ और अर्ककीर्ति हार गये। अर्ककीर्ति को यह और भी बुरा लगा। तब राजा अकंपन उनके पास आये और उन्हें समझा कर अपनी छोटी पुत्री का उनसे विवाह कर दिया। राजा जयकुमार भी सुलोचना से विवाह करके अपने देश को चल दिये। जब वे अयोध्या के निकट आये तो राजा जयकुमार महाराज भरत के

पास गये । महाराज भरत ने उनका बहुत आदर किया और बड़े प्रिय वचन कह कर सुलोचना के लिये उपहार दिये । उसी समय राजा अकंपन का दूत भी महाराज के पास आया और उसने सब हाल कह कर निवेदन किया—

दूत—राजा अकंपन महाराज से इस ढीठता की क्षमा माँगते हैं । और जो दण्ड चक्रवर्ती नियत करें उसे सहन करने के लिये तय्यार हैं ।

महाराज भरत—परन्तु आप लोगों ने तो कोई दण्ड की बात की ही नहीं । दण्ड देने योग्य तो अर्ककीर्ति है कि जिसने राजा अकंपन के साथ ऐसा व्यवहार किया । राजा अकंपन हमारे बड़े हैं । जिस प्रकार धर्म की बातों में हम भगवान ऋषभदेव को मानते हैं उसी प्रकार गृहस्थों के कामों में राजा अकंपन हमारे गुरु हैं । और यह अर्ककीर्ति तो अपकीर्ति है जिसने मुझे भी लज्जित किया है । मैं उसको दण्ड अवश्य देता परन्तु महाराज अकंपन ने उसे अपनी छोटी पुत्री विवाह दी है, अब उसे दण्ड देने से राजा अकंपन को दुःख होगा । इसी विचार से मैं उसे छोड़ देता हूँ ।

एक बार महाराज भरत दर्पण देख रहे थे । उन्होंने अपने कुछ बाल श्वेत देखे । उन्होंने समझा कि बुढ़ापा आ गया । इस लिये राजकुमार अर्ककीर्ति को राजा बना कर राजनीति का उपदेश दिया । और फिर वन में जा कर मुनि-धर्म की दीक्षा ले ली । महाराज भरत ने गृहस्थ धर्म में ही ऐसी कठोर तपस्या की थी ।

मुनि धर्म की दीक्षा लेते ही उन्हें कैवल्य ज्ञान हो गया। तपस्या करने की आवश्यकता नहीं पड़ी। फिर उन्होंने बहुत वर्षों तक लोगों को धर्म का उपदेश दे कर मुक्ति प्राप्त की।

३—भगवान बाहुबली

भगवान बाहुबली भगवान ऋषभदेव के बड़े प्रतापी पुत्र थे। भगवान ऋषभदेव के बड़े पुत्र भरत को अयोध्या का राज्य दिया गया था, और बाहुबली को पोदनपुर का राज्य दिया गया था। जब महाराज भरत ने चक्रवर्ती बनने के लिये सारे देशों को विजय किया तो राजा बाहुबली के पास दूत भेजा। दूत ने पोदनपुर आ कर राजा बाहुबली को राजा भरत का संदेशा कहा।

दूत—महाराज भरत अब चक्रवर्ती राजा हुए हैं। सारे देशों को उन्होंने जीत लिया है। कोई राजा उनकी आज्ञा को नहीं टाल सकता। परन्तु यह शोक की बात है कि बाहर के राजा लोग तो भरत चक्रवर्ती को सिर नवाते हैं और घर के लोग उनका आदर नहीं करते। यदि कोई बाहर का नमस्कार न करे तो इतना बुरा नहीं मालूम होता। परन्तु यदि कोई घर का ही मनुष्य अभिमान से बैठा रहे और नमस्कार न करे तो यह बहुत बुरा लगता है। इसलिये आप महाराज भरत चक्रवर्ती को, जो राजाओं को दण्ड देने की शक्ति रखते हैं, शीघ्र जाकर प्रणाम कीजिये।

राजा बाहुबली—हे दूत, तुमने जो हमारा अपमान करते हुए चुभती हुई बातें कही हैं, यह ठीक नहीं किया। राजा भरत हम से बड़े हैं। इसलिये हमारा उनको प्रणाम करना उचित ही है। परन्तु वह प्रेम के व्यवहार से ही हो सकता है। तुम जो डर दिखाते हो और बरजोर हमको भरत का आधीन बनाना चाहते हो, तो यह असम्भव है। भगवान ऋषभदेव ने यह राज्य हमको दिया है। हम किसी से झगड़ा नहीं करते और न हम किसी के आधीन होकर ही उसकी कृपा से राज्य करना चाहते हैं।

जब दूत ने यह संवाद राजा भरत को सुनाया तो भरत ने पोदनपुर पर चढ़ाई कर दी। दोनों सेनायें लड़ाई के मैदान में डट गईं। दोनों ओर के मन्त्रियों ने देखा कि इस घर की लड़ाई में सिपाहियों की जान व्यर्थ में नष्ट होगी। इसलिये उन्होंने यह प्रस्ताव किया कि भरत और बाहुबली ही दोनों लड़ें। और उन की लड़ाई से ही हार जीत मानी जाय। भरत और बाहुबली दोनों ने इसे स्वीकार कर लिया। अब यह विचार हुआ कि लड़ाई किस प्रकार हो। दोनों भाई भाई थे। इसलिये उनमें से कोई दूसरे को मारना तो चाहता नहीं था। यहाँ तो प्रश्न यही था कि दोनों में से कौन बलवान है। उसी के दूसरा आधीन हो। इसलिये लड़ाई की विधियाँ भी केवल बल के जाँचने वाली रखी गईं। पहिली विधि तो दृष्टि युद्ध की थी। दोनों एक दूसरे के सामने बैठ गये, और बिना पलक झपकाये एक दूसरे की ओर देखने लगे। भरत के

नेत्र ही पहिले नीचे हुए और बाहुबली इसमें जीत गये। दोनों नदी में नहाने को उतरे, और एक दूसरे पर बल पूर्वक पानी फेंकने लगे। भरत को शीघ्र ही वहाँ से भी भागना पड़ा। तीसरा युद्ध मल्ल युद्ध का था। दोनों में कुश्ती होने लगी तो बाहुबली ने शीघ्र ही भरत को दोनों हाथों में ऊपर को उठा लिया, परन्तु उन्होंने अपना बड़ा जान कर नीचे नहीं पटका, वरन् अपने कन्धों पर विठा लिया। और इस प्रकार भरत को लिये हुए मैदान में घूमने लगे। सब ने बाहुबली की ही जीत मानी। इस अपमान से भरत चक्रवर्ती दुःखी हुए और उन्होंने अपने सब से अद्भुत अस्त्र, चक्र को बाहुबली के ऊपर चला दिया। परन्तु उस चक्र से भी बाहुबली का कुछ न विगड़ा। वह चक्र बाहुबली के लगा नहीं वरन् उनके सन्मुख आ कर खड़ा हो गया। पहिले जो निश्चय हो गया था उसके विरुद्ध, बाहुबली को मारने के लिये चक्र चलाने से लोगों ने भरत की बहुत निन्दा की।

बाहुबली ने यह देख कर भरत को कन्धे से उतारा। बाहुबली की जीत हुई थी। इसलिये नियम के अनुसार तो अब वे चक्रवर्ती राजा हो गये थे। परन्तु लड़ाई जीतने पर बाहुबली ने भरत को एक ऊँचे सिंहासन पर बैठाया और बोले।

बाहुबली—हे भाई, तुमने इस संसार की सम्पत्ति के लिये अपने भाई को चक्र से मारने के लिये उसे चलाया था। यह पहिले ही निश्चय हो गया था कि अस्त्रों से युद्ध न होगा।

तुम यह भी भूल गये कि चक्र मेरा कुछ नहीं बिगाड़ सकता, क्योंकि मैं उसकी क्रिया अच्छे प्रकार से जानता हूँ। हमने तो युद्ध केवल इसलिये किया था कि तुमने डर दिखा कर हमारी स्वाधीनता छीननी चाही थी। तुम हमारे बड़े भाई हो। इसलिये सदैव हमारे पूज्य हो। ये संसार के सुख थोड़े दिन के रहने वाले हैं। इनके लिये धर्मात्मा लोग अपने कर्तव्य को नहीं भूलते। अब तुम जिस ऐश्वर्य की इच्छा करते हो उसको भोगो। हम तो उस सुख की खोज में जाते हैं, जो सदैव रहने वाला है।

बस बाहुबली ने घर आये हुए चक्रवर्ती राज्य को लात मार दी। और पोदनपुर का राज्य अपने बेटे महाबल को सौंप कर जैनमुनि की दीक्षा ले ली। भगवान बाहुबली एक ही स्थान पर साल भर तक खड़े रहे। खाना पीना सब छोड़ दिया। इनके चारों ओर साँपों ने बिल बना लिये थे। साँप इनके चारों ओर खेलते फिरा करते थे। इनके आसपास पेड़ और बेलें उत्पन्न हो गई थीं। जिस वन में ये तप करते थे वहाँ शेर हाथियों को मारने के बदले उनके शरीर पर प्यार से हाथ फेरा करते थे। इतनी अहिंसा वहाँ पर फैल गई थी। अन्त में भगवान बाहुबली को कैवल्यज्ञान होने का समय आया। इतना तप करने पर भी उनके मन में एक दुःख बना रहता था। उन्हें इस बात का बड़ा दुःख था कि उन्होंने भरत के साथ युद्ध करके भरत के मन को दुःख दिया था। इस दुःख के कारण उनका ध्यान पूरा नहीं होने पाता था। एक दिन

राजा भरत वन में आये और तप करते हुए बाहुबली का बड़े प्रेम से पूजन करने लगे। उस प्रेम को देख कर भगवान बाहुबली का वह दुःख भी छूट गया और उनकी समाधि पूर्ण हो गई। झट उनको कैवल्यज्ञान हो गया और उनके शरीर से दिव्य ध्वनि निकलने लगी। बहुत दिनों तक लोगों को उपदेश दे कर अन्त में भगवान बाहुबली कैलाश पर्वत पर मुक्ति को प्राप्त हुए। उनकी एक बड़ी प्रसिद्ध और सुन्दर मूर्ति मैसूर राज्य में श्रावण बेलगोला के पहाड़ पर बनी हुई है। वह भी जैनियों का एक बड़ा तीर्थ-स्थान है।

४—महात्मा नारद

जैन धर्म आर्य जाति का ही धर्म है। जैन धर्म के अनुसार पहिले वेदों में भी अहिंसा धर्म का ही उपदेश था। परन्तु पीछे से एक दुष्ट राक्षस के प्रयत्न से यज्ञ में पशुओं को हवन करने की प्रथा चली थी। जब यह प्रथा पहिले पहिल चली थी, उस समय महात्मा नारद ने सच्चे अहिंसा धर्म का उपदेश दिया था।

कथा है कि पूर्व समय में स्वास्तिकावती नगर था। उसमें एक ब्राह्मण क्षीरकदंब रहता था। उसके तीन शिष्य थे। एक का नाम पर्वत, दूसरे का नारद और तीसरे का वसु था। पर्वत क्षीर-कदंब का ही पुत्र था। वसु उस नगर के राजा का पुत्र था। राजा ने अपने पुत्र को राज्य देकर जैन धर्म की दीक्षा ले ली,

और वन को चला गया। अब वसु राजा हो गये। महाराज वसु बड़े सत्यवादी और वेदों के पंडित थे और उनके राज्य में प्रजा अत्यन्त सुखी थी।

एक दिन नारद और पर्वत जंगल में हवन के लिये लकड़ी और पूजन के लिये फूल लेने गये। उन्होंने रास्ते में कितने ही जानवरों के पैरों के चिन्ह देखे। नारद ने कहा—

नारद—हे पर्वत, इस रास्ते से बहुत से मोर गये हैं। और उनमें एक मोर था और शेष सब मोरनियाँ थीं।

पर्वत—तो क्या आप ज्योतिषी भी हैं? क्यों भाई, ऊटपटांग बात करते हो?

नारद—तुम मानो चाहे मत मानो, परन्तु बात ऐसी ही है।

पर्वत—अच्छा चलो देखें। तुम्हारी बात की भी परीक्षा हो जाय।

दोनों कुछ दूर उस ओर चले तो देखा कि सत्य ही बहुत सी मोरनियाँ और एक मोर जा रहे हैं। पर्वत बड़े लज्जित हुए। थोड़ी दूर जाकर नारद फिर बोले—

नारद—भाई पर्वत, देखो एक और भी बात बतावें। इस रास्ते से एक हथिनी गई है। वह बाँई आँख से कानी है। उस पर एक गर्भवती स्त्री चढ़ी हुई थी। वह स्त्री एक श्वेत साड़ी पहिने थी। और उस स्त्री के आज ही पुत्र का जन्म हुआ है।

पर्वत—अब तुम ऐंठने ही लगे! एक बार जो अन्धे के हाथ बटेर लग गई, तो भविष्यवक्ता ही हो गये!

नारद—भाई, तुम नहीं मानते तो परीक्षा कर लो।

दोनों उसी रास्ते गये और देखा कि एक मकान के सामने बाँई आँख से कानी हाथिनी खड़ी है। पूछने पर जैसा नारद ने कहा था ठीक वैसा ही निकला। पर्वत को इससे बड़ा दुःख हुआ। उसने समझा कि पिताजी मुझे सब शास्त्र नहीं पढ़ाते। और नारद को विशेष प्रेम से पढ़ाते हैं। पर्वत ने घर लौट कर अपनी माता से कहा कि पिताजी नारद को मुझसे अधिक पढ़ाते हैं। माता ने चीरकदंब से सब हाल कहा।

चीरकदंब बोले—पर्वत मूर्ख है। मैं तो दोनों को एकसा ही पढ़ाता हूँ। परन्तु पढ़ने वालों की बुद्धि में ही अन्तर हो तो मैं क्या करूँ। देखो मैं तुम्हारे सामने ही उनको बुलाता हूँ और उनकी बुद्धि के भेद को दिखाता हूँ।

यह कह कर चीरकदंब ने दोनों को बुलाया और पूछा—

चीरकदंब—क्यों रे, आज तुम वन में जाकर क्या ऊधम मचाते थे?

नारद—कुछ नहीं गुरुदेव, मैंने कुछ चिन्हों से अनुमान किये थे उन्हीं को पर्वत से कहा था। फिर हम दोनों ने उनकी खोज की तो उनको सत्य पाया।

चीरकदंब—क्या अनुमान थे?

नारद—पाहला तो यह था कि रास्ते में बहुत से मोर गये थे। उनमें एक मोर था और सब मोरनियाँ थीं।

चीरकदंब—यह तुझे कैसे ज्ञात हुआ?

नारद—नदी के किनारे मोरों के पैरों के चिन्ह थे। जिससे

मोरों का पानी पीने आना मालूम हुआ। उन चिन्हों में एक के चिन्ह ऐसे थे जिससे मालूम होता था कि वह मोर नदी की ओर ही मुख किये पीछे को चला और फिर मुड़ कर लौटा हो। शेष सब के चिन्ह ऐसे थे कि जैसे कि वे किनारे से ही मुड़ कर लौटे हों। इससे मैंने समझा कि जो पीछे चल कर लौटा था वह मोर था क्योंकि मोर की पूँछ लम्बी होती है। यदि वह नदी के किनारे से ही मुड़ता तो उसकी पूँछ भीग कर भारी हो जाती। इसलिये वह पीछे को चला और फिर मुड़ा।

क्षीरकदंब—दूसरा अनुमान क्या था ?

नारद—मार्ग में एक हथिनी के पैर के चिह्न थे। मैंने कहा कि यह हथिनी थी। इसकी बाईं आँख नष्ट हो गई थी। इस पर एक गर्भवती स्त्री चढ़ी थी। वह एक श्वेत साड़ी पहिने हुए थी। और उसके आज ही लड़का होने वाला है।

क्षीरकदंब—तुमने कैसे जाना कि हथिनी बाईं आँख से कानी थी ?

नारद—रास्ते में उसके दाहिनी ओर के पौदे टूटे हुए थे। इससे मैंने समझा कि बाईं आँख न होने से उसे दाहिनी ओर की वस्तु ठीक ठीक नहीं दिखती थी।

क्षीरकदंब—और यह कैसे जाना कि उस पर एक गर्भवती स्त्री चढ़ी हुई थी।

नारद—नदी के किनारे जाकर वह हथिनी ठहरी थी। वहाँ उस स्त्री ने विश्राम किया था। नदी के किनारे उसके सोने से

जो चिन्ह बना था उसमें उदर का आकार बड़ा था। इससे मैंने समझा कि यह गर्भवती है।

क्षीरकदंब—श्वेत साड़ी समझने के लिये क्या कारण था?

नारद—यह तो प्रत्यक्ष था। नदी के किनारे एक कटीले वृक्ष में उसकी साड़ी फँस कर फट गई थी। और एक श्वेत टुकड़ा रह भी गया था।

क्षीरकदंब—परन्तु आज ही बालक होगा यह कैसे ज्ञात हुआ?

नारद—मैंने दूर से ही देखा कि उसी राह के अन्त पर एक मकान पर श्वेत ध्वजा फहरा रही थी। इससे मैंने समझा कि इस मकान में पुत्र जन्म का उत्सव करने का प्रबन्ध हो रहा है।

क्षीरकदंब—(पर्वत की माता से) तुमने देखा? इसमें मेरे पढ़ाने में भेद है अथवा नारद की बुद्धि की तीव्रता? अच्छा देखो, मैं इनकी एक और परीक्षा लेता हूँ।

क्षीरकदंब ने आटे के दो बकरे बनाये और बोले "इनको ऐसे स्थान में ले जाओ, जहाँ कोई न देख सके और वहाँ इनका पूजन करो, इनका नाम रक्खो, और इनके कान छेद कर ले आओ।" पर्वत एक वन में गया और वहाँ एक निर्जन स्थान में सब कार्य करके ले आया। परन्तु नारद ने आटे का बकरा वैसा का वैसा ही लाकर रख दिया।

क्षीरकदंब—क्यों नारद, तुमने इसका नाम-करण संस्कार क्यों नहीं किया और न इसके कान छेदे?

नारद—गुरुजी, मैं गहन से गहन वन में गया परन्तु ऐसा

स्थान न मिला कि जहाँ कोई न देखता हो । पशु पक्षी तो थे ही और यदि कोई भी न हो तो मैं तो था ही । इसके अतिरिक्त कान छेदने में हिंसा का कार्य है । इसलिये नामकरण संस्कार में उसका करना उचित नहीं है ।

क्षीरकदंब (प्रसन्न होकर)—पुत्र, तुमको धन्य है ; मेरे पीछे तुम ही मेरे स्थान पर विद्यार्थियों को पढ़ाना ।

उसके कुछ दिन पीछे क्षीरकदंब ने राजा वसु को बुला कर कहा कि "भाई, अब हम तो दीक्षा लेकर वन में तप करने जाते हैं । यह ब्राह्मणी और यह तुम्हारा छोटा गुरुभाई है । इनकी भी रक्षा करना ।" महाराज वसु ने कहा "महाराज, यह तो मेरा धर्म ही है । और फिर उस पर भी आपकी आज्ञा । आप निश्चिन्त होकर तप कीजिये । इन्हें किसी प्रकार का कष्ट न होने पावेगा ।"

यह सुन कर क्षीरकदंब तो वन में तप करने चले गये और उनके स्थान पर पर्वत विद्यार्थियों को पढ़ाने लगा । नारद ने उससे झगड़ा करना उचित न जान कर दूसरे स्थान में अपना आश्रम बना लिया । नारद की विद्वत्ता की दिन दिन ख्याति बढ़ने लगी । एक दिन नारद अपने शिष्यों सहित अपने गुरुभाई पर्वत से मिलने आये । उस समय पर्वत विद्यार्थियों को यज्ञ की विधि पढ़ा रहे थे । पर्वत "अजैर्यष्टव्यं" वाक्य का अर्थ कर रहे थे कि अज नाम बकरे का है इसलिये इस आज्ञा के अनुसार जो लोग स्वर्ग जाना चाहें वे बकरे को हवन करके यज्ञ करें । नारद को यह सुन कर बड़ा आश्चर्य हुआ ।

नारद—भाई, तुमने ऐसा अर्थ कहाँ से पाया ? हम भी उन्हीं गुरु से पढ़े हैं जिनसे तुम पढ़े हो। उन्होंने तो यह अर्थ कभी नहीं बताया। फिर तुम क्यों हिंसा फैला कर लोगों के धर्म को नष्ट करते हो ?

पर्वत—भाई नारद, तुम तो मुझ से सदैव उलझते रहते हो। अब क्या मैं तुमसे कुछ पूछने गया था ? अच्छा तुम ही बताओ कि क्या अर्थ है।

नारद—भाई, उलझने की बात नहीं है। इस शिक्षा से तो पवित्र वैदिक यज्ञों में घोर हिंसा का पाप होने लगेगा। अर्थ पूछते हो तो अज का अर्थ तीन वर्ष पुराने धान का है।

पर्वत—यदि यह अर्थ निकल आवे तो मैं अपने कान कटवा लूँ। हमारे तीसरे गुरु भाई महाराज वसु हैं। वे वेदों के ज्ञान में पंडित हैं। चलो उनसे ही पूछें।

दोनों इस बात पर सहमत हो गये। पर्वत ने सारा हाल अपनी माता से कहा। उसे सुन कर चिन्ता हुई। और वह महाराज वसु के पास गई !

ब्राह्मणी—महाराज, जब आपके गुरु तप करने को गये थे, तब मेरी व पर्वत की रक्षा का भार आप पर छोड़ गये थे।

राजा वसु—माताजी, क्या उस कार्य में त्रुटि होती है ?

ब्राह्मणी—आप दीर्घायु हों। हमें कोई दुःख नहीं है। परन्तु नारद और पर्वत में किसी विषय पर विवाद हो गया है। और उन्होंने आपको ही निर्णय करने के लिये चुना है।

पर्वत ने प्रतिज्ञा की है कि यदि वह हार गया तो अपने कान कटवा डालेगा। फिर भला वह कुरूप होकर जीवित भी क्यों रहेगा ? इसलिये उसके जीवन की रक्षा आपके ऊपर है।

राजा—परन्तु माताजी, यदि उसकी बात झूठी हुई, तो मैं झूठा निर्णय कैसे दूँगा ?

ब्राह्मणी—परन्तु यदि आप अपनी प्रतिज्ञानुसार हमारी रक्षा न करेंगे, तो भी तो झूठे होंगे।

राजा (सोचकर)—यदि मुझे झूठा बनकर नर्क में जाना ही है तो फिर आपकी रक्षा करके ही नर्क की यातना भोगूँ। अच्छा आप जाइये। पर्वत को कोई हानि नहीं होगी।

राजा वसु उस समय मोह में फँस कर यह भूल गये कि रक्षा करने की प्रतिज्ञा का यह अर्थ नहीं था कि पाप कर्म में भी रक्षा की जाय। उन्होंने यह भी न पूछा कि विषय क्या है। यदि यह पूछ लेते तो ज्ञात हो जाता कि विषय बड़ा गम्भीर और संसार के लिये महत्वपूर्ण है।

दूसरे दिन सभा जुड़ी। बहुत से राजा, विद्वान और तपस्वी लोग आये। सभा में सामवेद का गान और यजुर्वेद का पाठ होने लगा। उसी समय नारद और पर्वत भी आये। जब सभा बैठ गई तो राजा ने पर्वत को विवाद आरम्भ करने की आज्ञा दी।

पर्वत—वेद में एक वाक्य है "अजैर्यष्टव्यं" इसमें अज का अर्थ बकरा है। इसलिये यज्ञ में बकरे का वध करना उचित ही है। लोक में भी अज का अर्थ बकरे का लिया जाता है।

जैसे बकरी के दूध के लिये अज का दूध कहते हैं। किसी शब्द के यदि प्रचलित अर्थ न लिये जायँगे तो फिर किसी शब्द के अर्थ निश्चित न रह सकेंगे और व्यवहार भी न हो सकेगा।

नारद—एक ही शब्द के कई अर्थ होते हैं। प्रसंग के अनुसार ही अर्थ लगाये जाते हैं। गौ शब्द के अर्थ गाय, वाणी, पृथ्वी, इन्द्रिय, नेत्र, दिशा, वज्र आदि कितने ही हैं। इसका अर्थ यह नहीं है कि जहाँ भी गौ शब्द आया हो वहाँ गाय के ही अर्थ लिये जायँ। इसी प्रकार यहाँ अज के अर्थ बकरे के नहीं हैं। अज उसको कहते हैं कि जो उत्पन्न न हो सके। इसलिये तीन वर्ष का पुराना धान ही अज का अर्थ है क्योंकि उसके बीज उत्पन्न नहीं होते। उनमें से अंकुर नहीं निकल सकता। धान ही यज्ञ आदि में हवन करने में काम आते हैं। इसलिये प्रसंग से अज का अर्थ तीन वर्ष का पुराना धान ही लगेगा। इसके अतिरिक्त यज्ञ देव पूजा है। और देव पूजा आदि धर्म के नियत करने वाले भगवान ऋषभदेव ने अहिंसायुक्त धर्म बताया है। फिर भला देव पूजा जैसे पवित्र कार्य में हिंसा करना बुरा नहीं तो क्या है? जीवित पशु तो क्या आटे या मिट्टी आदि का पशु बना कर मारना भी पाप है, क्योंकि उसमें पशु मारने का पाप-पूर्ण विचार तो किया जाता है। और इसीसे मन पापी हो जाता है।

पर्वत—परन्तु नारद मन्त्रों का प्रभाव नहीं जानते। इसलिये ये भूलते हैं। यज्ञ में मन्त्र के साथ बलिदान करने में पशु को कुछ भी दुःख नहीं होता। और वह पशु स्वर्ग को प्राप्त करता है। इसलिये उसके बलिदान करने में पाप नहीं होता।

नारद—यह सर्वथा झूठ है, कि पशु को मन्त्र के साथ बलिदान करने में दुःख नहीं होता। यदि दुःख न होता तो पशु चिल्लाता क्यों और छटपटाता क्यों? यदि मन्त्र का प्रभाव ऐसा है तो पशु को शस्त्र से क्यों मारा जाता है। केवल मन्त्र से ही मारना चाहिये था। पशु के स्वर्ग जाने का ही क्या प्रमाण है। पशु तो क्या, यज्ञ करने वाला भी स्वर्ग में नहीं जा सकता है। भला कोई दूसरे को दुःख देकर कहीं स्वर्ग जा सकता है?

पर्वत—यह और भी रही! यज्ञ तो स्वर्ग जाने के लिये ही किया जाता है।

नारद—ठीक है। परन्तु वह यज्ञ पवित्र विधि से किया हुआ होना चाहिये। न कि हिंसा के साथ। यदि हिंसा करना स्वर्ग जाने की राह होती तो सब चिड़ीमार, व्याध और पशुओं को मारने वाले मारते समय इस मन्त्र को बोलते जाते और स्वर्ग चले जाते। फिर तो दुनिया में चाहे कोई किसी को भी मार कर स्वर्ग चला जाता। पाप करके स्वर्ग जाना, यह नया सिद्धान्त इस पर्वत ने निकाला है। गुरुजी ने तो कहीं पढ़ाया नहीं था।

इस विवाद को सुन कर सब लोग नारद की प्रशंसा करने लगे। और राजा वसु से कहने लगे कि आप उन्हीं गुरु से पढ़े हैं, अब निर्णय कीजिये।

राजा वसु ने कहा—जो नारद कहता है वह युक्तिपूर्ण है।

पर्वत जो कहता है वह गुरुजी ने बताया था।

राजा के ऐसे वचन निकलते ही राजा मूर्छित हो गया। और उसने शरीर छोड़ दिया। राजा ने अपनी प्रतिज्ञा का पालन तो किया परन्तु इस पाप के भार को सहन न कर सका, और निर्णय करते करते मर गया। सभा के लोग यह सब चरित्र देख कर पर्वत को धिक्कारने लगे और उसे नगर से निकाल दिया। उन लोगों ने महात्मा नारद की बहुत प्रशंसा की कि आपने ही इस दुष्ट का भेद खोल कर धर्म की रक्षा की है। ऐसा कह कर उपस्थित राजाओं ने नारद को गिरितट नाम का नगर और बहुत सी भूमि दान में दी। नारद वहाँ आश्रम बना कर सत्य ज्ञान की शिक्षा देने लगे। पर्वत नगर से निकल कर वनों में घूमने लगा। वहाँ उसे एक महाकाल नाम का दैत्य मिला। यह दुष्ट क्षत्रिय राजाओं का शत्रु था, और ब्राह्मणों का भेष रख कर उनसे पाप भी कराना चाहता था। जैनियों के अनुसार इन दोनों ने मिल कर हिंसा पूर्ण यज्ञों का प्रचार किया। वे तो दोनों नर्क को गये और भगवान तीर्थंकरों के उपदेश से हिंसा का पाप लोगों की समझ में आया और अहिंसा धर्म का प्रचार हुआ।

सनातन धर्म की पुस्तक श्रीमद्भावगत पुराण में भी देवऋषि

नारद और राजा प्राचीन वहिर्य की एक कथा है। उसमें ऋषि नारद ने राजा को आकाश में उन सब पशुओं को दिखलाया है जो राजा ने यज्ञ में वलि किये थे। वे पशु राजा की ओर क्रोध से देख रहे थे। उस समय देवऋषि नारद ने उपदेश किया कि ऐसे यज्ञों में जीवन विताने से यह अच्छा है कि भगवान की भक्ति करके ज्ञान व मुक्ति प्राप्त की जाय।

५—भगवान पार्श्वनाथ

भगवान पार्श्वनाथ जैनियों के तेईसवें तीर्थंकर थे। इनके पिता भी सूर्यवंश के क्षत्रिय थे, और काशी के राजा थे। इनके पिता का नाम विश्वसेन और माता का नाम ब्रह्मादेवी था। भगवान पार्श्वनाथ के जन्म से पहिले उनकी माता को भी योगियों के समान वे सब स्वप्न दिखाई दिये थे जो अन्य तीर्थंकरों के जन्म के पहिले उनकी माताओं को दिखाई पड़ा करते हैं। उनके जन्म होने से संसार में सुख और शान्ति भर गई। ऐसा ही सब तीर्थंकरों के जन्म के समय में होता है।

भगवान पार्श्वनाथ अन्य तीर्थंकरों के समान आरम्भ से ही शास्त्र का ज्ञान और अपने पहिले जन्मों के हाल को जानते थे। उनको भूत, भविष्य और वर्तमान तीनों काल का ज्ञान था। एक वार वे मंत्री के पुत्र के साथ नगर से बाहर सैर करने गये। वहा एक स्थान पर उन्होंने एक तपस्वी को देखा। उसके चारों ओर

अग्नि जल रही थी। भगवान भी तपस्वी के कार्य को देखने लगे। उन्होंने उस तपस्वी को प्रणाम नहीं किया। इससे उसे क्रोध हुआ। परन्तु भगवान पार्श्वनाथ ने इसकी ओर ध्यान नहीं दिया, और उससे बोले—हे तपस्वी, इस निरर्थक तपस्या से क्या लाभ है कि जिसमें हिंसा होती है? मन की तपस्या कर जिससे मन शुद्ध हो और तु मोक्ष को प्राप्त हो।

तपस्वी—तुम इसका भेद क्या जानो। तुम मूढ़ बालक होकर मुझे ज्ञानियों के समान शिक्षा देते हो! भला बताओ कि यह तपस्या हिंसामय कैसे है।

भगवान पार्श्वनाथ (एक लकड़ी को निकाल कर)—तु अपनी अज्ञानता से नहीं समझता। देख इस लकड़ी में एक सर्प और सर्पिणी हैं, जिनको तू जीवित ही जलाये डालता है।

लकड़ी चीरी गई और उसमें से अधजले सर्प और सर्पिणी तड़फते हुए निकले। उनके कष्ट को देख कर भगवान पार्श्वनाथ को बड़ी दया आई। उन्होंने वहाँ ही उनको ज्ञान का उपदेश करना आरम्भ किया। उनका उच्चारण ऐसा मधुर था कि उनका प्रभाव उन मरते हुए सर्प और सर्पिणी पर भी पड़ा और उनके मरने के समय का कष्ट दूर हो गया। उनका तड़फना बन्द हुआ और उन्होंने शांति से शरीर छोड़ दिये।

जब भगवान पार्श्वनाथ युवा हुए तो उनके पिता ने कहा—

पिता—हे पार्श्वनाथ, तुम हमारे कुल के दीपक हो। तुम शान्त

चित्त और सदैव आनन्द से पूर्ण रहते हो। तुम्हें सुख की इच्छा नहीं है। फिर भी, हे पार्श्वनाथ, ये अनेक देशों के राजा यहाँ आये हुए हैं और अपनी पुत्रियों का विवाह तुम्हारे साथ करना चाहते हैं, इसलिये तुम विवाह करके इनको प्रसन्न करो।

भगवान पार्श्वनाथ—पिताजी, संसार के सब सुख थोड़े ही दिन रहने वाले हैं। सच्चा सुख मोक्ष का है। इसलिये उसी को प्राप्त करने की आज्ञा दीजिये।

राजा विश्वसेन—हे पार्श्वनाथ, विवाह करके गृहस्थ धर्म का पालन भी संसार की सेवा है। इस धर्म का पालन क्यों नहीं करना चाहिये?

भगवान पार्श्वनाथ—पिताजी, आशीर्वाद दीजिये कि मैं इसी जन्म में कैवल्य ज्ञान प्राप्त करलूँ, संसार के जीवों को मुक्ति का सरल मार्ग दिखा सकूँ और संसार की सेवा करता हुआ ही मोक्ष प्राप्त कर सकूँ।

राजा विश्वसेन—परन्तु अभी तो तुम्हारा सारा जीवन पड़ा है। युवावस्था में विवाह करके कुछ समय पीछे मुनियों से दीक्षा ले लो तो क्या हानि है?

भगवान पार्श्वनाथ—पिताजी, कीचड़ में पैर डाल कर और फिर उनको धोना इससे क्या लाभ है? इससे तो यही अच्छा है कि कीचड़ से पृथक ही रहा जाय। मैं तो इस समय ही दीक्षा लेने को तैयार हूँ।

जब पिताजी ने देखा कि वह अपने विचार से हटने वाला नहीं है, तो चुप हो गये। श्वेतांबर जैनियों का कहना है कि भगवान पार्श्वनाथ ने अयोध्या के राजा प्रसेनजित् की पुत्री प्रभावती से विवाह किया था।

कहते हैं कि दीक्षा लेने से पहिले भगवान पार्श्वनाथ ने कई दिन तक निर्जल व्रत किया था। एक बूँद पानी भी नहीं पिया। दीक्षा लेते ही उनको मनःपर्य्य ज्ञान प्राप्त हो गया। मनः-पर्य्य ज्ञान उसको कहते कि जिससे दूसरे की मन की बात समझने की शक्ति प्राप्त हो जाय। दीक्षा के पीछे कई दिन तक भगवान पार्श्वनाथ समाधि में बैठे रहे। जब समाधि से उठे तो एक नगर में गये और वहाँ के राजा ने उन्हें बड़ी भक्ति से खीर का भोजन खिलाया।

वहाँ से लौट कर भगवान पार्श्वनाथ फिर समाधि में बैठ गये। उनकी अहिंसा का भाव इतना बढ़ गया था कि जिस बन में वे रहते थे, वहाँ के हिंसक पशु, शेर आदि, हिंसा करना छोड़ कर घास से पेट भरने लग जाते थे। जिन जानवरों को वे पहिले मारा करते थे फिर उन्हीं से प्रेम करने लगते थे। मोर साँप को मार डालता है। परन्तु उस बन में मोर साँप को मारते नहीं थे। यदि कोई साँप धूप में पड़ा होता था तो मोर उसे उठा कर छाया में रख देते थे।

एक बार जब भगवान एक बन में जाकर ध्यान में बैठे तो बहुत से सिंह क्रोध कर लाल लाल आँखें किये उनकी ओर दौड़े। परन्तु भगवान पार्श्वनाथ कुछ भी नहीं डरे। उलटे वे सिंह ही

भगवान की सुन्दर मूर्ति को देख कर शान्त हो गये। इसके पीछे उस वन में अग्नि भी लग गई और वन के पशु पक्षी विकल हो कर भागने लगे परन्तु भगवान पार्श्वनाथ अपने ध्यान से विचलित नहीं हुए। इतने ही में बड़ी जोर से वर्षा होने लगी। मूसलाधार पानी पड़ने लगा। बिजली कड़कने लगी और पहाड़ों पर से पत्थर टूट टूट कर गिरने लगे। परन्तु फिर भी भगवान पार्श्वनाथ का ध्यान नहीं टूटा। कथा है कि उस समय एक सर्प और सर्पिणी उनके सिर पर फण फैला कर खड़े हो गये कि जिससे उन पर वर्षा का पानी न गिरे। ये वेही थे कि जिनको पहिले भगवान ने जलती अग्नि से निकाला था। इसीलिये भगवान पार्श्वनाथ की मूर्ति के ऊपर सँप का फण फैला हुआ बनाया जाता है।

कथा के अनुसार ये सब उत्पात उनके शत्रु उसी तपस्वी ने किये थे जिसको उन्होंने पहिले हिंसामयी तपस्या से रोका था। भगवान का ध्यान किसी प्रकार नहीं छूटा और शुक्ल ध्यान (एक प्रकार का ध्यान) द्वारा उन्होंने कैवल्य ज्ञान प्राप्त कर लिया। जब कैवल्य ज्ञान प्राप्त करने पर भगवान की समाधि खुली, तो उनका वही उत्पाती शत्रु सन्मुख आया और भगवान से क्षमा की प्रार्थना करने लगा। भगवान को क्रोध तो किसी पर होता ही नहीं था। इसलिये उसे बड़े प्रेम से ज्ञान का उपदेश किया कि जिससे वह भी साधन करके अन्त में मुक्त हुआ।

कैवल्य ज्ञान प्राप्त करने के पीछे लगभग ७० वर्ष तक भगवान पार्श्वनाथ मनुष्यों को उपदेश करते रहे। जिस समय वे उपदेश

करते थे, तो मेघ की गर्जना के समान दिव्य ध्वनि होती थी और उसे सब लोग अपनी अपनी भाषा में समझ लेते थे। उस मंडप में ऊँच नीच का भेद नहीं होता था, वरन् सब ही आकर भगवान का उपदेश सुनते थे। जब भगवान की १०० वर्ष की आयु थी तब वे सम्मेद शिखर पर गये और वहाँ एक मास तक योग की समाधि में रहे और फिर शुक्ल ध्यान करते हुए मोक्ष प्राप्त की। तब से उस पहाड़ी का नाम भी पार्श्वनाथ पहाड़ पड़ गया है।

६—भगवान महावीर

भगवान महावीर जैनियों के चौबीसवें और अन्तिम तीर्थंकर हुए हैं। ये कुंडग्राम के राजा सिद्धार्थ के यहाँ रानी त्रिशला के गर्भ से हुए थे।

अन्य तीर्थंकरों की माताओं के समान रानी त्रिशला ने भी अद्भुत प्रकार के स्वप्न देखे। जैसे श्वेत हाथी, मोतियों का ढेर, श्वेत प्रकाश वाले चन्द्रमा, तीव्र प्रकाश वाले सूर्य, श्वेत बैल, श्वेत सिंह, श्वेत क्षीर समुद्र, कमल के ऊपर बैठी लक्ष्मी (धन की देवी), मणियों से परिपूर्ण स्वर्ग, बादल की गरज व मृदंग के समान शब्द। इन सब स्वप्नों में बड़ा भारी प्रकाश था जो अनेक सूर्यों के प्रकाश से भी अधिक था, और वह प्रकाश भी प्रायः श्वेत रंग का था। इसी प्रकार के स्वप्न योग साधन करने वाले को दिखाई पड़ा करते हैं, और ऐसे शब्द सुनाई देते हैं। रानी त्रिशला ने इन स्वप्नों

का हाल राजा सिद्धार्थ से कहा। विद्वानों ने विचार कर कहा कि इनके गर्भ से संसार धर्म के चलाने वाले तीर्थंकर होंगे।

सम्भव है वाचकों ने बाज़ार में एक चित्र देखा हो जिसमें समुद्र में कमल के ऊपर लक्ष्मी बैठी होती है और दो हाथी अपनी सूँड़ों से लक्ष्मीजी के ऊपर पानी छोड़ते हैं। वह चित्र रानी त्रिशला के स्वप्न के ही समान है। कथा है कि जब कोई तीर्थंकर जन्म लेते हैं तो देवताओं के राजा इन्द्र उनको मेरु पर्वत पर ले जाकर क्षीर समुद्र के जल से तिलक करते हैं और उत्सव मनाते हैं। ऐसा ही भगवान महावीर के जन्म के समय में किया था।

भगवान महावीर देखने में बड़े सुन्दर थे, और बल-बुद्धि में बड़े तेज़ थे। एक बार वे उपवन में और बालकों के साथ खेल रहे थे। उस समय एक हाथी दौड़ता हुआ आया। सब बालक डर कर भाग गये परन्तु ये उसके पास गये, उसकी सूँड पकड़ कर ऊपर चढ़ गये, और उस पर बैठकर घूमने लगे। जब लोगों ने उनको इस प्रकार निडर हाथी पर बैठा देखा तो सब आश्चर्य करने लगे और उनको नीचे उतार लिया।

एक कथा है कि जब भगवान महावीर बालक ही थे तो इन्द्र की सभा में उनके साहस की प्रशंसा हो रही थी। इसे सुनकर एक देवता ने उनकी परीक्षा लेने का निश्चय किया। वह जहाँ भगवान महावीर खेल रहे थे, वहाँ आया और भगवान महावीर को कन्धे पर चढ़ा कर ले भागा। वह देखने में ऐसा डरावना था कि और बालक तो उसे देख कर ही भाग गये। जब वह भगवान

महावीर को ले कर भागा तो बालक महावीर घबराये नहीं वरन् कन्धे पर बैठे ही बैठे उसके सिर के बाल ऐसे ज़ोर से खैंचे कि उसने झट इनको छोड़ दिया।

भगवान महावीर बचपन से विचारशील और विरक्त थे। वे सुख दुःख की परवाह नहीं करते थे। आठ वर्ष की आयु से ही उन्होंने जैन धर्म के व्रत पालन करने आरम्भ कर दिये थे। माता पिता के शरीरान्त होने के दो वर्ष के बाद उन्होंने भगवान पार्श्वनाथ के अनुयायियों से जैन धर्म की दीक्षा ले ली।

भगवान महावीर ने दीक्षा लेने के दो दिन तक निर्जल उपवास किया था, एक बूँद पानी भी उनके मुख में नहीं गया। उसके पीछे उन्होंने अपनी सारी सम्पत्ति दान कर दी, केवल शरीर पर एक कपड़ा रह गया। पीछे से सोमदत्त नाम का एक ब्राह्मण इनके पास आया।

सोमदत्त—महाराज, जिस समय महाराज ने दान किया था, उस समय मैं भाग्यवश उपस्थित नहीं था।

भगवान महावीर—परन्तु भाई, अब मेरे पास क्या है? हाँ शरीर का वस्त्र अवश्य है। यदि तुम चाहो तो इसमें से आधा ले जा सकते हो। परन्तु आधा वस्त्र तुम्हारे किस काम का?

सोमदत्त—महाराज, आपके शरीर पर पहिना हुआ वस्त्र तो अमूल्य है। उसका एक टुकड़ा भी सुख सम्पत्ति का देने वाला होगा।

भगवान महावीर—तुम सहर्ष इसका आधा टुकड़ा ले जाओ।

यह कह कर उन्होंने अपने वस्त्र में से आधा उस ब्राह्मण को दे दिया और आप ध्यान में बैठ गये।

कहते हैं कि भगवान महावीर छः महीने तक ध्यान में बैठे रहे, न कुछ खाया और न पिया, और न वहाँ से उठे।

सोमदत्त ने वह आधा भाग अपने एक मित्र को दिखाया और अपने भाग्य की प्रशंसा करने लगा।

मित्र—वाह भाई सोमदत्त, तुम भी बड़े मूर्ख हो। भला आधे वस्त्र का क्या होगा? पूरा ले आते तो कुछ काम भी आता।

सोमदत्त—परन्तु पूरा लेकर क्या मैं उन्हें नंगा कर देता?

मित्र—उनके लिए नंगा रहना और वस्त्र पहिनना एकसा है। और जो ध्यान में मग्न रहे उसे क्या चिन्ता कि वस्त्र है या नहीं।

सोमदत्त—तो फिर अब जाकर माँग लूँ?

मित्र—और नहीं तो क्या? आधा वस्त्र न तुम्हारे काम का है न उनके काम का है। उन्हें वस्त्र की आवश्यकता ही नहीं। और तुम्हारा वस्त्र पूरा हो जायगा, तो कुछ काम चलेगा!

सोमदत्त की समझ में यह बात आ गई। वह भगवान महावीर के पास गया। देखा कि वे ध्यान में मग्न थे, और उनका वस्त्र ढीला होकर शरीर से गिर पड़ा था। सोमदत्त ने उन्हें ध्यान से तो न जगाया वरन् धीरे से उस वस्त्र को उठा कर चलता बना। जब भगवान छः महीने में ध्यान से उठे तो उन्होंने अपने आपको वस्त्र रहित देखा। वह सोमदत्त की करतूत जान गये और हँस कर नंगे

ही उठ खड़े हुए। उस दिन से फिर उन्होंने कभी वस्त्र पहिना ही नहीं। दिगम्बर जैन इस कथा को नहीं मानते। उनके अनुसार भगवान महावीर ने मुनि दीक्षा लेते समय ही सब वस्त्रों को त्याग दिया था।

बारह वर्ष तक भगवान महावीर वनों में घूमते फिरे और उन्होंने बारह वर्ष तक मौन व्रत धारण किया। इस समय ये किसी से बोलते भी नहीं थे। गाँव या नगर, जो रास्ते में पड़ता था, वहाँ किसी के घर भोजन कर लेते थे और फिर वन में जाकर ध्यान में बैठ जाते थे। वे किसी गाँव में एक दिन से अधिक नहीं ठहरते थे। परन्तु वर्षा ऋतु में चार महीने एक ही जगह रहते थे। वर्षा में बहुत से जीव पैदा हो जाते हैं और भ्रमण करने से उनकी हिंसा होती है।

एक बार भगवान महावीर एक वन में नाक के सिरे पर दृष्टि लगा कर ध्यान में मग्न हो गये। उस समय पास के एक गाँव से एक आदमी दो बैलों को लिये हुए आया। आते आते उसे किसी बात की याद आई और वह घर को लौट गया। परन्तु दूर से ही भगवान महावीर को पुकार कर कहता गया कि "भैया, इन बैलों को तनिक देखते रहना।" भगवान महावीर ने कुछ सुना भी नहीं। जब वह आदमी लौट कर आया तो उसे वहाँ बैल न मिले। उसने भगवान महावीर से पूछा परन्तु वे ध्यान में ही मग्न रहे, कोई उत्तर न दिया। वह ग्वाला बैलों को ढूँढता रहा परन्तु कहीं न मिले। जब वह फिर लौटकर आया तो देखा कि दोनों बैल भगवान महावीर के पास बैठे हुए हैं। ग्वाले ने समझा कि इस साधु का ध्यान

लगाना ढोंग है। यह मेरे बैल चुरा कर ले जाने को ही चुपकी साध कर खड़ा है।उसने क्रोध में आकर भगवान महावीर को बैलों की रस्सी से ही मारना आरम्भ किया। परन्तु भगवान महावीर ने कुछ न कहा। फिर इन्द्रदेव ने आकर इनको छुड़ाया।

एक बार भगवान महावीर एक वन की ओर जा रहे थे। पास के गाँव वालों ने कहा कि महाराज, इस वन में न जाइये। इसमें एक बड़ा भयंकर सर्प रहता है। परन्तु भगवान महावीर चले ही गये और जाकर ध्यान में मग्न हो गये। वह सर्प वहाँ आया और उसने बड़े जोर से फुंकार मारी। परन्तु उसका भगवान महावीर पर कुछ भी प्रभाव न पड़ा। तब उसने उनके पैरों में बड़े ज़ोर से काटा। उसके काटने पर भी सर्प का विष नहीं चढ़ा। भगवान महावीर हँस कर उस सर्प से कहने लगे कि "हे सर्प, तू पूर्व जन्म में एक मुनि था। उस जन्म में एक अवसर पर क्रोध करते करते मृत्यु हो जाने से तू ने क्रोधी सर्प का जन्म पाया है। अब तू फिर क्यों क्रोध करके अपने अगले जन्म को नष्ट करता है?" कहते हैं कि उस दिन से वह सर्प शान्त पड़ा रहता था। और फिर उसी शान्त अवस्था में मर गया।

एक बार भगवान महावीर एक वन में ध्यान लगाये हुए थे कि बड़े ज़ोरों की आँधी आई। इतनी धूल उड़ी कि श्वास लेना भी कठिन हो गया। परन्तु भगवान महावीर का ध्यान नहीं छूटा। बहुत से साँप बिच्छू उस स्थान पर निकलने लगे। वर्षा होने से डाँस और मच्छर भी हो गये। भगवान महावीर का ध्यान उनके

काटने से भी न छूटा। और न साँप बिच्छू के विष का उन पर कुछ प्रभाव पड़ा। उनके चारों ओर फूल खिल गये। सुन्दर स्त्रियाँ वहाँ आ कर नाच गायन करने लगीं परन्तु भगवान का ध्यान ऐसा लगा था कि किसी बात से न छूटा।

एक बार उनको इससे भी अधिक कष्ट सहन करना पड़ा। एक बार फिर एक ग्वाले से उनका काम पड़ा। जब वह ध्यान में मग्न थे तो एक ग्वाला उनके पास दो बैल छोड़ कर चला गया। जब लौट कर आया तो उसे वे बैल नहीं मिले। उसने भगवान से पूछा परन्तु वे तो ध्यान में मग्न थे। उन्होंने उसका प्रश्न सुना भी नहीं। फिर उत्तर क्या देते? ग्वाले ने समझा कि यह ढोंग करता है। उसने उनके ध्यान को छुड़ाने के लिये उनके पैरों के बीच में आग जलाई। फिर भी वे न जागे, तो उनके कानों में एक पेड़ से लकड़ी काट कर कील के समान ठोंक दी। भगवान महावीर ने यह अपार कष्ट भी सहन कर लिया पर उस ग्वाले पर क्रोध नहीं किया। भगवान महावीर वहाँ से चल दिये। जब वे एक गाँव में पहुँचे तो वहाँ के वैद्य ने इनके मुख पर पीड़ा के चिन्ह देख कर इनके शरीर की परीक्षा की और उन कीलों को कानों में से निकाला। कीलों के निकालते समय भी भगवान को अत्यन्त कष्ट हुआ। जब ऐसे ऐसे कष्ट सहन करने से महावीर शान्त चित्त हुए तब एक दिन शुक्ल ध्यान करते हुए उन्होंने कैवल्य ज्ञान अर्थात् अपना परम उच्च आत्म-ज्ञान प्राप्त किया।

आत्म-ज्ञान प्राप्त करने के पीछे भगवान महावीर ने जैन धर्म

का प्रचार आरम्भ किया। बड़े बड़े सुन्दर पंडालों में भगवान उपदेश करते थे और सब लोग सुनने को आते थे। बड़े छोटे या ऊँची या नीची जाति का भेद नहीं करते थे। सब मिलकर बैठते और उस अमृत के समान उपदेश को सुनते थे।

एक बार इन्द्रभुति नाम के एक ब्राह्मण किसी के यहाँ यज्ञ करा रहे थे। उन्होंने दूर से बहुत से मनुष्यों को आते देखा। उन्होंने समझा कि वे यज्ञ देखने को आ रहे हैं। उन्होंने बड़े प्रसन्न होकर कहा कि "देखो, ये लोग इस पवित्र यज्ञ के दर्शन के लिये ही आ रहे हैं। शास्त्र के अनुसार किये हुए यज्ञ को कौन देखना नहीं चाहेगा?"

एक ब्राह्मण बोला—परन्तु महाराज, ये लोग तो इस ओर देखते ही नहीं वरन् देखिये उस दूसरे रास्ते से जाने लगे हैं।

इन्द्रभूति—हाँ कहते तो ठीक हो। इनसे जाकर पूछो तो सही कि ये लोग कहाँ जा रहे हैं?

एक नौकर ने जाकर पूछा और आकर कहा—

नौकर—महाराज, वे कहते हैं कि तीर्थङ्कर भगवान महावीर का उपदेश सुनने जा रहे हैं।

इन्द्रभूति—ये भगवान महावीर कहाँ से निकल पड़े जिनका उपदेश लोगों को वैदिक यज्ञ से भी अच्छा लगता है! जब ये लोग लौटें तो उनको हमारे पास लिवाकर लाना।

जब लोग उपदेश सुन कर लौटे, तो नौकर लोग उनको इन्द्रभूति के पास ले गये।

इन्द्रभूति ने पूछा—कहो भाई, तुम किसका उपदेश सुनने गये थे, कुछ हमें भी तो उनका हाल बताओ।

लोग—क्या पूछते हो महाराज, उपदेश था कि अमृत की वर्षा।

इन्द्रभूति—तुम उनका उपदेश समझते थे? क्या संस्कृत भाषा में उपदेश करते थे?

लोग—नहीं महाराज, उनके मुख से तो केवल एक दिव्य ध्वनि निकलती थी। परन्तु उस ध्वनि के सुनने से ही हमारी बुद्धि में अनेक अद्‌भुत बातें समझ में आती थीं। आश्चर्य तो यह है कि अनेक देशों के लोग वहाँ थे। और सभी के मन में एक से ही विचार उत्पन्न होते थे, मानों भगवान सबको पृथक् पृथक् भाषा में एक ही उपदेश करते हों।

इन्द्रभूति—भाई, दिव्य ध्वनि कैसी? उसमें अक्षरों का तो उच्चारण होता होगा?

लोग—नहीं महाराज, वह भाषा तो निरक्षरी है। और कैसी थी इसको कह नहीं सकते। यह तो सुनने से ही मालूम हो सकता है।

इन्द्रभूति—अच्छा उसी भाषा में उपदेश क्या दिया?

लोग—महाराज, उस उपदेश से हमें विश्वास हो गया है कि मनुष्य की मुक्ति न तो जाति से होती है और न किसी बड़े घराने में उत्पन्न होने से वरन् अपने ही कर्मों से होती है। जो लोग अहिंसा का पालन करते हैं, सत्य बोलते हैं वे ही मोक्ष पाते हैं। मोक्षगामी चोरी नहीं करते,

लोभ से रहित होते हैं और ब्रह्मचर्य का पालन करते हैं।

इन्द्रभूति—क्या शूद्र के लिये भी वही धर्म है, जो ब्राह्मण के लिये ?

लोग—महाराज, आजीविका तो भिन्न भिन्न हैं परन्तु मोक्ष प्राप्त करने के लिये अहिंसा, सत्य, अस्तेय (चोरी न करना) अपरिग्रह (धन न रखना) और ब्रह्मचर्य के पालन का अधिकार सब को है। शूद्र भी मुनि हो सकता है और आचार्य तक हो सकता है।

इन्द्रभूति—और इन नये भगवान का रूप रंग कैसा है ?

लोग—महाराज, ऐसा तेज बरसता है कि उनके सामने आँखें नहीं ठहरतीं। त्यागी ऐसे हैं कि कपड़ा भी पास नहीं रखते। जाड़े गरमियों में सदैव नंगे ही रहते हैं।

इन्द्रभूति—तब तो समझ लिया कि तुम्हारे भगवान कैसे हैं। अच्छा मैं भी जाकर देखूँगा।

इन्द्रभूति ने समझा था कि कोई पाखंडी होगा जो नंगा रह कर सन्त बना है। इन्द्रभूति भगवान के पास गये। भगवान महावीर ने तो आते ही कहा 'आओ गोतम इन्द्रभूति, तुम्हारे मिलने से सुख हुआ।' इन्द्रभूति को अपना नाम सुन कर आश्चर्य तो हुआ, परन्तु मन में समझा कि किसी ने कह दिया होगा। परन्तु जब भगवान ने कहा 'इन्द्रभूति तुम्हारे मन में मनुष्य के जीव के सम्बन्ध में शंका है। सो उसका उत्तर सुनो।' यह कह कर भगवान ने इन्द्रभूति के मन में जो प्रश्न था उसका उत्तर देना आरम्भ किया।

इन्द्रभूति उनके पैरों पर गिर पड़े और उन्होंने शिष्यों सहित जैन धर्म स्वीकार कर लिया। ये ही इन्द्रभूति भगवान के सब से बड़े शिष्य थे और ये ही पीछे से जैन धर्म के आचार्य हुए। कहीं कहीं पर इन्द्रभूति के जैन दीक्षा लेने की कथा इससे भिन्न है। उस कथा के अनुसार देवताओं के राजा इन्द्र ने आकर इन्द्रभूति से एक श्लोक का अर्थ पूछा। वह उसको न बता सके। परन्तु भगवान महावीर ने उसका ठीक ठीक उत्तर दे दिया। इस पर इन्द्रभूति ने जैन धर्म स्वीकार किया। भगवान महावीर के शिष्यों में शूद्र भी थे जैसे हरिकेशी, ढंक, सकडाल आदि। और स्त्रियाँ भी हज़ारों थीं। बड़े बड़े राजा और देश के देश भगवान के शिष्य बन गये थे।

भगवान महावीर भ्रमण करने के लिये निकले थे। एक बार एक सन्यासियों के समूह के साथ उन्होंने वर्षा काल बिताया था। भगवान उस समय एक झोंपड़ी में रहते थे। वर्षा से उसके आस पास घास भी जम गई थी। गाँव की गायों ने उस घास को ही नहीं वरन् झोंपड़ी के तिनके व पत्ते भी खा डाले। परन्तु भगवान महावीर ने उन गायों को वहाँ से हटाया नहीं। एक बार वह मंदिर में ध्यान में बैठे हुए थे कि उस समय एक सर्प ने आकर उनको कई बार काटा। परन्तु उन्होंने सर्प को मारा नहीं। वरन् उनकी क्षमा और शान्ति से वह भी शान्त स्वभाव का हो गया।

एक गौशाला नाम का मनुष्य था। इसका नाम गौशाला इस-लिये पड़ गया था कि यह गौशाला में ही उत्पन्न हुआ था। वह भगवान महावीर के साथ ही उनको गुरु मान कर रहने लगा।

परन्तु वह बड़ा चचल और क्रोधी था। एक बार जब भगवान एक नगर में पहुचे तो गौशाला एक सेठ के यहाँ भिक्षा लेने गया। सेठ ने अपनी दासी से उसे भिक्षा देने को कहा। दासी चाँवल देने को लाई। यह देख कर गौशाला सेठ को बुरा भला कहने लगा कि "तुम केवल चाँवल भिक्षा में देते हो।" और सेठ को शाप दिया कि यदि मेरे गुरु सच्चे हैं तो तेरा घर जल जाय। अकस्मात् उस सेठ के घर में आग लग भी गई। बेचारे सेठ का घर जल कर राख हो गया। इन उत्पातों का परिणाम यह होने लगा कि लोग गौशाला को पीटने लगे। अन्त में उसने भगवान का साथ छोड़ दिया और उनके बताये हुए योग साधन को थोड़ा बहुत करके ही अपने आप को तीर्थंकर प्रसिद्ध करने लगा। एक बार भगवान महावीर उसी नगर में जा निकले जिसमें गौशाला था। वह भी उनके पास आया परन्तु उनका आदर करने के बदले उन्हें गालियाँ देने लगा, और मारने दौड़ा। भगवान ने उससे कुछ भी न कहा। परन्तु वह अपने क्रोध से आप ही जलने लगा। वह छटपटा कर वहीं गिरने लगा। और सात दिन में मर गया। परन्तु मरने के समय उसे पश्चात्ताप हुआ और सत्य ज्ञान की प्राप्ति हुई।

भगवान महावीर जब भिक्षा करने जाते थे तब पहिले सोच लेते थे कि यदि इस प्रकार की भिक्षा मिलेगी तो ग्रहण करूँगा नहीं तो नहीं। आज कल भी जैन साधु इस प्रकार का नियम पालन करते हैं। एक बार उन्होंने बड़ी कठिन प्रतिज्ञा की। उन्होंने सोचा कि मैं तभी अन्न ग्रहण करूँगा जब कि अन्न देने वाली कोई राज-

कुमारी हो, परन्तु वह आज कल दासी हो। उसके पैरों में लोहे की बेड़ी हो। उसका सिर मुँडा हो। वह रोती हो। उसका एक पैर चौखट के बाहर और एक भीतर हो। और सूप में उड़द के दाने उसके हाथ में हों। वह यदि मुझे बुला कर उन दानों को दे, तो मैं उन्हें ग्रहण करूँगा। बड़ी कठिन प्रतिज्ञा थी। भगवान महावीर महीनों घूमते रहे परन्तु ऐसी भिक्षा नहीं मिली।

उस नगर के एक सेठ जब बाज़ार में जा रहे थे, तो उन्होंने एक सुन्दर लड़की को बिकते हुए देखा। उन्होंने समझा कि यह किसी ऊँचे घराने की है। वह एक राजा की पुत्री थी। पर एक और राजा ने उस पर चढ़ाई की थी। उस लड़ाई में वह बन्दी हो गई। इसलिये उसका पकड़ने वाला उसे बेचने को ले आया था। उन दिनों में इस प्रकार दासियों के बिकने की प्रथा थी।

सेठ ने उस राजकुमारी को मोल ले लिया, और उसे पुत्री के समान रखने लगा। परन्तु उसकी सेठानी को यह अच्छा न लगा। उस लड़की का नाम चन्दना था। सेठानी ने चन्दना के सिर के बाल मुँडवा दिये और उसे कुरूप करने के लिये उसके पैर में गहनों के बदले लोहे की बेड़ियाँ डाल दीं। और चन्दना को ताले में बन्द करके अपने पिता के घर चली गई। जब सेठ घर आया और उसे सब हाल मालूम हुआ तो सेठ ने ताला तुड़वा कर चंदना को बाहर निकाला। घर में सेठानी ने खाने के लिये कुछ नहीं बनाया था। रसोई घर में एक सूप में कुछ उड़द के दाने रखे हुए

थे। सेठ उन्हीं को चन्दना को देकर बाहर से बेड़ी काटने को लुहार बुलाने को गया। चन्दना उसी सूप को लेकर द्वार पर खड़ी हो गई कि यदि कोई अतिथि आ जाय तो उसे खिला कर मैं खाऊँगी। इतने में भगवान महावीर आये। उसने झट एक पैर निकाल कर प्रार्थना की कि भगवान, यह अन्न आपके भोजन के योग्य नहीं है परन्तु आप मेरे ऊपर दया करके ग्रहण कीजिये। भगवान महावीर ने देखा कि उनकी प्रतिज्ञा की और सब बातें तो पूरी हो गई परन्तु चन्दना की आँखों में आँसू नहीं थे। इसलिये वे आगे को चल दिये। यह देख कर चन्दना अपने दुर्भाग्य पर रो पड़ी। उसका रोना देख कर भगवान महावीर लौट पड़े क्योंकि अब उनकी प्रतिज्ञा पूरी हो गई थी। इस प्रकार चार महीने तक भूखे रहने के पीछे उन्होंने वे उड़द के दाने खाये। फिर यह चन्दना जैन धर्म का उपदेश लेकर आर्यिकाओं में मुख्य हो गई।

कैवल्य ज्ञान होने के पीछे जब भगवान महावीर भ्रमण करते थे तो उनके आगे एक धर्म चक्र चलता था। ऐसे ही धर्म चक्र की प्रथा बौद्धों में भी है। और चीन में अब तक धर्म-चक्र होता है। उसमें धर्म की मुख्य मुख्य आज्ञाएँ लिखी रहती हैं। उसको मनुष्यों की भीड़ के सामने घुमाने से लोगों को धर्म के सिद्धान्तों की याद आ जाती है।

एक बार एक नगर के राजा प्रसेनजित भगवान के शिष्य हो गये। वे एक स्थान पर तप कर रहे थे। वहाँ से मगध के राजा श्रेणिक (बिंबसार) की सवारी निकली। उनके एक सेनापति ने

राजा प्रसेनजित को तप करते देख कर कहा, "ऐसे धर्म से भला क्या लाभ है ? देखो इस राजा ने अपने छोटे से बालक पर राज्य भार देकर आप तप करना आरम्भ किया है । वहाँ इसके मंत्री इसके शत्रुओं से मिलकर इसके पुत्र को राज्य से निकालना चाहते हैं ।" राजा प्रसेनजित यह सुनकर क्रोधित हुए और सोचा कि मैं उन मंत्रियों का अवश्य वध करूँगा। उस समय उन्होंने हाथ अपने सिर पर रखा । बाल सब नोचे हुए थे। इससे उन्हें याद आ गई कि वे तो जैन साधु हैं. उन्हें ऐसा विचार न करना चाहिये। जब उनको यह ज्ञान हुआ तो उनका चित्त शांत हो गया ।

राजा श्रेणिक भगवान महावीर के पास आकर बैठ गये। श्रेणिक ने कहा, "महाराज, राजा प्रसेनजित तो बड़ा भारी तप कर रहे हैं । मरने के बाद उनकी क्या गति होगी ?"

भगवान महावीर—मरने के पीछे ये नर्क में जायँगे ।

यह सुन कर राजा श्रेणिक को आश्चर्य हुआ । इसलिये उसने फिर पूछा, 'क्या महाराज, प्रसेनजित-से तपस्वी भी नर्क में जायँगे ?'

भगवान महावीर—नहीं, नहीं, राजा प्रसेनजित स्वर्ग में जायँगे।

श्रेणिक—यह क्या महाराज ? अभी आपने कहा था कि नर्क में जायँगे और अब आप कहते हैं कि स्वर्ग में जायँगे। ये दो विरोधी बातें कैसे सत्य हो सकती हैं ?

भगवान महावीर—जिस समय तुमने पहिला प्रश्न किया था। उस समय राजा प्रसेनजित को क्रोध था। इस पाप के कारण मैंने उनका नर्क में जाना कहा था। परन्तु फिर उन्हें ज्ञान

हुआ इसीलिये उनका स्वर्ग जाना कहा। प्रत्येक मनुष्य अपने कर्मों के अनुसार ही स्वर्ग नर्क में जाता है।

भगवान महावीर ने तीस वर्ष तक जैन धर्म का प्रचार करके ७२ वर्ष की आयु में निर्वाण प्राप्त किया। दो दिन पहिले से भगवान महावीर उपदेश दे रहे थे। अमावस्या की रात्रि थी। समवशरण राजाओं तथा अन्य लोगों से भरा हुआ था। भगवान उपदेश कर रहे थे। उपदेश समाप्त कर, भगवान महावीर मन को और वाणी को रोक कर शुक्ल ध्यान में बैठे, और सूक्ष्म शरीर (योगी का अन्तरीय शरीर) से भी ध्यान को ऊपर खींच कर, ज्ञान के अक्षरों का उच्चारण कर (ह्रस्वाक्षर, एक प्रकार का मंत्र) मोक्ष को प्राप्त हुए।

७—मुनिराज भद्रबाहु

जैन धर्म में मुनिराज भद्रबाहु एक प्रसिद्ध आचार्य हो गये हैं। ये राजा पद्मधर के पुरोहित पंडित सोमशर्मा के पुत्र थे। भद्रबाहु बालकपन से ही बड़े साहसी और विचारशील थे। उन दिनों जैन मुनियों के गुरु मुनिराज गोवर्धनाचार्य थे। एक बार मुनिराज गोवर्धनाचार्य भ्रमण करते हुए उस नगर में आ निकले, जिसमें भद्रबाहु के पिता रहते थे। मुनिराज के साथ अन्य जैन साधु भी थे। उस समय भद्रबाहु और लड़कों के साथ खेल रहे थे। साधुओं को अपनी ओर आते देख और लड़के तो भाग गये परन्तु भद्रबाहु

खेलते रहे। मुनिराज ने देखा कि भद्रबाहु का मुख तेज से प्रकाशित हो रहा है। मुनिराज भद्रबाहु को देख कर बड़े प्रसन्न हुए।

मुनिराज—हे भाग्यवान बालक, तुम हम को अपना नाम बताओ।

भद्रबाहु—मुनिराज मेरा नाम भद्रबाहु है। मैं पंडित सोमशर्मा का पुत्र हूँ और इस नगर का रहने वाला हूँ।

मुनिराज—हे तीव्र बुद्धि बालक, हम को अपना घर दिखाओ। हम तुम्हारे पिता से भेंट करेंगे।

भद्रबाहु—आइये महाराज!

भद्रबाहु मुनिराज को अपने घर लिवा ले गये। पंडित सोमशर्मा और उनकी पत्नी मुनिराज के दर्शन करके बड़े प्रसन्न हुए। मुनिराज ने सोमशर्मा से कहा कि "यह बालक बड़ा भाग्यशाली और विद्वान होगा। तुम इसको हमारे साथ भेज दो। हम इसको सब शास्त्र पढ़ावेंगे।" सोमशर्मा और उनकी स्त्री ने प्रसन्न होकर कहा कि "महाराज, यह आपका ही है। हमारे और इसके बड़े भाग्य हैं जो इसको आप जैसे महात्मा गुरु मिले। आप इसको सहर्ष ले जाइये।"

सब शास्त्रों को पढ़कर जब भद्रबाहु लौटे तो उनकी विद्वत्ता की चारों ओर धूम हो गई। राजा पद्मधर भी उनका बड़ा आदर करने लगे। राजसभा के विद्वान भी भद्रबाहु के सामने सिर झुकाते थे। इनका राजा के ऊपर इतना प्रभाव पड़ा कि राजा पद्मधर भी जैन हो गये। इस प्रकार थोड़े से दिन रह कर भद्रबाहु ने माता पिता से तपस्या करने के लिये बन में जाने की आज्ञा माँगी। पहिले तो माता पिता ने बहुत रोका। परन्तु जब वे नहीं माने तो

आशीर्वाद देकर तपस्या करने की आज्ञा दे दी। भद्रबाहु ने जैन मुनि की दीक्षा लेकर अपने सिर के बाल पाँच मुट्ठियों में उखाड़ डाले और बड़ी भारी तपस्या की। जब गोवर्धनाचार्य का शरीरान्त हो गया तो उनके स्थान पर भद्रबाहु ही आचार्य हुए।

एक समय मुनिराज भद्रबाहु जैन मुनियों के संघ के साथ उज्जैन आये और नगर के बाहर एक वन में ठहर गये। वहाँ पर महाराज चन्द्रगुप्त उनसे मिलने को आये।

राजा चन्द्रगुप्त—महाराज, रात्रि को मैंने एक अद्भुत स्वप्न देखा है। आप सब शास्त्रों के पंडित हो। इसलिये उसके अर्थ बताने की शक्ति रखते हो।

मुनिराज—कहो, क्या स्वप्न देखा है?

राजा चन्द्रगुप्त—महाराज, मैंने एक बारह फण का सर्प देखा। उस समय आकाश में चन्द्रमा निकल रहे थे। परन्तु चन्द्रमा में बहुत से छेद मालूम होते थे। पृथ्वी पर बहुत से रत्न पड़े हुए थे। परन्तु उनमें इतनी धूल लगी हुई थी कि उनकी चमक भी छिप गई थी। इतने में दो काले हाथियों के दल लड़ते लड़ते आये और चले गये।

मुनिराज—राजन्, चन्द्रमा के छेद तो यह बताते हैं कि भविष्य में जैन धर्म में भी अनेक सम्प्रदाय हो जायँगे। रत्नों में धूल लगने का अर्थ यह है कि जैन मुनियों में विवाद होगा। काले हाथियों की लड़ाई से पृथ्वी पर पानी नहीं बरसेगा। बारह फण वाले सर्प का अर्थ यह है कि इस देश

में बारह वर्ष तक बड़ा अकाल पड़ेगा। समय बड़ा भयंकर आ रहा है। सब को सचेत होकर धर्म पालन करना चाहिये। हम भी संघ को लेकर दक्षिण को चले जायँगे।

इसके पश्चात् मुनिराज ने राजा को धर्म का उपदेश दिया। राजा पर ऐसा प्रभाव पड़ा कि वे अपने बेटे को राज्य सौंप कर मुनि हो गये। फिर मुनिराज ने संघ के सब साधुओं को बुलाया और कहा—"अब यहाँ पर बारह वर्ष तक अकाल पड़ेगा। हम लोगों के यहाँ रहने से प्रजा को भी कष्ट होगा। और मुनि लोग भी आहार लेने के नियमों का पालन नहीं कर सकेंगे। इसलिये हम सबों को दक्षिण देश चलना चाहिये।" संघ के सब साधु चलने का प्रबन्ध करने लगे। जब ये समाचार नगर के लोगों को मिले तो बहुत से श्रावक (अर्थात् गृहस्थ जैनी) मुनिराज के पास आये और प्रार्थना करने लगे कि महाराज आप कहीं न जाइये। आपके जाने पर कौन हम को धर्म का उपदेश करेगा। और पवित्र जैन धर्म की रक्षा कैसे होगी?

मुनिराज—श्रावको, तुम्हारा प्रेम तो बहुत है। परन्तु हमारे यहाँ रहने से तुम्हारा कष्ट बढ़ जायगा। हमारे साथ बारह हज़ार साधु हैं। इसलिये हम उस देश को चले जायँगे जहाँ अकाल नहीं पड़ेगा।

एक सेठ—महाराज, मेरे पास इतना अन्न भरा हुआ है कि जो सौ वर्ष तक भी बहुत हो। वह सब आपकी सेवा में अर्पण है।

दूसरा सेठ—महाराज, मेरी सम्पूर्ण सम्पत्ति संघ की सेवा के लिये अर्पण है, परन्तु आप कृपा करके कहीं जाइये नहीं।

मुनिराज—श्रावको, तुम इसको अपने भूखे भाइयों को दान कर देना। सत्य समझो बड़ा कठिन अकाल पड़ेगा। जब हम दूसरी जगह जा सकते हैं तो तुम्हारे ऊपर भार क्यों डालें ?

श्रावक लोग—परन्तु महाराज, फिर यहाँ धर्म की रक्षा कौन करेगा ?

मुनिराज—जब हम ही अपना धर्म पालन नहीं कर सकेंगे, तो तुमको क्या धर्म उपदेश करेंगे ? फिर भी यदि इन मुनियों में से कोई रहना चाहे तो उनसे पूछ लो।

लोगों के हठ करने से कुछ मुनि लोग रहने को राज़ी हो गये। और शेष सब आचार्य भद्रबाहु के साथ चल दिये। एक वन में पहुँच कर सब लोग ठहर गये। और मुनिराज भद्रबाहु ने आचार्य पद पर एक दूसरे मुनि को नियत कर दिया। और सब को दक्षिण देश जाने की आज्ञा दी। परन्तु आप वहीं पर रह गये। मुनियों ने बहुत कहा कि आप भी चलिये। परन्तु उन्होंने नहीं माना। और न किसी को अपने पास रहने दिया। फिर भी चन्द्रगुप्त मुनि, जो पहिले राजा चन्द्रगुप्त थे, हठ करके उनके पास रह गये। जब सब मुनि लोग चले गये तब मुनिराज भद्रबाहु ने चन्द्रगुप्त को बुलाया और कहा—"हे चन्द्रगुप्त, हम अकाल के समय अपने आहार के लिये किसी को दुःख नहीं देना चाहते। इसलिये अब हम सल्लेखना व्रत धारण करेंगे। हमें जो कुछ ज्ञान प्राप्त करना था सो कर लिया। अब

उपवास करके शरीर त्याग देंगे। परन्तु तुम को अभी बहुत साधन करना है। इसलिये तुम भोजन की खोज करो।"

चन्द्रगुप्त मुनि—परन्तु महाराज, आप क्यों निराहार रहते हैं ?

मुनिराज—वत्स, यह सल्लेखना व्रत जब ही लिया जाता है कि जब अधिक जीने की आशा न हो, जैसे असाध्य रोग होने पर। अब अकाल पड़ने वाला है। हम ऐसे समय में गृहस्थों को कष्ट नहीं देना चाहते। हमारी आयु भी थोड़ी रह गई है। इसलिये तुम चिन्ता मत करो। इस व्रत से हम भोजन की इच्छा से भी स्वतन्त्र होकर शरीर छोड़ेंगे।

चन्द्रगुप्त को गुरु की आज्ञा माननी पड़ी। जब वह बन में आहार ढूँढने निकले तो एक जगह पेड़ के नीचे भोजन रक्खे हुए थे। एक स्त्री ने उनसे उस भोजन की ओर संकेत करके लेने के लिये कहा परन्तु बिना देने वाले के दिये हुए लेना नियम विरुद्ध जान कर चन्द्रगुप्त चुपचाप लौट आये दूसरे दिन एक जगह भोजन तो रक्खे थे। परन्तु वहाँ पर कोई था नहीं। इसलिये चन्द्रगुप्त फिर लौट गये। तीसरे दिन भोजन था और वहाँ एक स्त्री भी थी। परन्तु जहाँ कोई अकेली स्त्री हो वहाँ भोजन लेना नियम विरुद्ध समझ कर चन्द्रगुप्त फिर खाली हाथ लौट गये। इस प्रका तीन दिन भूखे रहने पर उनको एक नगर मिला। और वहाँ से वेर भिक्षा करने लगे।

स्वामी भद्रबाहु आचार्य ने भूख प्यास को जीतकर योगाभ्यास से समाधि लगा कर शरीर त्याग दिया। स्वामी भद्रबाहु ने एक

प्रसिद्ध कल्पसूत्र नाम का ग्रन्थ लिखा है। यही ग्रन्थ श्वेताम्बर जैनियों का मुख्य धर्म ग्रन्थ है।

जब अकाल के बीतने पर दक्षिण को गये हुए मुनि लोग लौट कर आये तो देखा कि उनके आचरण में और जो लोग पीछे रह गये थे उनके आचरण में भेद पड़ गया है। एक दल तो कपड़े पहिनता था और दूसरा दल नंगा रहता था। जैनियों की एक बड़ी सभा हुई। परन्तु उसमें भी दोनों दल मिल न सके। और श्वेताम्बर व दिगम्बर जैनियों के सम्प्रदाय अलग अलग हो गये। परन्तु मुनिराज भद्रबाहु को दोनों ही सम्प्रदाय के जैन आदर की दृष्टि से देखते हैं।

८—स्वामी समन्तभद्राचार्य

श्री स्वामी समन्तभद्राचार्य जैन धर्म के बड़े प्रसिद्ध आचार्य हुए हैं। ये बड़े विद्वान, योगी और भक्त थे। ये इतने बड़े योगी थे कि इनके लिये कहा जाता है कि अगले युग में ये भी तीर्थंकर होंगे। किसी और जैनाचार्य के सम्बन्ध में यह नहीं कहा जाता। इन्होंने धर्म की बहुत सी पुस्तकें बनाई हैं। उन्होंने जैनधर्म का बहुत प्रचार किया था। कोई कोई जैन विद्वान तो यहाँ तक इनकी प्रशंसा करते हैं कि इनके वचन भगवान महावीर के उपदेश के समान ही कल्याण करने वाले हैं।

जैन कवियों में सब से पहिले इन्हीं महात्मा ने तीर्थंकरों की

स्तुतियाँ बनाई थीं। जिस समय ये प्रेम से स्तुति पढ़ते थे, तो इनको अपने शरीर की भी सुध नहीं रहती थी। एक बार एक श्रावक को इन्होंने स्तुति करने का भेद बड़ी सुन्दरता से बताया था।

श्रावक—महाराज, भगवान जिनदेव तो मुक्त हो गये हैं। फिर आप उनकी स्तुति क्यों करते हैं? उनका अब इस संसार से क्या सम्बन्ध है?

स्वामीजी—मुक्त होने से तो उनका संसार में जन्म लेना छूट गया है। परन्तु उनकी मुक्त आत्मा तो सिद्ध शिला लोक में विराजमान है। फिर उन सर्व शक्तिमान तीर्थंकरों की आत्माओं को अपने भक्तों की सहायता करने में क्या रोक टोक हो सकती है?

श्रावक—धन्य हो महाराज, आज तो आपने बड़ा अद्भुत भेद बताया।

स्वामीजी—इसके अतिरिक्त एक और लाभ भी है।

श्रावक—महाराज, अब और लाभ क्या चाहिये?

स्वामीजी—भाई, चाहिये अथवा न चाहिये परन्तु होता तो है।

श्रावक—महाराज, वह क्या है?

स्वामीजी—देखो। जिसकी तुम स्तुति करते हो, वह चाहे संसार में हो या न हो, चाहे वह तुम्हारी सहायता कर सके या न कर सके, परन्तु स्तुति करने के समय तुम्हारा मन तो प्रेम से भर जाता है।

श्रावक—हाँ महाराज, यह तो सत्य है।

स्वामीजी—इस प्रेम से मन शुद्ध होता है। तुमने देखा होगा कि जब प्रेम से मन भर जाता है, तो शरीर की भी सुध नहीं रहती। फिर भला पाप के विचार कहाँ रह सकते हैं ? प्रेम से मन कैसा शान्त और सुखी हो जाता है। इस प्रकार स्तुति करने से पाप दूर होते हैं और मन शुद्ध होता है। इसके अतिरिक्त एक लाभ और भी है।

श्रावक—उसको भी कहिये।

स्वामीजी—जिसका मन प्रेम से भरा होता है, वह दूसरे लोगों से भी द्वेष नहीं करता। इसलिये संसार के लोग भी उसको दुःख नहीं पहुँचाते। और उसका आदर करते हैं। इस प्रकार यह स्तुति लोक परलोक दोनों में सुख देती है।

श्रावक—महाराज, आपके उत्तम उपदेश से तो मैं कृतार्थ हुआ।

स्वामीजी—और फिर उस पर भी तमाशा यह है कि स्तुति करने के लिये किसी दूसरे से पूछना नहीं पड़ता। न कोई दूसरा रोक सकता है। न इसमें कुछ खर्च होता है और न शरीर को कष्ट। फिर भला बताओ ऐसी स्तुति का सहारा लेकर कौन अपना कल्याण नहीं करेगा ?

श्रावक—आहा, कैसी अद्भुत बात कही है। (श्रावक की आँखों में प्रेम के आँसू भर गये)।

महात्मा समन्तभद्राचार्य बड़े मीठे बोलने वाले थे। वे क्रोध कभी नहीं करते थे। जब वे दूसरे धर्म वालों से वाद-विवाद करते थे तो ऐसे प्रेम से बातें करते थे कि दूसरे पक्ष के पंडित भी मुग्ध

हो जाते थे, और व्यर्थ की हठ करना छोड़ देते थे। इसका परिणाम यह होता था कि उनको चुप हो जाना पड़ता था। स्वामी समन्तभद्राचार्य मद्रास प्रान्त में रांची नगर के रहने वाले थे। परन्तु उन्होंने जैन धर्म का प्रचार पटना, पंजाब, सिंध, उज्जैन आदि दूर दूर स्थानों में भी किया था।

स्वामी समन्तभद्राचार्य अहिंसा, सत्य, अस्तेय (अर्थात चोरी न करना) ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह (अर्थात् किसी वस्तु को जमा न करना) का पूरा पूरा पालन करते थे। वे रात्रि को चलते भी नहीं थे। दिन में भी जब चलते थे तो निगाह को नीचे की ओर रखते थे। इधर उधर घुमाते नहीं थे। रात को जिस करवट से सो जाते, बस उसी से सोते रहते थे। रात भर करवट इसलिये नहीं बदलते थे कि जिसमें अनजान से कोई जीव दब कर न मर जाय। उन्हें कोई मारता, तो न तो वे उससे कुछ कहते थे और न मन में क्रोध करते थे।

भोजन करने के सम्बन्ध में उनका नियम था कि वे किसी का निमन्त्रण स्वीकार नहीं करते थे। यदि कोई उन्हीं के लिये भोजन बनाता, तो भी नहीं लेते थे। साधारण रोज़ के समान जो भोजन बनाता था, यदि उसी में से कुछ बच रहता था, तो उसको ले लेते थे। परन्तु दूसरे के हिस्से को नहीं लेते थे। इस कठिन नियम के कारण उनको कभी कभी भूखा भी रह जाना पड़ता था।

एक बार उनको भस्मक रोग हो गया। इस रोग में भूख इतनी लगती है कि जब तक बहुत सा खाना न खाया जाय, भूख

शान्त नहीं होती। और यदि भोजन खाने को पूरा न मिले तो शरीर का मांस भी पचने लगता है। और मनुष्य दुर्बल होते होते मर जाता है। जब वह रोग हुआ, तो ये बड़े कष्ट में पड़े। इनका रोज़ का भोजन बहुत थोड़ा था। किसी से भोजन बनाने के लिये कहते भी नहीं थे। और न किसी का निमन्त्रण स्वीकार करते थे। फिर बहुत सा भोजन कहाँ से मिलता ! इनको सदैव तेज़ भूख लगी रहती थी। जो खाना खाते थे वह मालूम भी न होता था कि किधर गया। थोड़े दिनों में ये इतने निर्बल हो गये कि इनकी दैनिक क्रिया और भजन में भी बाधा पड़ने लगी। तब इन्होंने विचार किया कि सल्लेखना-व्रत धारण करके शरीर को त्याग दें। जब यह विचार इनके शिष्यों को मालूम हुआ, तो उनको चिन्ता हुई। और उन्होंने इनको इस व्रत से रोकना चाहा।

एक शिष्य—महाराज, आप जैन धर्म की इतनी सेवा करते हैं कि आपके परिश्रम से धर्म का अति शीघ्रता से प्रचार हो रहा है। इससे बहुत से भूले हुए मनुष्य सच्चे धर्म को पाकर अपना कल्याण करते हैं। यदि आप अपने जीवन को नष्ट कर देंगे, तो फिर आपके समान उनका कल्याण कौन करेगा ?

स्वामीजी—भाई, जिस धर्म का मैं उपदेश करता हूँ, उसके विरुद्ध आप ही आचरण करूँ यह कैसे हो सकता है ?

शिष्य—महाराज, आप अपने स्वार्थ के लिए कुछ न कीजिये। परन्तु यदि आप दूसरों के हित के लिये कुछ दिन मुनि के व्रत

को छोड़ दें और पूरा पूरा भोजन करने लगें, तो रोग दूर होने पर फिर दुवारा मुनि-धर्म की दीक्षा ले सकते हैं।

स्वामीजी—लोगों का कल्याण उनके कर्मों के प्रभाव से होता है। मैं न रहूँगा तो मेरे पीछे कोई दूसरा उपदेश करेगा। फिर मैं धर्म के मार्ग को छोड़ कर पाप का संचय कैसे करूँ?

शिष्य—प्रभो, यदि आप कुछ दिन रोग की शान्ति के लिये बाहरी शरीर के धर्म को न भी पालन करेंगे, तो भी आपका मन वैसा ही शुद्ध और निश्चल रहेगा। इसलिये पाप तो कहीं भी न होगा।

स्वामीजी—मन का क्या भरोसा है? यह तब तक ही वश में रहता है जब तक इसकी लगाम कस कर पकड़ी रहे।

शिष्य—भगवन्, यदि यह मान भी लिया जाय कि आपका हित सल्लेखना धर्म पालन करने में ही है, तो भी आप अपने स्वार्थ के लिये संसार का हित करना क्यों छोड़ते हैं?

स्वामीजी—प्रियवर, धर्म का पालन स्वार्थ या परार्थ किसी भी विचार से नहीं करना चाहिये। उसे धर्म समझ कर ही करना चाहिये। जो मनुष्य ऐसा आदर्श लोगों के सामने रखते हैं, वे सच्चा परोपकार भी करते हैं।

शिष्य—अच्छा महाराज, व्रत ग्रहण करने से पहिले अपने गुरुजी की आज्ञा तो ले लीजिये। वे अभी जीवित हैं। इसलिये जैसी वे आज्ञा करें वैसा कीजिये।

स्वामीजी—हाँ, यह बात ठीक है।

स्वामीजी अपने गुरुजी के पास गये और उनसे सब हाल कहा। गुरुजी थोड़ी देर ध्यान करके बोले कि "तुम जैन धर्म का अभी बहुत प्रचार करोगे। तुम्हारी आयु अभी बहुत है। तुम अभी मर नहीं सकते। इसलिए सल्लेखना व्रत करना अभी उचित नहीं है। मैं आज्ञा देता हूँ कि तुम इस रोग को शान्त करने के लिए कुछ दिन के लिये मुनि व्रत को छोड़ दो और जिस प्रकार से भोजन का प्रबन्ध हो सके वैसे ही वेष को धारण कर लो। रोग शान्त होने पर फिर मुनि-धर्म की दीक्षा ले लेना।"

स्वामीजी—परन्तु महाराज, वेष छोड़ देने से लोग क्या कहेंगे और दूसरे मुनियों को भी छोटी-छोटी बातों पर वेष छोड़ने का बहाना मिल जायगा।

गुरुजी—वत्स, यह भी तुम्हारा अहंकार है, कि जिससे तुम इस वेष के छोड़ने से डरते हो। जब तुम इस विशेष कारण से शान्त भाव से वेष छोड़ दोगे तो तुम्हारे मन की यह ग्लानि भी निकल जायगी। यदि तुम अपने स्वार्थ के लिए वेष छोड़ते तो बुरा उदाहरण पैदा हो जाता। तुम ऐसा नहीं करते। तुम तो सल्लेखना व्रत धारण करने के लिए तैयार ही हो। अब तो लोक-हित के लिए मैं तुमको आज्ञा देता हूँ। इसलिए मेरी आज्ञा पालन करने से दूसरे साधुओं को बहाना नहीं मिलेगा।

महात्मा समन्तभद्राचार्य को गुरु की आज्ञा माननी पड़ी। उन्होंने यह निश्चय किया कि भोजन का प्रबन्ध ऐसा करना चाहिये कि जिससे किसी को कष्ट न हो। और उनके लिये ही

पृथक भोजन न बनाना पड़े। इसलिये उन्होंने मुनि वेष को छोड़ कर दूसरे देश में जाने का निश्चय किया। वे कांची नगर में पहुँचे। वहाँ के राजा शिवकोटि अपने नगर के शिवजी के मन्दिर में शिवजी का पूजन कर रहे थे। स्वामी समन्तभद्राचार्य ने वहाँ जाकर राजा को आशीर्वाद दिया। राजा इनको देखकर खुश हो गया और बड़ी भक्ति के साथ प्रणाम किया। उस मन्दिर में राजा की ओर से कई मन रोज़ की खाने की चीज़ों का भोग लगाया जाता था। स्वामीजी ने राजा से कहा कि 'यदि तुम कहो, तो हम इस भोग को सच्चे शिव को खिला सकते हैं।" राजा ने समझा कि महात्मा अपने योग बल से शिवजी को प्रकट करके उनको भोग खिलावेंगे। परन्तु स्वामी समन्तभद्राचार्य तो पवित्र आत्मा को ही शिव मानते थे।

राजा ने बड़े हर्ष से यह बात मान ली। स्वामीजी के मुख पर ऐसा तेज था कि उनकी ओर आँख ठहरती भी नहीं थी। इससे राजा को उन पर बड़ी श्रद्धा हो गई। जब भोग बनकर आ गया तो स्वामीजी ने सबको मन्दिर के बाहर जाने की आज्ञा दी। और किवाड़ बन्द करके सारे भोग को आपही खा गये। राजा को बड़ा आश्चर्य हुआ। दूसरे दिन उसने भगवान शिव के लिये बड़ी भक्ति से और भी अच्छे-अच्छे पदार्थ बनवाकर भेजे। स्वामीजी उनको भी खा गये। इस प्रकार बहुत-सा अच्छा अच्छा भोजन मिलने से उनका रोग घटने लगा। अब वे भोजन इतना नहीं कर सकते थे भोग की सामग्री बचने लगी।

जब उनका रोग शान्त हो गया, तो स्वामीजी उस भोग में से उतना ही खा सकते थे जितनी उनकी साधारण भूख थी। शेष सब भोग बचा रह जाता था। अब राजा ने समझा कि शिवजी खाने नहीं आते थे, वरन् स्वामीजी ही उस भोग को कुछ न कुछ कर देते थे। परन्तु इतना भोग वह स्वयं खा जाते थे, यह भी उसकी समझ में न आया। इसलिये उसने दूसरे दिन मन्दिर को सिपाहियों से घेर लिया और बीच में ही किवाड़ खोलने के लिये आज्ञा दी। स्वामीजी पहिले से ही यह जान गये थे कि अब उन का मन्दिर से जाने का समय आ गया है। इसलिये उस रात्रि को उन्होंने भगवान तीर्थंकरों की एक बड़ी स्तुति बनाई थी। और उस समय वे उसी स्तुति को बड़े प्रेम से गा रहे थे। जिस समय किवाड़ खोले गए, उस समय स्वामीजी आठवें तीर्थंकर भगवान चन्द्रप्रभ की स्तुति गाने में तन्मय हो रहे थे। किवाड़ खुलने पर राजा ने देखा कि शिवजी की मूर्ति के स्थान पर भगवान चन्द्रप्रभ दर्शन दे रहे हैं। राजा को बड़ा आश्चर्य हुआ और वह स्वामीजी के पैरों पर गिर पड़ा। स्वामीजी ने स्तुति समाप्त करके राजा से सारा हाल कह दिया। राजा पर ऐसा प्रभाव पड़ा कि उसने जैन धर्म की दीक्षा ले ली। यह राजा स्वामी समन्तभद्राचार्य का मुख्य शिष्य शिवकोटि आचार्य के नाम से प्रसिद्ध हुआ।

७—बुद्ध धर्म

१—भगवान गौतम बुद्ध

लगभग ढाई हज़ार वर्ष पहिले जहाँ गोरखपुर जिला है, उसी प्रान्त में एक नगर कपिलवस्तु था। वहाँ के राजा शुद्धोदन के पुत्र राजकुमार सिद्धार्थ ही पीछे से गौतम बुद्ध के नाम से प्रसिद्ध हुए। उन्होंने ही बुद्ध धर्म को चलाया था। राजकुमार सिद्धार्थ की माता का नाम मायादेवी था। इनकी माता इनके जन्म के समय ही मर गई थी। इनका पालन पोषण इनकी विमाता प्रजापति गौतमी ने किया था। इसीलिये ये गौतम बुद्ध कहलाते थे।

इनके जन्म के समय ही ज्योतिषियों ने कहा था कि इस बालक में चक्रवर्ती राजा के बत्तीस विशेष और ८० साधारण लक्षण हैं, परन्तु फिर भी यह राज्य छोड़ कर योगी हो जायगा। इनके माता पिता सदैव इस चिन्ता में रहते थे कि राजकुमार सिद्धार्थ के सामने कोई दुःखदाई बात न आने पावे और उनका मन दुनिया से फिर न जाय। सारे राज्य में यह आज्ञा हो गई कि जब राजकुमार बाहर सैर करने को जायँ तो उनके सामने कोई दुःखदाई दृश्य न आवे। राजकुमार के रहने के लिये जाड़े, बसन्त व गर्मी

के लिये अलग अलग महल बनाये गये थे। सब प्रकार के सुख की सामग्री उनमें रखी गई थी। फिर भी राजकुमार का मन उनमें न लगता था। वे सदैव विचार में मग्न रहा करते थे।

राजकुमार सिद्धार्थ बड़े कोमल हृदय थे। एक बार वे बाग़ में टहल रहे थे। ऊपर से हंस उड़ते हुए जा रहे थे। एकाएक उनमें से एक हंस गिर पड़ा। राजकुमार दौड़कर उसके पास गये। देखा कि उसके एक तीर लगा है। उन्होंने उस तीर को निकाला और सेवक से औपधि मँगा कर उसके घाव पर लगाई। वह हंस मरने से बच गया। इतने में उनके चचेरे भाई देवदत्त वहाँ आये।

देवचत्त—सिद्धार्थ, यह हंस मेरा है, मुझे दो।

सिद्धार्थ—भाई, यह तुम्हारा कैसे हुआ?

देवदत्त—मैंने ही इसे तीर से मार कर गिराया है।

सिद्धार्थ—भाई, तुमने तो हंस को मारा था। मरा हुआ हंस तुम्हारा होता। मैंने इसे सेवा करके जिलाया है। इसलिये यह जीवित हंस मेरा है। तुम्हारा नहीं है।

देवदत्त—वाह! वाह, यह भी एकही रही! हंस तो वही है। वह गिरता ही नहीं, तो आपको कहाँ से मिलता?

अन्त में झगड़ा बड़े बूढ़ों के सामने गया। सब ने यही निश्चय किया कि जीवित हंस जिलाने वाले का ही है।

एक दिन सिद्धार्थ सैर करने के लिये निकले। सामने से एक बूढ़ा लकड़ी टेकता टेकता गिरता पड़ता आया। सिद्धार्थ ने रथ हाँकने वाले सारथी से पूछा

सिद्धार्थ—सारथी, इस मनुष्य की ऐसी दशा क्यों है ? क्या इसके वंश में कोई दोष है । अथवा सबही मनुष्यों की ऐसी दशा होती है ?

सारथी—राजकुमार, इस मनुष्य का बुढ़ापा आ गया। यह कष्ट बड़ी आयु होने पर सब ही मनुष्यों को भोगना पड़ता है।

सिद्धार्थ—सारथी, ऐसी सैर करने से मुझे क्या लाभ कि जिसके अन्त में ऐसा दुःख भोगना पड़े ? हम सैर करने न जायँगे। घर लौट चलो।

दूसरे दिन वो नगर के दूसरी ओर सैर करने गये वहाँ रास्ते में एक रोगी मिला। उसके सम्बंध में भी राजकुमार सिद्धार्थ ने ऐसे ही प्रश्न किये। जब उत्तर मिला की सब ही मनुष्यों को रोग हो जाता है, तो राजकुमार फिर बड़े दुःखी हुए, और सैर करने न जाकर घर लौट आये। तीसरे दिन सामने से एक मृतक शरीर की अर्थी आई। साथ में उसके सम्बन्धी रोते पीटते आये। राजकुमार ने फिर पूछा कि यह क्या बात है। सारथी ने उत्तर दिया कि "महाराज, यह मनुष्य मर गया है। सब ही मनुष्यों को एक न एक दिन मरना है।' राजकुमार का मन फिर दुःखी हुआ, और वे घर को लौट आये। चौथे दिन राजकुमार नगर के चौथे फाटक से सैर करने को निकले। सामने से एक तपस्वी आया। उसके मुख पर चमक थी और संतोष का आनन्द झलक रहा था। राजकुमार बोले—सारथी, वह मनुष्य इतना सुखी क्यों है ! इसको बुढ़ापे, रोग और मृत्यु की चिन्ता क्यों नहीं है !

सारथी—महाराज, यह तपस्वी है। इसने दुनिया के सुखों की इच्छा छोड़ दी है। इसलिये सन्तोष के सुख से प्रसन्न है।

सिद्धार्थ—सारथी, जब मनुष्य सुखों को छोड़ कर भी ऐसा आनन्द पा सकता है तो फिर सैर करने जाने से क्या लाभ है चलो, घर लौट चलो।

अब सिद्धार्थ और भी विचारों में डूबे रहने लगे। वे बुढ़ापे, रोग और मृत्यु से बचने के उपाय सोचते थे। उनका मन संसार के सुखों में न लगता था। उनकी दशा देख कर माता पिता को और भी चिन्ता होने लगी।

घर वालों ने सलाह की कि राजकुमार का विवाह कर देना चाहिये। फिर ये कहीं न जायँगे। जब सिद्धार्थ ने यह बात सुनी तो उन्होंने पिताजी से कहा—

सिद्धार्थ—पिताजी, आप मुझे महल में ही बाँधने का प्रयत्न करते हैं, तो ऐसी कृपा कीजिये कि मुझे कभी बुढ़ापा न आवे, न कभी रोग हो और न कभी मरूँ। यदि आप ऐसा कर देंगे तो मैं सदैव महल में ही रहूँगा।

राजा शुद्धोदन—भला, यह किसके वश में है। संसार में कोई मृत्यु से नहीं बच सकता है। बुढ़ापे और रोग को कौन रोक सकता है!

सिद्धार्थ—तो पिताजी, इतना ही कीजिये कि मैं आवागमन से छूट जाऊँ।

राजा शुद्धोदन—बेटा, मैं यह कैसे करूँ? यह तो अनेक

साधन करने से होता है ।

सिद्धार्थ—पिताजी, मुझे ही आवागमन से छूटने की राह ढूँढ़ने दीजिये ।

राजा—बेटा, यह तुम राज्य करके भी तो कर सकते हो । देखो, राजा जनक, भगवान रामचन्द्र व भगवान कृष्णचन्द्र ने राज्य नहीं छोड़ा था । बेटा, हमारा कहना मान कर विवाह कर लो कि जिससे हमारा वंश चले और राज्य का प्रबन्ध बना रहे ।

जब पिता व माता ने बहुत हठ की तो सिद्धार्थ ने शुभ गुणों की एक सूची बना कर दी और कहा कि यदि किसी कन्या में ये सब गुण होंगे तो मैं उससे विवाह कर लूँगा ।

भाग्यवश ऐसी कन्या मिल गई । उसका नाम यशोधरा था । यशोधरा देखने में ही सुन्दर नहीं थी वरन् विचारों में भी कन्या बुद्धिमान और ऊँचे विचारों की थी ।

विवाह हो जाने पर भी सिद्धार्थ पहिले के समान ही विचारों में मग्न रहते थे । कभी कभी सोते सोते चौंक पड़ते थे । यशोधरा ने जब चौंक पड़ने का कारण पूछा तो उन्होंने अपने मन की बात बता दी । उनके घर छोड़ने की इच्छा को सुन कर यशोधरा को कुछ दुःख भी हुआ, परन्तु वह आप भी ऊँचे विचारों की थी इसलिये चुप हो गई । माता पिता को जब ये समाचार मिले, तो उन्होंने महल पर पहरा बिठा दिया कि जिससे राजकुमार निकल न जाय ।

कुछ समय पीछे सिद्धार्थ के पुत्र राहुल का जन्म हुआ ।

सिद्धार्थ ने सोचा कि संसार का बंधन बढ़ता ही जा रहा है। इसलिये अब इसको एक साथ तोड़ देना चाहिये। बस एक रात्रि को घर छोड़ कर चल दिये। रात ही रात में बहुत दूर पहुँच गये। एक व्याध (शिकारी) से अपने कपड़े बदल लिये। फिर इन्होंने राजगृह, काशी आदि में अनेक विद्वान पंडितों से शास्त्र पढ़े परन्तु इनके मन को संतोष न हुआ। उन दिनों यज्ञ करने में जानवरों की बलि दी जाती थी। इससे इनका मन और भी दुःखी हुआ और उस बलि की शिक्षा देने वाले शास्त्रों से श्रद्धा हट गई।

अन्त में इन्होंने वन में जाकर तपस्या करने की ठानी। छः वर्ष तक इन्होंने बड़ी कठिन तपस्या की। भोजन की मात्रा इतनी कम कर दी कि दिन भर एक चावल भर भोजन करते थे। इससे शरीर बहुत निर्बल हो गया। एक दिन ये नदी में स्नान करने गये। स्नान तो कर लिया परन्तु नदी से बाहर नहीं निकल सके। किसी प्रकार एक पेड़ की डाल पकड़ कर नदी से निकले परन्तु कुटी तक पहुँचने से पहिले ही रास्ते में बेहोश होकर गिर पड़े।

जिस समय ये बेहोश थे, उस समय एक बड़ी अद्भुत घटना हो गई। बेहोशी में उनको बड़े भारी प्रकाश में देवताओं के राजा इन्द्र का स्वरूप दिखाई दिया। इन्द्र के हाथ में एक सितारा था। इन्द्र ने एक तार बजाया तो उससे बड़ा कठोर शब्द निकला। फिर दूसरी ओर का तार बजाया, तो उससे इतना धीमा स्वर निकला कि सुनाई भी न पड़ा। तब इन्द्र ने बीच का तार बजाया; उससे बड़ा मीठा स्वर निकला। बस सिद्धार्थ की मूर्च्छा दूर हो गई।

उनको झट ज्ञान हो गया। उन्होंने समझा कि न तो संसार के सुखों में लिप्त होने से ज्ञान होता है और न शरीर को निर्बल करने से ज्ञान होता है, वरन् बीच के रास्ते, नियन्त्रित जीवन पर चलने से ज्ञान प्राप्त होगा।

यह निश्चय करके सिद्धार्थ एक पेड़ के नीचे आसन जमा कर बैठ गये और ध्यान करने लगे। पास के गाँव की एक स्त्री सुजाता नामक उस समय वन में वनदेव को पूजने आई और वनदेव के भोग के लिए खीर बना कर लाई। उसकी सखी ने पेड़ के नीचे बैठे हुए सिद्धार्थ की सुन्दर मूर्ति को देखा। उसने समझा कि यह वनदेव ही मनुष्य का शरीर धारण किये बैठे हैं।

सखी——अरी सुजाता, देख तो तेरे भाग्य से वनदेव मनुष्य का रूप धरे बैठे हैं।

सुजाता——(सिद्धार्थ को देखकर) सखी कहती तो तू सत्य है। कैसी शान्त मूर्ति है ! कैसी सुन्दर है। ऐसा रूप क्या भला मनुष्य का हो सकता है। सखी हम धन्य हुए। चलो, अब पूजा करें।

सुजाता सिद्धार्थ के पास आकर, खीर की थाली उनके सामने रखकर, उनको वनदेव कहकर स्तुति करने लगी। उसके शब्द सुनकर सिद्धार्थ का ध्यान टूट गया। उन्होंने आँखें खोल कर देखा और बोले——

सिद्धार्थ——मैं वनदेव तो नहीं हूँ। तुम्हारी तरह ही मनुष्य हूँ। फिर भी तुमने जो खीर का भोजन दान दिया है, इसको मैं

स्वीकार करता हूँ। बहुत दिनों से मैंने भोजन नहीं किया। इसको खाने से मेरे शरीर में बल आवेगा। और मैं सत्य धर्म का मार्ग ढूँढ़ निकालने के योग्य हो जाऊँगा। तुम्हारी मनोकामना भी पूर्ण हो।

उस दिन से सिद्धार्थ फिर भोजन करने लगे। उनके कपड़े अभी तक वे ही थे जो कि उन्होंने घर से निकलने के पीछे व्याध से बदले थे। अब उनको उन कपड़ों के बदलने की आवश्यकता हुई। उन्हीं दिनों सुजाता की दासी की मृत्यु हो गई। सिद्धार्थ उसका कफन ले आये और उसी का कपड़ा बनाकर पहिन लिया। नया कपड़ा लेने से उन्हें मृतक शरीर के कपड़े का लेना अच्छा समझ पड़ा, क्योंकि इससे किसी के ऊपर भार नहीं पड़ा।

जब सिद्धार्थ का शरीर स्वस्थ हो गया, तब एक दिन वे दृढ़ निश्चय करके एक पेड़ के नीचे बैठे और यह सोचा कि चाहे मेरे शरीर की चमड़ी और मांस भले ही गल जायँ, शरीर चाहे सूख जाय परन्तु मैं विना पूर्ण ज्ञान प्राप्त किये इस आसन से नहीं उठूँगा। सिद्धार्थ शीघ्र ही ध्यान में मग्न हो गये। कहते हैं कि उस समय उनको बड़े-बड़े भयानक दृश्य दिखाई पड़े। आँधी चली। बड़े भयानक राक्षस आदि दिखाई पड़े। आग की वर्षा हुई। यदि किसी मनुष्य को स्वप्न में भी ऐसे दृश्य दिखाई पड़ते हैं, तो उसकी नींद टूट जाती है। परन्तु सिद्धार्थ का ध्यान नहीं टूटा। फिर उनको बड़ी-बड़ी सुन्दर वस्तुएँ दिखाई पड़ीं परन्तु उनका मन उनमें भी नहीं लुभाया। तब रात्रि के अन्तिम भाग में उनको निश्चल समाधि हुई और प्रातःकाल तक पूर्ण ज्ञान को प्राप्त कर

बुद्ध पदवी को प्राप्त हुए। अब इनका नाम गौतम बुद्ध पड़ गया।

बुद्धत्व प्राप्त करने के पीछे भगवान ने सात सप्ताह तक भिन्न भिन्न पेड़ों के नीचे समाधि लगाई और दुनियाँ के प्रचलित धर्मों पर विचार किया। उन्होंने देखा कि लोग पाखंड में भूले हुए पड़े हैं। जानवरों को बलिदान देकर अपने सुख पाने की इच्छा करते हैं, और यह भूल जाते हैं कि जिस कार्य से संसार में दुःख पैदा हो उससे किसी को सुख कैसे हो सकता है? सच्चा धर्म तो किसी को दुःख न पहुँचाना, सत्य बोलना, सत्कार्यों को करना और शान्त-चित्त रहना है। बस इस दृढ़ विचार को करके उन्होंने निश्चय किया कि संसार को इस धर्म का सन्देश सुनाया जाय, जिससे दुःख व पाखंड दूर हो और ज्ञान, धर्म व सुख मिले। जब बुद्ध ने उपदेश देना आरम्भ किया तो बड़े-बड़े राजा इनके शिष्य हो गये। और थोड़े ही समय में बुद्ध धर्म का प्रचार खूब हो गया। उनके बुद्ध होने के समाचार कपिलवस्तु पहुँचे तो उनके पिता ने उनको कपिलवस्तु बुलाया। बुद्ध देव शिष्यों सहित वहाँ गये और नगर के समीप एक वन में ठहर गये। बुद्ध देव अपने परिवार के लोगों से बड़े प्रेम से मिले। उनके वंश के अनेक लोगों ने बुद्ध धर्म ग्रहण किय। उनकी विमाता प्रजापती गौतमी और उनकी स्त्री यशोधरा ने भी बुद्ध-धर्म स्वीकार किया। जब बुद्ध देव महल से बन को लौटने लगे तो यशोधरा ने छोटे से बालक राहुल को सिखाया कि जाकर अपने पिता से सम्पत्ति माँग। छोटा-सा बालक बुद्ध देव के पीछे दौड़ा।

राहुल—पिता, हम को धन दो, हम को धन दो ।

बुद्धदेव—बेटे, मेरे पास धन दौलत तो कुछ नहीं है । केवल धर्म है । उसे तू अवश्य ले ले । सारीपुत्र, राहुल को धर्म का उपदेश दे कर संघ में उसका प्रवेश कर लो ।

दूसरे दिन बुद्धदेव नगर में भीख माँगने को गये । जब उनके पिता को यह समाचार मिला तो वे भागे हुए उनके पास गये ।

राजा शुद्धोदन—गौतम, तुम यह क्या करते हो ? हमारे वंश में अभी तक किसी ने भिक्षा नहीं माँगी ; तुम क्षत्रिय हो कर भिक्षा माँगते हो । तुम्हें किस बात की कमी है, जिससे कि भिक्षा माँगते हो ।

बुद्धदेव—राजन, तुम्हारे वंश का सिद्धार्थ अब नहीं रहा । मेरा वंश तो अब बुद्धों का वंश है । मुझसे पहिले बहुत से बुद्ध हो गये हैं और सबों ने भिक्षा माँग कर ही खाया है । इसलिये मैं भी अपने वंश के अनुसार ही कार्य करता हूँ ।

राजा शुद्धोदन—परन्तु अपने ही नगर में भिक्षा क्यों माँगते हो ? लोग क्या कहेंगे ? क्या हम में तुम को भोजन खिलाने की भी शक्ति नहीं है ?

बुद्धदेव—राजन, अब यह अभिमान छूट गया कि यह मेरा नगर है । यदि केवल मैं आपके ही यहाँ खाऊँ, तो अपने पद से भ्रष्ट हो जाऊँ । अब मुझे किसी के यहाँ से भी भिक्षा माँगने में लज्जा नहीं करनी चाहिये ।

इस प्रकार कुछ दिन वहाँ रह कर बुद्धदेव फिर शिष्यों सहित

राजगृह लौट आये। उस समय श्रावस्ती नगर में एक बड़ा धनी व्यापारी सुदत्त नाम का रहता था। वह निर्धन और दुखी मनुष्यों की सहायता में बहुत धन खर्च किया करता था। इसलिये उसको लोग अनाथपिंडक कहा करते थे। एक दिन वह भगवान बुद्ध के दर्शन करने आया।

सुदत्त—महाराज, आप अपने शिष्यों को भिक्षु बना देते हैं। मैं भी बुद्ध धर्म ग्रहण करना चाहता हूँ। तो क्या मुझे भिक्षु बनना आवश्यक होगा?

बुद्धदेव—जिन लोगों को धन का नशा चढ़ा रहता है, उन्हीं के लिये भिक्षु बनना आवश्यक है, जिससे कि धन का नशा उतर जाय। अथवा जो धर्म के प्रचार का काम करना चाहता है, उसको भिक्षु बनना चाहिये। परन्तु जिसका धन अब भी उपकार में खर्च होता है, उसको भिक्षु बनना आवश्यक नहीं है।

भगवान बुद्धदेव उपदेश देने के समय कभी कभी बड़ी चुभती हुई बातें कह देते थे। एक बार बुद्धदेव एक जंगल में हो कर जा रहे थे उस जंगल में एक डाकू आंगुलीमाला रहता था। उसका नाम आंगुलीमाला इसलिये पड़ गया था कि वह लोगों को मार कर उनकी अंगुली काट कर उनकी माला बना कर पहिना करता था। उस डाकू ने इनको दूर से जाते हुए देख लिया।

आंगुलीमाला—खड़ा रह, साधु।

भगवान बुद्ध (खड़े होकर)—भाई, मैं तो ठहर गया। परन्तु तू भी खड़ा हो जा।

आंगुलीमाला——तू तो चलता हुआ भी अपने को ठहरा हुआ कहता है। मैं किस बात में ठहरूँगा। मुझे इसका अर्थ बता।

भगवान बुद्ध——भाई तू आवागमन के चक्कर में घूम रहा है। मेरा मन मेरे वश में है, इसलिये मैं चलता हुआ भी ठहरा हूँ, तेरा मन तेरे वश में नहीं है।

आंगुलीमाला——हे साधु, मैं कैसे ठहरूँगा?

भगवान बुद्ध——अधर्म करना छोड़ कर मन को वश में करने से।

उस डाकू पर ऐसा प्रभाव पड़ा कि वह उसी समय उनका शिष्य हो गया और डाका डालना छोड़ दिया। समय पाकर वह बड़ा धर्मात्मा और योगी हो गया।

भगवान बुद्ध नीच, ऊँच या जाति, कुजाति का भेद नहीं करते थे। एक बार भगवान बुद्ध जब भिक्षा लेने को जा रहे थे तो सामने से सुनील चांडाल सिर पर कूड़े की टोकरी रख कर आया। उसने दूर से ही झटपट टोकरी उतार कर बुद्धदेव को दंडवत प्रणाम किया।

बुद्धदेव——भाई सुनील, तुम को रोज़ कूड़ा ढोने से क्या मिलता है? तुम भिक्षु क्यों नहीं बन जाते?

सुनील——महाराज, मैं और भिक्षु! भला, क्या चांडाल भी भिक्षु हो सकता है?

बुद्धदेव——क्यों नहीं! ज्ञान और धर्म का पालन तो सब के लिये है। ये किसी विशेष मनुष्य की सम्पत्ति नहीं हैं।

सुनील——महाराज, यदि मैं भिक्षु बन जाऊँ तो मैं कृतार्थ हो जाऊँ। पर मेरे ऐसे भाग्य कहाँ हैं!

बुद्धदेव---भिक्षु सुनील, मैं तुमको नमस्कार करता हूँ। चलो, विहार में चलो।

बुद्धदेव के उपदेश से उस चांडाल सुनील ने शीघ्र ही अरहंत पद (पूर्ण ज्ञान, कैवल्य ज्ञान, अथवा जीवन मुक्त पद) प्राप्त कर लिया। बड़े बड़े ब्राह्मण उसको सिर नवाने लगे।

एक बार भगवान बुद्ध शिष्यों सहित आम्रपाली नाम की एक नीच स्त्री के बाग़ में उतरे। जब उसको यह बात मालूम हुई तो वह भगवान के पास गई।

आम्रपाली---भगवान, आज आपके यहाँ आने से मैं पवित्र हो गई। आप कृपा करके शिष्यों सहित मेरे यहाँ भोजन करके मुझे कृतार्थ कीजिये।

बुद्धदेव---आम्रपाली, प्रेम की दी हुई भिक्षा मुझे अच्छी लगती है। इसलिये तुम्हारी प्रार्थना को अस्वीकार कैसे कर सकता हूँ।

आम्रपाली के चले जाने पर उस नगर के क्षत्रिय राजा भी आ गये और दंडवत प्रणाम करके बोले।

राजा---महाराज, शिष्यों सहित खाने के लिये दास के यहाँ पधार कर कृतार्थ कीजिये।

बुद्धदेव---राजन्, अभी हम आम्रपाली का निमन्त्रण स्वीकार कर चुके हैं। इसलिये अब तुम्हारा भोजन कैसे कर सकेंगे।

राजा---महाराज, आप एक नीच स्त्री के यहाँ भोजन करेंगे और हमारे यहाँ नहीं। क्या यह ठीक है?

बुद्धदेव---राजन्, हमारे लिये ऊँच नीच कोई नहीं है। जो प्रेम

से भिक्षा दे, हम उसी की भिक्षा ग्रहण करते हैं।

अन्त में आम्रपाली के यहाँ ही भोजन किया। आम्रपाली ने भी बुद्धधर्म का उपदेश लिया और उसका जीवन पवित्र हो गया।

जिस समय बुद्धदेव ध्यान में बैठते थे, तो उन्हें किसी बात की सुध नहीं रहती थी। एक बार वे ध्यान में बैठे थे, उस समय बड़ी वर्षा हुई। और पास ही थोड़ी दूर पर बिजली गिरी, जिस से दो किसान और बैल मर गये। जब वर्षा बन्द हुई तो गाँव के लोग वहाँ जमा हो गये। परन्तु बुद्धदेव को कुछ भी मालूम नहीं पड़ा। जब वे ध्यान से उठे तो उन मनुष्यों को जमा देख कर उनके पास गये और पूछा।

बुद्धदेव—भाई, क्या बात है? आप लोग यहाँ क्यों जमा हैं?

एक मनुष्य—बिजली गिरी है। क्या तुम सो रहे थे कि बिजली के गिरने का शब्द भी नहीं सुना?

बुद्धदेव—नहीं भाई, सो तो नहीं रहा था। और क्या सोने वाले बिजली के शब्द से जाग न पड़ेंगे?

एक बार एक धनी व्यापारी पुराण नाम का इनका शिष्य हुआ। उसने एक दिन कहा—

पुराण—भगवान, मैं भिक्षु बनकर असभ्य जातियों में धर्म का प्रचार करूँगा, आशीर्वाद दीजिये।

बुद्धदेव—भाई, तुम बड़े बुरे स्वभाव के लोगों में प्रचार करना चाहते हो, वे तुम्हारा उपकार तो मानेंगे नहीं। इसके बदले में तुम्हें गालियाँ देंगे।

पुराण—महाराज, जब वे गालियाँ देंगे, तो मैं समझूँगा कि वे बड़े भलेमानस हैं कि मारा नहीं।

बुद्धदेव—इस भरोसे मत रहना। वे मार भी बैठेंगे।

पुराण—फिर भी उनकी बड़ी कृपा होगी, कि तलवार से नहीं मारेंगे।

बुद्धदेव—और जो तलवार से ही मारा, तो क्या उनका हाथ पकड़ोगे ?

पुराण—महाराज, फिर भी उनकी कृपा समझूँगा कि मेरी जान तो न ली।

बुद्धदेव—और जान ही ले ली तब ?

पुराण—मैं उनको धन्यवाद दूँगा कि उन्होंने मुझे इस संसार से शीघ्र छुटकारा देकर निर्वाण प्राप्त करने का अवसर दिया।

बुद्धदेव—(पुराण को गले से लगा कर) तुम्हारा धैर्य सत्य ही पूर्ण है। मरने पर भी मारने वाले के लिये क्रोध न हो, यही धर्म की पूर्णता है। जाओ और अपने कार्य में सफल हो।

एक बार दो राजाओं में एक पानी के बन्द पर झगड़ा हुआ। दोनों ओर से लड़ने के लिये फ़ौजें तय्यार हो गईं। भगवान बुद्ध ने दोनों को बुलाया और बोले—

बुद्धदेव—आप लोग इसलिये लड़ते हैं कि बन्द का पानी मिले जिससे आपकी प्रजा को लाभ हो, या कोई और बात भी है ?

दोनों राजा—नहीं भगवान्, और कोई बात नहीं है।

बुद्धदेव—पानी का मूल्य अधिक है या मनुष्य के ख़ून का ?

दोनों राजा—भला महाराज, पानी की मनुष्य के खून से क्या बराबरी !

बुद्धदेव—भाई, तो क्यों पानी के लिये मनुष्यों का खून बहाते हो ! आपस में समझौता कर लो, जिससे दोनों की प्रजा को लाभ हो।

उन पर ऐसा प्रभाव पड़ा कि लड़ाई बन्द करके समझौता कर लिया।

एक बार शाक्य लोगों और श्रावस्ती के लोगों में लड़ाई होने की सम्भावना हो गई थी। उस समय राजकुमार सिद्धार्थ ने यही उपदेश दिया था "जाओ लड़ाई के मैदान में जीवनदान दो। किसी के आधीन मत हो। भागो मत और लड़ो भी मत। खून मत बहाओ। मर जाओ परन्तु मारो मत। आपस के द्वेष के घाव को प्रेम से जीवदान देकर भर दो। जाओ मर कर अमर हो जाओ।"

भाग्यवश वह लड़ाई नहीं हुई। और फिर दोनों राज्यों में मेल हो गया।

एक बार भगवान एक वन में बैठे थे। वहाँ कुछ लोग सैर करने आये थे। चोर उनका असबाब उठाकर ले गये। वे लोग उन को ढूँढ़ने लगे। उन्होंने बुद्धदेव को बैठे देखा।

सैर करने वाले—महाराज, आपने किसी को हमारा असबाब ले जाते तो नहीं देखा ?

बुद्धदेव—भाई, तुम अपने असबाब की खोज तो करते हो। परन्तु अपनी खोज नहीं करते। क्या असबाब तुम से भी अधिक मूल्य का है ?

सैर करने वाले—महाराज, हम तो उपस्थित हैं। फिर अपनी क्या खोज करें?

बुद्धदेव—नहीं भाई, तुम अपने आप को भूले हुए हो। मनुष्य दुनिया के झंझटों में ऐसा लगा रहता है कि वह कभी यह नहीं सोचता कि उसकी दशा क्या है? उसका मन धर्म में लीन है या अधर्म में, उसको आगे शरीर कैसा मिलेगा? इसलिये तुम लोग अपनी तलाश करो।

उन लोगों पर ऐसा प्रभाव पड़ा कि असबाब का ढूँढ़ना भूल गये और वहीं बैठ कर बुद्ध धर्म का उपदेश लिया।

भगवान बुद्ध रात्रि को भोजन नहीं करते थे। उन्होंने भिक्षुओं को आज्ञा दी थी कि कोई किसी प्रकार का आभूषण न पहिने। धर्म के भजन भी ऊँचे स्वर से न गावें क्योंकि ऊँचे स्वर से गाने से गाने वाले का मन गाने की मधुरता की ओर लग जाता है। और उसकी समाधि भंग हो जाती है। सुनने वालों का मन भी भगवान की ओर न लग कर उस सुरीले गाने में लग जाता है। एक बार एक तपस्वी भगवान बुद्ध के पास आया।

तपस्वी—गौतम, तुम पाप करने वाले को क्या दण्ड देते हो?

बुद्धदेव—तपस्वी, दण्ड दण्ड कहना बुद्ध का चलन नहीं है। तथागत (बुद्ध, पूर्ण ज्ञान को प्राप्त) तो कर्म कर्म कहता है।

तपस्वी—गौतम, तुम कितने प्रकार के कर्म बताते हो?

बुद्धदेव—तपस्वी, मैं तीन प्रकार के कर्म—मन, वचन, व शरीर के कर्म—बताता हूँ।

तपस्वी—इन तीनों में किस प्रकार के पाप कर्म को तुम सब से बुरा समझते हो ?

बुद्धदेव—तपस्वी, मैं मन के पाप कर्म को सब से बुरा कहता हूँ। यदि मन का पाप न हो, तो वचन, शरीर का पाप होगा ही नहीं। और यदि मन में पाप हो और ऊपर से धर्म-बुद्धि का ढोंग रचा जाय, तो पाखंड है।

एक बार बुद्धदेव पावा नामक गाँव में ठहरे। वहाँ चुंड नामक एक लुहार ने उनको खाने का निमन्त्रण दिया। खाने में उसने एक कन्द बनाई थी जो बहुत ही गरिष्ट थी। भगवान बुद्ध ने जितनी वह कन्द बनी थी सबको अपने सामने ही परोसवा लिया, कि जिससे कोई चेला खाकर बीमार न पड़ जाय। परिणाम यह हुआ कि बुद्धदेव को ऐंठे हो गये, परन्तु वे उसी दशा में कुशी नगर को चल दिये। उन्हें यह भय हुआ कि यदि चुंड को यह मालूम हो जायगा कि वे कन्द खाने से बीमार हो गये हैं, तो उसे दुःख होगा। रास्ते में वे एक बाग़ में ठहरे। वहाँ उन्होंने आनन्द को बुलाया और बोले।

बुद्धदेव—आनन्द, अब हमारे निर्वाण का समय आ गया है। सम्भव है कि चुंड को यह मालूम हो जाय। तुम उसको समझाना कि वह दुखी न हो। उससे कहना कि हम बड़े प्रसन्न हैं क्योंकि उसके खाने से हम को बड़ा लाभ हुआ है। सुजाता की खीर खा कर हमने बुद्धत्व लाभ किया था और अब चुंड की कन्द खाकर निर्वाण लाभ करते हैं।

इसलिये चुंड धन्य है। चलो अब कुशी नगर के समीप ही विश्राम करेंगे।

कुशी नगर के समीप एक शाल के बन में भगवान ठहरे। आनन्द ने दो पेड़ों के बीच में शाखाओं को बाँध कर मचान बना दिया और उस पर भगवान लेट गये। उस समय कुशी नगर का एक संन्यासी सुभद्र नामक आनन्द के पास आया और बोला—

सुभद्र—मैं गौतम बुद्ध के पास जाकर धर्म सम्बन्धी शंका समाधान करना चाहता हूँ।

आनन्द—इस समय उनका शरीर अस्वस्थ है, इसलिये उनको कष्ट न दीजिये।

बुद्धदेव (भीतर से)—आनन्द रोको मत, आने दो। (सुभद्र से) कहो सुभद्र, क्या कहते हो?

सुभद्र—हे गौतम, आज कल तीर्थंकर महावीर, गोशाला, पूर्ण काश्यप बहुत लोगों से उत्तम माने जाते हैं। क्या वे सच्चे धर्म को जान कर उपदेश करते हैं या नहीं करते?

बुद्ध भगवान—सुभद्र, अब बहुत विचार करने का समय नहीं रहा। मैं जिस को सत्य धर्म समझता हूँ उसी का मैंने उपदेश दिया है। दूसरा धर्म मुझे मालूम नहीं। सुभद्र, जिस धर्म में सद्इच्छा, सद्विचार, सत्कर्म, सद्भाषण, और समाधि आदि का उपदेश हो वही धर्म ज्ञान का देने वाला हो सकता है। इसके सिवाय मुझे दूसरा मार्ग मालूम नहीं है।

सुभद्र—महाराज, मुझे भी शरण में ले लीजिये। मैं बुद्ध की, संघ की, और धर्म की शरण हूँ।

बुद्धदेव—सुभद्र, यदि दूसरे धर्म वाला बौद्ध होना चाहे, तो उसकी पहिले चार मास तक परीक्षा होती है।

सुभद्र—महाराज, मैं चार वर्ष तक परीक्षा देने को तय्यार हूँ।

बुद्धदेव—अच्छा आनन्द, इसे संघ में प्रवेश कर लो।

इसके पीछे बुद्धदेव ने सब भिक्षुओं को बुलाया और कहा—

बुद्धदेव—भाई, यदि किसी को कोई शंका हो, तो पूछ लो।

आनन्द—महाराज, आप संघ के लिये क्या व्यवस्था करने की आज्ञा देते हैं?

बुद्धदेव—आनन्द, तुम लोग अब अपने सहारे आप बनो। मैंने जो उपदेश दिया है वही राह दिखाने को दीपक है। तुम लोग अब आप अपने दीपक बनो। और किसी को कुछ पूछना हो तो पूछो। सब भिक्षु प्रेम से रहना। जब तक सब मिल कर बैठोगे और धर्म का पालन करोगे तब तक संघ को हानि नहीं हो सकती।

जब किसी ने कुछ न पूछा तो बुद्ध भगवान ध्यान में मग्न हो गये और उसी ध्यान में शरीर छोड़ कर निर्वाण को प्राप्त हो गये। सनातनी हिन्दू भी भगवान बुद्ध को भगवान का अवतार मानते हैं। उनके चौबीस अवतारों में भगवान बुद्ध तेईसवें अवतार हैं।

२—महात्मा सारीपुत्र

महात्मा सारीपुत्र भगवान गौतम बुद्ध के सब से बड़े शिष्य थे। इनको 'धर्म-सेनापति' कहते थे। कहते हैं कि लाखों वर्ष पूर्व जब अनीमदर्शी नाम के बुद्ध संसार में थे, उस समय सारीपुत्र शारदा नाम के एक ब्राह्मण थे। शारदा बड़े धनी थे, परन्तु उन्होंने अपना सारा धन दान कर दिया था और जंगल में जाकर तप करने लगे थे। वहाँ उनके सहस्रों चेले हो गये। एक बार बुद्धदेव इनके आश्रम में आये। शारदा ने उनका बड़ा आदर किया और उनको उचित आसन बैठने को दिया। जब शारदा के शिष्य आ गये तो वे भी भगवान बुद्ध को देख कर बड़े प्रसन्न हुए। भगवान बुद्ध के पास उनके मुख्य चेले भी बैठे हुए थे। जब भगवान बुद्ध ने उपदेश दिया तो शारदा के चेले तो सब अरहंत पद (जीवनमुक्त) को पा गये और शारदा के मन में यह इच्छा बनी रही कि वे भगवान के मुख्य चेले बन कर उनकी सेवा करें। यह जान कर भगवान बुद्ध ने आशीर्वाद दिया कि जब गौतम नाम के बुद्ध संसार में होंगे, तब तुम उनके मुख्य चेले होगे।

इसलिये भगवान गौतम बुद्ध के समय में मगध देश के नालक नाम के गाँव में इनका जन्म हुआ। इनका नाम उपतिष्य था। परन्तु इनकी माता का नाम सारी था। इसलिये ये सारीपुत्र के नाम से ही विख्यात हुए। ये बड़े लाड़ प्यार से पले थे। ये सब विद्याएँ पढ़ चुके थे परन्तु इनका मन न भरा। ये सच्चे धर्म की खोज में निकल पड़े। एक दिन इन्होंने एक महात्मा को आते

हुए देखा। महात्मा का मुख सुख, शान्ति और सन्तोष से चमक रहा था। सारीपुत्र ने बड़ी भक्ति से उनको एक अच्छे आसन पर बैठाया और बोले—

सारीपुत्र—हे महात्मा, आपने संन्यास किस लिये लिया है, और आपने किस को गुरु किया है कि जिसकी दिव्य शिक्षा से आपको ऐसी दिव्य शान्ति प्राप्त हुई है ?

महात्मा—हे गृहस्थ, मेरा नाम अश्वजित है। भगवान गौतम बुद्ध मेरे गुरु हैं। उन्हीं के उपदेश से मुझे शान्ति मिली है।

सारीपुत्र—महात्मा, आपके दर्शन से मैं कृतार्थ हुआ। मैं भी ऐसे ही गुरु की खोज में हूँ। आप मुझे उनका पता बता दीजिए जिससे मैं भी उनके दर्शन करूँ।

अश्वजित से पता पूछ कर और अपने मित्र कुलित को साथ लेकर सारीपुत्र भगवान बुद्ध के पास गये। बुद्धदेव ने बड़े प्रेम से इन दोनों को उपदेश दिया। उपतिष्य ने ऐसा साधन और भजन किया कि पन्द्रह दिन में ही उन्होंने अरहंत पद प्राप्त कर लिया। भगवान बुद्ध उनके मन की शुद्धता, नम्रता, शान्तभाव और तीव्र बुद्धि से ऐसे प्रसन्न हुए कि उनको अपना मुख्य शिष्य और सब भिक्षुओं (साधुओं) का सरदार नियत कर दिया। उनसे दूसरे दर्जे पर उनके मित्र कुलित को नियत किया और उसका नाम मौग्दल्यायन रक्खा। भगवान बुद्ध सारीपुत्र की अपने मुख से बड़ाई किया करते थे। एक बार भगवान बुद्ध इतने प्रसन्न हुए कि सारीपुत्र की प्रशंसा में "सूतान्त अनुपाद" नाम की एक पुस्तक

ही बना डाली, और उनको दूसरे भिक्षुकों को उपदेश देने की आज्ञा दे दी।

एक बार महात्मा सारीपुत्र भिक्षा लेने को जा रहे थे। पीछे से एक ब्राह्मण ने उनकी पीठ पर ज़ोर से घूँसा मारा। महात्मा सारीपुत्र ने पीछे फिर कर भी न देखा कि क्या हुआ और वैसी ही शान्ति से आगे बढ़ गये। तब तो ब्राह्मण बहुत पछताया और उनके आगे जाकर पैरों पर गिर पड़ा।

ब्राह्मण—महाराज, मुझे क्षमा कर दीजिये।

महात्मा सारीपुत्र—भाई तुमने क्या किया जिसको मैं क्षमा करूँ?

ब्राह्मण—महाराज, मैंने अपनी मूर्खता से आपकी शान्ति की परीक्षा करनी चाही थी, इसलिये पीछे से घूँसा मारा था।

महात्मा सारीपुत्र—प्यारे भाई, इससे मेरा क्या बिगड़ा? तुमको सन्तोष हुआ, और तुम्हारे मन में भी धर्म का भाव उदय हुआ। यह तो अच्छी बात हुई।

ब्राह्मण—महाराज, आपका यह कहना आपका बड़प्पन है। आप मुझे क्षमा कर दीजिये।

महात्मा सारीपुत्र—परन्तु मैंने तो तुम पर कभी क्रोध किया ही नहीं। फिर क्षमा क्या करूँ?

ब्राह्मण—महाराज, मेरे मन में तो सन्तोष जब ही होगा कि जब आप क्षमा कर देंगे।

महात्मा सारीपुत्र—अच्छा यदि तुम्हारा इसी प्रकार सन्तोष होगा, तो मैं कहता हूँ कि मैंने तुमको क्षमा कर दिया।

ब्राह्मण—मैं क्षमा करना जब समझूँगा कि जब आप मेरे घर से ही भिक्षा लें।

महात्मा सारीपुत्र—अच्छा चलो, तुम्हारे ही यहाँ सही।

एक बार एक भिक्षुक ने महात्मा सारीपुत्र की भगवान बुद्ध से शिकायत की।

भिक्षु—महाराज, महात्मा सारीपुत्र को आपने 'धर्म-सेनापति' बना दिया है। उनको ऐसा गर्व हो गया है कि वे भिक्षुओं पर अत्याचार करते हैं। चाहे जिसे मार बैठते हैं। मुझे भी उन्होंने बिना कारण ही मारा है।

भगवान बुद्ध—महात्मा सारीपुत्र किसी को कारण होने पर भी मारें, यह भी समझ में नहीं आता। बिना कारण मारने की तो बात ही क्या है। परन्तु तुम कहते हो तो हम उनको बुलाकर पूछते हैं।

महात्मा सारीपुत्र बुलाये गये।

भगवान बुद्ध—सारीपुत्र, यह भिक्षुक कहता है कि तुमने इसको बिना कारण मारा है। क्या यह बात सत्य है?

महात्मा सारीपुत्र—भगवन्, ये भिक्षु बड़े विद्वान और साधन करने वाले हैं। इनको मारने की भला कौन धृष्टता कर सकता है? इस पर भी मैं तो इनका सेवक हूँ। घर घर से भिक्षा मांग कर खाने वाला सारीपुत्र भला ऐसा कर सकता है? परन्तु यदि अनजान में भी कभी मुझसे इन भिक्षु को कष्ट पहुँचा हो, तो मैं उसके लिये क्षमा माँगता हूँ। हे

श्रेष्ठ भिक्षु, मुझे क्षमा करो।

भिक्षु (महात्मा सारीपुत्र के पैरों में गिर कर)—महात्मा, तुम ही मुझे क्षमा करो। सत्य ही आप निर्दोष हैं। यह मेरी दुष्टता थी जो ईर्ष्या के वश हो कर ऐसा झूठा दोष आप पर लगाया। महात्मा, आप बड़े हैं। मुझे क्षमा करो।

भगवान बुद्ध—सारीपुत्र, इसने कार्य तो दण्ड के योग्य किया था। परन्तु अब इसको क्षमा कर दो।

महात्मा सारीपुत्र—भगवन्, मुझे तो इन पर क्रोध है ही नहीं। मैं इन्हें हृदय से क्षमा करता हूँ। भगवन्, सम्भव है कि अनजान में मुझ से इनको या अन्य किसी भिक्षु को कष्ट पहुँचा हो। उसके लिये मैं इनसे व अन्य सब भिक्षुओं से क्षमा माँगता हूँ। यदि मैं कभी कोई अनुचित कार्य करूँ तो भिक्षु लोग मुझे तत्काल बता देने की कृपा करें। इससे मेरा बड़ा उपकार होगा।

सब लोग—महात्मा, आप पवित्रता के स्वरूप हैं। धर्म की साक्षात् मूर्ति हैं। धन्य है आपको।

एक बार महात्मा सारीपुत्र ने पूर्ण नाम के भिक्षु की बड़ी प्रशंसा सुनी। पूर्ण जंगल में रहते थे। सारीपुत्र उनके पास जंगल में ही गये। और उनसे कुछ उपदेश करने के लिये प्रार्थना की। महात्मा पूर्ण का उपदेश सुनकर सारीपुत्र गद्गद् हो गये। उनकी आँखों में आँसू भर गये।

महात्मा सारीपुत्र—महात्मा, धन्य है आपको। मेरे बड़े भाग्य

हैं जो आपके दर्शन हुए, और आपके अमृत के समान उपदेश सुने।

महात्मा पूर्ण—आप जो प्रशंसा करते हैं यह सब आप ही की कृपा है। परन्तु आपने अभी तक अपना परिचय तो दिया नहीं।

महात्मा सारीपुत्र—महात्मा, मैं धर्म का एक तुच्छ सेवक हूँ। मुझे लोग सारीपुत्र कहते हैं।

महात्मा पूर्ण—सारीपुत्र! आप महात्मा सारीपुत्र हैं! जो गुरु के मुख्य शिष्य हैं! धर्म-सेनापति हैं! जो गुरु के समान ही महान हैं! धन्य है उन भिक्षुओं को जो सदैव आपके साथ रहते हैं। और धन्य है मुझ को जो आज आपका सत्संग प्राप्त हुआ।

इस घटना से यह ज्ञात होता है कि भिक्षु लोग महात्मा सारीपुत्र का कितना आदर करते थे। महात्मा सारीपुत्र को एकान्त में भजन करना बहुत अच्छा लगता था। वे दूसरों की सेवा करने को सदैव तय्यार रहते थे। वे इच्छा रहित और सन्तोषी थे। अपनी प्रसन्नता से कोई भी उन्हें जो दे देता था, उसे ही वे ले लेते थे। अपने खाने के लिये कोई चीज़ किसी से माँग कर नहीं लेते थे। एक बार वे बीमार पड़े। उस समय महात्मा मौग्दल्यायन उनके पास बैठे थे।

मौग्दल्यायन—सारीपुत्र, क्या तुम घर पर भी कभी इस रोग से पीड़ित हुए थे?

सारीपुत्र—अनेक बार।

मौग्दल्यायन—उस समय तुम्हारी माता तुम्हें क्या औषधि देती थी?

सारीपुत्र—शहद और दूध।

किसी भिक्षु ने यह बात सुन ली। उसने झट शहद और दूध ला कर रख दिया।

सारीपुत्र—भाई, तुम इनको क्यों लाये?

भिक्षु—महाराज, आपने अभी कहा था कि आपके रोग की यही औषधि है।

सारीपुत्र—तुमने बड़ी कृपा की। परन्तु मैं तो इसे ले नहीं सकता। मेरा नियम है कि मैं अपनी कही हुई वस्तु को नहीं लेता?

मौग्दल्यायन—सारीपुत्र, वह नियम तो साधारण अवस्था के लिये है। रोग के लिये नहीं है। इस समय इन वस्तुओं को औषधि के रूप में लेने में कोई हर्ज नहीं है।

सारीपुत्र—नहीं, मेरी आँत निकल ही क्यों न पड़ें परन्तु मैं अपने नियम को नहीं तोड़ सकता। साधारण समय में नियम पालन करने में क्या कठिनाई है? नियम पालन की दृढ़ता की जाँच तो कष्ट के समय में ही हो सकती है।

मौग्दल्यायन ने बहुतेरा समझाया परन्तु महात्मा सारीपुत्र ने उस औषधि को न लिया।

एक बार महात्मा सारीपुत्र भिक्षा लेने के लिये जा रहे थे।

रास्ते में उन्होंने एक मछुए के लड़के को देखा। वह रास्ते में पड़े हुए चाँवलों को बीन-बीन कर खा रहा था। महात्मा सारीपुत्र का हृदय प्रेम से भर गया। वे उस लड़के से बोले—

सारीपुत्र—क्यों बच्चे, तुम ये रास्ते में पड़े हुए चाँवल क्यों खाते हो?

लड़का—महाराज, मेरे पिता बड़े निर्धन हैं। वे मेरे खाने का प्रबन्ध नहीं कर सकते इसलिये मैं इन चाँवलों को ही बीन रहा हूँ।

सारीपुत्र—तुम हमारे साथ चलो। तुम्हें खाना भी मिलेगा और धर्म उपदेश भी।

लड़का—महाराज, फिर मेरा जन्म सफल हो जायगा।

महात्मा सारीपुत्र उस मछुए के लड़के को अपने साथ लिवा लाये। उसे अपने ही हाथों से स्नान कराया और बुद्धधर्म का उपदेश दिया। समय पा कर उस लड़के ने भी अरहंत पद प्राप्त कर लिया। बड़े बड़े भिक्षु महात्मा सारीपुत्र से उपदेश लेते थे। महात्मा अनुरुद्ध ने भी इनसे उपदेश लिया था। भगवान बुद्ध के पुत्र का भी इन्होंने ही भिक्षु संघ में प्रवेश कराया था। इनकी बुद्धि इतनी तीव्र थी कि बड़े बड़े विद्वान इनसे बहस में हार जाते थे।

एक बार इन्होंने ध्यान में देखा कि इनकी मृत्यु का समय निकट आ गया है। सारीपुत्र भगवान बुद्ध के पास गये और उनकी तीन परिक्रमा करके बोले—

सारीपुत्र—भगवान, अब मेरे निर्वाण का समय आ गया है।

अब इस आवागमन से छुटकारा पाकर निर्वाण प्राप्त करूँगा। मेरी आयु समाप्त हो गई है। मेरे जो दोष हों उनको क्षमा कीजिये और नालक जाने की आज्ञा दीजिये। मैं जहाँ पैदा हुआ था वहीं निर्वाण लाभ करूँगा।

भगवान बुद्ध—हम यह पहिले से जानते हैं। अब तुम एक बार भिक्षुओं को उपदेश दो। और फिर जिस कार्य का समय समझो वह करो। तुमने कोई दोष नहीं किया। फिर भी तुम्हारे सन्तोष के लिये क्षमा करता हूँ।

सारीपुत्र ने सब भिक्षुओं को इकट्ठा करके उपदेश दिया। फिर जाने से पहिले अपनी कोठरी में ठीक ठीक जगह चीज़ें रख कर, उसे साफ करके, अपने पाँच सौ शिष्यों सहित नालक को चल दिये। वहाँ इनकी अपनी माता से भेंट हुई। परन्तु ये वहाँ एक रात्रि ही रहे। इनको ऐंठे हो गये। बीमारी में भी इनके मुख पर शान्ति देख कर इनकी माता पर बड़ा प्रभाव पड़ा। और उसने भी बुद्ध धर्म स्वीकार किया। फिर सारीपुत्र ने सब भिक्षुओं को एकत्रित करके उनको अन्तिम बार उपदेश दिया और शरीर त्याग कर मुक्त हो गये।

३—महात्मा महाकश्यप

मगध देश के महातीर्थ गाँव में कपिल ब्राह्मण के यहाँ पिप्पली नाम के पुत्र ने जन्म लिया। लगभग उसी समय के मद्र देश के

सागल गाँव में कौशिक ब्राह्मण के यहाँ भद्रकपिलनी नाम की पुत्री ने जन्म लिया। पूर्व जन्मों में पिप्पली और भद्रकपिलनी पति-पत्नी थे।

जब पिप्पली बड़े हुए तो माता पिता ने उनका विवाह करने का विचार किया। पिप्पली ने एक दिन माता से कहा।

पिप्पली—माता जी, मेरी ढीठता क्षमा हो, तो एक बात कहूँ।

माता—कहो बेटा। डरते क्यों हो? भला, मा से ही न कहोगे, तो और किससे कहोगे?

पिप्पली—माता जी आप लोग मेरे विवाह का प्रबन्ध न करें।

माता (चकित होकर)—यह तुमने कैसी बात कही! विवाह का प्रबन्ध क्यों न करें? तुम अब गृहस्थी का बोझ सँभालने योग्य हुए हो। बहूरानी घर में आवेंगी, तो मुझे भी छुट्टी मिलेगी। मैं भी अब बूढ़ी हुई। वाह! भाई वाह!

पिप्पली—जब तक आप लोग जीवित हैं मैं आपकी सब प्रकार से सेवा करूँगा। किसी प्रकार का आपको कष्ट न होगा। परन्तु उसके पीछे मैं सन्यासी हो जाऊँगा।

माता—यह और भी रही! भला सन्यासी हो जाओगे तो पित्रों का श्राद्ध कौन करेगा? नहीं बेटा, यह भला कहीं हो सकता है। पहिले गृहस्थाश्रम का पालन करो। और जब उसे पूरा कर लो तब सन्यासी होना। विवाह तो तुम्हें करना ही पड़ेगा।

पिप्पली—अच्छा, यदि आप नहीं मानती हैं, तो उस स्त्री से विवाह करूँगा जो इतनी सुन्दर हो जितनी कि यह सोने की मूर्ति है।

यह कह कर पिप्पली ने एक सजी हुई सोने की मूर्ति दिखलाई। उसने पहिले से ही यह सोच कर उसको बनवाया था कि न ऐसी सुन्दर स्त्री होगी और न विवाह होगा।

माता—यह तो तुमने बड़ी अनोखी बात कही है। अच्छा यही सही। जो इस छोटी आयु में ही तुम्हारे ऐसे विचार हैं, तो पूर्व जन्म में भी तुम बड़े धर्मात्मा रहे होगे। और तुम्हारी स्त्री भी बड़ी धर्मात्मा रही होगी। वह स्त्री अब जन्मी होगी, तो बड़ी सुन्दर होगी। क्योंकि धर्मात्मा स्त्री ने रूप अवश्य पाया होगा। रही उसके खोजने की बात, सो मैं उसे सारे देश में ढूँढ़वा लूँगी।

कपिल ब्राह्मण बड़ा धनी था। झट कई ब्राह्मणों को आज्ञा हुई कि इस मूर्ति को ले कर जाओ, और इसके समान सुन्दर लड़की खोजो। ब्राह्मण ढूँढ़ते ढूँढ़ते सागल गाँव में आये। वहाँ नदी के घाट पर मूर्ति को रख कर ब्राह्मण पास के पेड़ों की छाया में बैठ गये। उस दिन भद्रकपिलनी को उसकी दाई ने शृंगार कराया था। फिर वह दाई नदी में स्नान करने आई। दाई ने उस मूर्ति को भद्रकपिलनी समझा। उसने समझा कि भद्रकपिलनी बिना पूछे नदी नहाने आ गई है। उसने क्रोध में आ कर मूर्ति की पीठ में एक तमाचा मारा।

दाई—ऐसी निर्लज्जा! तू क्यों आई?

जब हाथ में सोने की मूर्ति पर मारने से चोट लगी, तो दाई हाथ मलने लगी। इतने में ब्राह्मण भी आ गये।

ब्राह्मण—क्यों भाई, हमारी मूर्ति पर थप्पड़ क्यों मारा ?

दाई—भूल गई। मैंने इसे भद्रकपिलनी समझा था।

ब्राह्मण—भद्रकपिलनी कौन है ?

दाई—कौशिक ब्राह्मण की पुत्री !

ब्राह्मण—चल ! कहीं स्त्री भी इतनी सुन्दर हो सकती है !

दाई—यह तुम क्या कहते हो ? जहाँ भद्रकपिलनी खड़ी हो जाती है वहाँ दीपक जलाने की आवश्यकता नहीं होती। उसके रूप से ही प्रकाश हो जाता है।

फिर क्या था। ब्राह्मण कौशिक के पास गये और विवाह सम्बन्ध तय कर लिया। जब यह बात पिप्पली को मालुम हुई तो उसे बड़ी चिन्ता हुई कि अब तो विवाह करना पड़ा। उसने एक पत्र भद्रकपिलनी के नाम लिखा कि मैं सन्यासी होना चाहता हूँ। इसलिये तुम दूसरा वर खोजने के लिये अपने पिता से कहो। नहीं तो फिर पीछे मुझे दोष न देना।

यह पत्र पिप्पली ने अपने पिता से छिपा कर एक ब्राह्मण के हाथ सागल भेज दिया। वहाँ भद्रकपिलनी ने भी एक पत्र पिप्पली को लिखा कि मेरा विचार सन्यासिनी होने का है। इसलिये आप कोई और पत्नी ढूँढ़ लीजिये। नहीं तो फिर पीछे दोष मत देना। उसने भी वह पत्र महातीर्थ गाँव भेज दिया। दोनो ब्राह्मण रास्ते में मिल गये। उन्होंने सलाह करके पत्र खोल लिये। जब पत्र पढ़े तो उन्होंने सारी बात बिगड़ती देखी। उन्होंने पत्रों को फाड़ डाला। और दो नये पत्र लिखे। पिप्पली की ओर से लिखा

कि वे भद्रकपिलनी से ही विवाह करेंगे। पीछे जो भद्रकपिलनी चाहे वह करे। ऐसा ही पत्र भद्रकपिलनी की ओर से पिप्पली को लिख दिया। विवाह हो गया। थोड़े दिन पीछे पिप्पली के माता पिता मर गये। तब तो पिप्पली और भद्रकपिलनी को गृहस्थी का काम सँभालना पड़ा। हिसाब लगाने से मालूम पड़ा कि उनके पास सताईस करोड़ रुपया और बत्तीस गाँव हैं।

एक दिन पिप्पली नौकरों के साथ खेत पर गया। वहाँ उसने देखा कि खेत जोता जा रहा है। मिट्टी के साथ गिंडोए आदि जानवर ऊपर आ जाते थे और कौवे उनको खा जाते थे। पिप्पली ने नौकरों से कहा—

पिप्पली—भाइयो, पत्ती क्या खाते हैं?

नौकर—मालिक, केंचुओं को।

पिप्पली—इनको मिट्टी में क्यों नहीं दबा देते?

नौकर—फिर जोता ही क्यों जाय? और ऐसे एक एक को कहाँ तक दबावें? बहुत से तो हल के लोहे से ही कट जाते हैं। यह तो ऐसा ही होता है।

पिप्पली—फिर इस पाप का उत्तर कौन देगा?

नौकर—जो खेत जुतवावे वह।

पिप्पली—मुझे क्या चाहिये? आध सेर आटे के लिये मैं इतना पाप करूँ। मैं आज ही सब सम्पत्ति भद्रकपिलनी के नाम करके सन्यास ले लूँगा।

घर पर भद्रकपिलनी ने अचार धूप में सुखाने को फैलवा

दिया था। भद्रकपिलनी ने देखा कि उसमें कीड़े हैं। कौवे उनको चुन चुन कर खाते हैं। उसने कहा—

भद्रकपिलनी—यह तो बड़ी हत्या होती है। इसका पाप किसके सिर पर होगा ?

दासी—मालकिन, जिसका अचार होगा उस पर।

भद्रकपिलनी—मुझे क्या चाहिये ? गज़ भर कपड़ा और मुट्ठी भर चाँवल। आर्यपुत्र को आने दो, मैं सब कुछ उन्हें सौंप कर सन्यासिनी हो जाऊँगी।

इसके पश्चात जब दोनों पति पत्नी खाना खाने बैठे तो पिप्पली बोले—

पिप्पली—प्रिये, यह सब धन दौलत अब तुम सँभालो। मैं तो अब सन्यासी होता हूँ।

भद्रकपिलनी—प्रभो, मैं तो आप ही यह निश्चय कर चुकी हूँ। चलिये हम दोनों एक ही साथ सन्यासी हो जायँ।

पिप्पली—यह भी ठीक है।

दोनों गेरुए वस्त्र पहिन कर हाथ में कमंडल ले कर निकल पड़े। नौकरों ने भी उनको न पहिचाना। परन्तु गाँव वालों ने पहिचान लिया। वे उनको घेर कर खड़े हो गये और रोने लगे। गाँव वाले उनके पैरों पर गिर कर कहने लगे—

गाँव वाले—नाथ, हमको क्यों अनाथ करते हो ?

पिप्पली—भाई, रोने की कुछ बात नहीं है। यदि मैं तुम लोगों को एक एक करके स्वतन्त्र करूँ तो बहुत समय लगेगा।

इसलिये मैं तुम सब को एक साथ ही स्वतन्त्र करता हूँ। आज से सब किसान अपनी अपनी ज़मीन के आप ही मालिक हुए।

यह कह कर दोनों व्यक्ति वहाँ से चल दिये। चलते चलते रास्ते में पिप्पली ने भद्रकपिलनी से कहा—

पिप्पली—प्रिये, हमारे साथ रहने से देखने वाले यह समझेंगे कि ये पाखंडी हैं। अब भी पति पत्नी साथ रहते हैं। उनके इस समझने से हमारा तो कुछ नहीं बिगड़ेगा। परन्तु इन लोगों के मन में बुरे विचार पैदा होकर इनके मन को दूषित करेंगे और हम लोग उस पाप के बढ़ाने का कारण होंगे।

भद्रकपिलनी—स्वामी, आप ठीक कहते हैं। हमारे साथ रहने से हमारे भाई बहन पाप में डूबेंगे।

यह कह कर भद्रकपिलनी ने पिप्पली की तीन बार परिक्रमा की और दंडवत् प्रणाम करके हाथ जोड़ कर बोली—

भद्रकापलनी—स्वामी, असंख्य जन्मों से जो हमारा पवित्र सम्बन्ध रहा है वह आज टूट गया। आप बड़े हैं। इसलिये आप सीधे हाथ की सड़क पर चलिये और मैं छोटी हूँ, मैं बायें हाथ की सड़क पर चली जाऊँगी।

इस प्रकार ये धर्मात्मा पति पत्नी दूसरों को पाप से बचाने के लिये अलग हो गये। उनके ऐसे त्याग से पृथ्वी हिलने लगी। उस समय भगवान गौतम बुद्ध अपने आसन पर बैठे थे। उन्होंने ध्यान से पृथ्वी के हिलने का कारण जान लिया। झटपट आसन

से उठे और पात्र हाथ में लेकर आकाश मार्ग से उन लोगों का स्वागत करने के लिए चल पड़े। रास्ते में आकर एक पेड़ के नीचे बैठ गये। जब पिप्पली वहाँ आये, तो देखा कि भगवान बुद्ध के शरीर से छः रंग का प्रकाश निकल रहा है।

पिप्पली—भगवान, मैं आप जैसे गुरु की ही खोज में था। मुझे शरण में ले लीजिये।

भगवान बुद्ध—प्यारे कश्यप आओ। मैं तुम्हें लेने के ही लिये आया हूँ। और तुम्हारी राह देख रहा था।

अब से पिप्पली का नाम कश्यप हो गया।

फिर दोनों वहाँ से चल दिये। रास्ते में भगवान बुद्ध एक स्थान पर ठहरे। कश्यप ने अपना रेशमी वस्त्र उतार कर भगवान बुद्धदेव के बैठने के लिये बिछा दिया।

बुद्धदेव—कश्यप, तुम्हारा वस्त्र बहुत कोमल है।

कश्यप—यदि महाराज इसको धारण करें, तो मैं कृतार्थ हो जाऊँगा।

बुद्धदेव—फिर तुम क्या पहिनोगे?

कश्यप—भगवान, यदि आप मुझे अपना वस्त्र प्रदान करें, तो मेरा जन्म सफल हो जाय।

बुद्धदेव—कश्यप, क्या तुम इस चीथड़े को पहन सकोगे?

कश्यप—महाराज, यह तो मेरा बड़ा भाग्य होगा।

बुद्धदेव—कश्यप, कितने ही वर्ष हुए यह कपड़ा मैंने पन्ना दासी के मृतक शरीर पर से उतारा था। और अब यह बुद्ध के

शरीर पर वर्षों तक रहने से चिथड़ा हो गया है। इसको कोई कम शक्ति वाला मनुष्य नहीं पहिन सकता। इसे वही पहिन सकता है जो कूड़े करकट में पड़े हुए कपड़ों को निकाल कर पहिनने की प्रतिज्ञा का पालन करता हो।

यह कहकर हँसते हँसते बुद्धदेव ने अपना कोट कश्यप को दे दिया। उनकी कश्यप पर ऐसी दया देख कर, कहते हैं कि पृथ्वी हिलने लगी।

कश्यप (पैरों में पड़ कर)—भगवन्, यह आपकी अपार कृपा है। मेरे में क्या शक्ति है कि इस कोट को मैं धारण कर सकूँ, परन्तु आपकी इस दया के बल से कौन सी प्रतिज्ञा ऐसी है जिसका कि पालन नहीं किया जा सकता।

बुद्धदेव—कश्यप, तुमको हमने अधिकारी ही समझ कर दिया है। तुम्हारा त्याग महान है, तुम्हारा मन पवित्र और कोमल है।

फिर भगवान बुद्ध ने कश्यप को योग साधन का उपदेश दिया और कश्यप ने ऐसा तप किया कि सात दिन में ही अरहंत पद प्राप्त कर लिया। तब भगवान बुद्ध ने उनको महाकश्यप कह कर पुकारा। सब भिक्षुओं को एकत्रित करके भगवान बुद्ध बोले—

भगवान बुद्ध—महाकश्यप उन सब भिक्षुओं के मुख्य हैं जिन्होंने योग-सिद्धि प्राप्त की है। हमको ध्यान से ज्ञात हुआ है कि धर्म सेनापति सारी पुत्र और मौग्दल्यायन हमारे निर्वाण से पहिले ही निर्वाण को प्राप्त हो जायँगे। इसलिये हमारे

पीछे महाकश्यप को ही सब लोग हमारे स्थान पर समझें,
और इनकी आज्ञा का पालन करें ।

इसी प्रकार भगवान बुद्धदेव ने भद्रकपिलनी को भी बुद्ध-धर्म का उपदेश देकर कृतार्थ किया ।

एक बार महाकश्यप भिक्षा लेने जा रहे थे । उनसे आगे बुद्ध भगवान जा रहे थे । बुद्ध भगवान और महाकश्यप देखने में एक से ही मालूम होते थे । एक स्त्री रोज़ महाकश्यप को चाँवल दिया करती थी । कहते हैं कि वह किसी जन्म में महाकश्यप की माता थी । इसलिये इस जन्म में भी उसको महाकश्यप से स्वाभाविक प्रेम था । जब बुद्ध भगवान उसके सामने से निकले तो उसने उनको ही महाकश्यप समझ कर चाँवल दे दिये । पीछे से जब महाकश्यप आये, तो उसको अपनी भूल मालूम हुई । वह दौड़ी हुई गई और बुद्ध भगवान के पात्र में से चाँवल निकाल लिये और लाकर कश्यप को दे दिये । बुद्ध भगवान यह देख कर हँसे, परन्तु महाकश्यप को बड़ा दुःख हुआ । उन्होंने निश्चय किया कि जहाँ भगवान बुद्ध भिक्षा करें वहाँ उनको भिक्षा नहीं करनी चाहिये । यह सोच कर वे हिमालय पहाड़ की एक खोह में रहने लगे । उस खोह के सामने एक पेड़ था । उन्होंने निश्चय किया किया जब भगवान बुद्ध का निर्वाण हो, उस समय उस पेड़ के सब पत्ते एक साथ सूख जायँ, और जब तक वे पहुँच न जायँ, तब तक भगवान बुद्ध का शरीर जलने न पावे ।

ऐसा ही हुआ । जब भगवान बुद्ध का निर्वाण हुआ तो पेड़

सब पत्ते सूख गये। यह देख कर महाकश्यप झट हिमालय से चल पड़े। यहाँ चिता पर बुद्ध भगवान का शरीर रखा गया और आग लगाई गई तो आग नहीं लगी। तब महात्मा अनुरुद्ध ने कहा कि आग महात्मा महाकश्यप के आने पर लगेगी। जब महात्मा महाकश्यप आ गये और उन्होंने भगवान बुद्ध के चरणों की वंदना की, तब भगवान बुद्ध का अग्नि संस्कार हुआ।

इसके पीछे वैशाली नगर में पाँच सौ मुख्य मुख्य भिक्षुओं की बड़ी महत्त्वपूर्ण सभा हुई। महात्मा महाकश्यप उसके प्रधान चुने गये। उस सभा में बुद्ध धर्म के प्रचार की व्यवस्था की गई। इस प्रकार इस महात्मा ने बुद्ध के प्रचार का उचित प्रबन्ध करके बुद्ध धर्म की नींव दृढ़ की और फिर सवा सौ वर्ष की आयु पाकर निर्वाण को प्राप्त हुए।

४—महात्मा अनुरुद्ध

महात्मा अनुरुद्ध भी भगवान बुद्ध के प्रधान शिष्यों में से थे। ये उन भिक्षुओं में सर्व श्रेष्ठ थे जिनको दिव्य दृष्टि प्राप्त हो गई थी। इस दिव्य दृष्टि के प्रभाव से महात्मा अनुरुद्ध एक ही जगह बैठे भिक्षुओं के सारे कामों को देखा करते थे।

जब संसार में पद्मोत्तर नाम के बुद्ध विराजते थे, उस समय एक गृहस्थ ब्राह्मण उनके उपदेश सुनने के लिये जाया करता था। वह सब से पीछे जाकर बैठ जाता था। एक दिन

उपदेश समाप्त होने पर पद्मोत्तर बुद्ध ने एक भिक्षु को दिव्य दृष्टि प्राप्त भिक्षुओं में सर्व श्रेष्ठ कह कर आदर दिया। यह देख कर उस ब्राह्मण के हृदय में भी यह इच्छा हुई कि वह भी उस पद को प्राप्त करे। उस ब्राह्मण ने एक सप्ताह तक पद्मोत्तर बुद्ध और उनके चेलों को बड़े प्रेम से अपने यहाँ भोजन कराया। एक दिन पद्मोत्तर बुद्ध उससे बोले—हे ब्राह्मण, हम तुम्हारे अन्न दान से बड़े सन्तुष्ट हैं। कहो, हम तुम्हारी क्या सेवा कर सकते हैं।

ब्राह्मण—महाराज, मुझे दिव्य दृष्टि प्राप्त भिक्षुओं में सर्व श्रेष्ठ बनने की अभिलाषा है। यदि आप प्रसन्न हैं, तो इसे पूरी कीजिये।

पद्मोत्तर बुद्ध—ब्राह्मण, जब संसार में गौतम बुद्ध होंगे, उस समय तुम इस पद को प्राप्त करोगे। उस समय तक तुम धर्म करते हुए जीवन व्यतीत करो।

इसके पीछे एक जन्म में वही ब्राह्मण काशी में अन्नभार नाम से पैदा हुआ। अन्नभार निर्धन था और सेठ सुमन के यहाँ नौकरी करता था। सेठ सुमन बड़ा दानी था। उसके यहाँ प्रति दिन कितने ही भूखे भोजन पाते थे। जिनके पास कपड़ा नहीं होता था उनको कपड़ा मिलता था और जिनको धन की आवश्यकता होती थी, उनको धन मिलता था।

उस समय उपरित् नाम के बुद्धदेव बुद्धत्व को प्राप्त हुए थे। जब वे समाधि से उठे तो संसार में यह देखने के लिये दृष्टि डाली कि भोजन कहाँ करना चाहिये। उन्होंने देखा कि काशी

नगरी में अन्नभार नाम का निर्धन ब्राह्मण बड़ा धर्मात्मा है। बुद्धदेव आकाश में उड़ते हुए उसके घर जा पहुँचे और द्वार पर खड़े हो गये। अन्नभार भी वहीं खड़ा था। वह उनको देख कर आश्चर्य करने लगा और बोला——

अन्नभार——महात्मा, आपका मुख दिव्य तेज से चमक रहा है। मेरे लिये क्या आज्ञा है? क्या महाराज भोजन करेंगे? आज मेरा जन्म सफल हुआ।

उपरित् बुद्ध——हाँ, उपासक, हम भोजन करेंगे।

अन्नभार——महाराज, आप विराजिये। मैं जो कुछ अन्न है, वह लाता हूँ।

यह कह कर बुद्धदेव के बैठने को अपना कोट उतार कर बिछा दिया और भीतर जाकर अपनी स्त्री से बोला——देवी, आज एक महात्मा भिक्षा करने को हमारे यहाँ आये हैं। जो कुछ अन्न हो, दे दो।

स्त्री——महाराज, बस आपके और मेरे खाने भर का ही है। उससे अधिक तो घर में कुछ है ही नहीं।

अन्नभार——देवी, पहिले जन्मों में हमने दान नहीं किया होगा, जो अब निर्धन हुए। अब हमारी शक्ति नहीं कि दान कर सकें। यह बड़ा अपूर्व अवसर आया है कि कुछ अन्न घर में है और ऐसे महात्मा भिक्षा लेने आये हैं। इसीलिये तुम मेरे हिस्से का भोजन दे दो।

स्त्री——स्वामी, आप ठीक कहते हैं। अपना ही नहीं वरन् मेरे हिस्से का भी भोजन प्रसन्नता से लेते जाइये, हम आज

के बदले फल खा लेंगे, तो कोई हानि नहीं है। परन्तु अतिथि को खिलाने का ऐसा अवसर मिलना सहज नहीं है।

अन्नभार ने भोजन और पानी ले जाकर बुद्धदेव के सामने रख दिया। जब बुद्धदेव ने भोजन कर लिया, तब वे बोले—

बुद्धदेव—अन्नभार, तुमने बड़े प्रेम से भोजन खिलाया है। इससे मैं बड़ा सन्तुष्ट हुआ। अब तुम कहो, मैं तुम्हारी क्या सेवा करूँ?

अन्नभार—महाराज, मैं निर्धनता के कारण आपका अच्छी तरह सत्कार नहीं कर सका। परन्तु आपने इसको भी बहुत समझा, यह आपकी बड़ी कृपा है। महाराज, यह ग़रीबी बहुत बुरी है, कि जिससे हम महात्मा अतिथि का आदर सत्कार भी नहीं कर पाते।

बुद्धदेव—अन्नभार, अब यह ग़रीबी तुम को नहीं सतावेगी।

जब सुमन सेठ की लड़की ने ये समाचार सुने तो उसके मुख से ये शब्द निकल गये कि "बड़ा अपूर्व दान है।" पास ही सुमन सेठ बैठा हुआ था, उसने समझा कि उसकी बेटी उसके किसी दान की प्रशंसा कर रही है।

सुमन सेठ—बेटी, तुम को कौन सा दान अच्छा लगता है? यहाँ तो प्रतिदिन अनेक प्रकार के दान होते हैं, उनमें से तुम किसको श्रेष्ठ समझती हो?

सेठ की बेटी—पिता जी, मैंने आपके किसी दान के सम्बन्ध में नहीं कहा।

सुमन—तो बेटी, काशी में इससे अधिक दान और किसने किया है ?

सेठ की बेटी—पिता जी, आप तो अपनी प्रशंसा के लिये दान करते हैं, आपके पास धन भी बहुत है। उसमें से आप दान कर सकते हैं। इससे आपको कुछ कष्ट नहीं सहन करना पड़ता, परन्तु निर्धन अन्नभार ने आज भूखे रह कर भगवान उपरित् बुद्धदेव को भोजन कराया है। दान करने वाला, दान की विधि और दान देने वाले सब ही श्रेष्ठ हैं। इसीलिये अन्नभार बड़े पुण्य का भागी हुआ है।

सेठ ने तुरन्त अन्नभार को बुलाया। जब वह आया, तब सेठ बोला—

सेठ सुमन—अन्नभार, तुमने बुद्धदेव को भोजन कराया है। इससे बड़े पुण्य के भागी हुए हो। तुम चाहे जितना धन ले लो, जिससे तुम्हारी निर्धनता दूर हो जाय, और वह पुण्य हम को दे दो।

अन्नभार—स्वामी, भला पुण्य भी बेचा जा सकता है ?

सेठ सुमन—यदि तुम सारा पुण्य न दो, तो आधा ही दे दो और एक हज़ार अशर्फी ले लो।

अन्नभार—मैं किसी प्रकार भी पुण्य को नहीं बेच सकता।

सेठ सुमन—देखो, तुम हमारे सेवक हो। क्या सेवक का यही धर्म है कि स्वामी की बात को इस प्रकार टाल दे ?

अन्नभार—अच्छा, पहिले मैं बुद्धदेव से पूछ लूँ।

सेठ सुमन——हाँ, यह बात ठीक है ।

अन्नभार ने बुद्धदेव से जा कर पूछा, तो वे बोले——

उपरित् बुद्ध——अन्नभार, यदि कोई मनुष्य एक दीपक जलावे और फिर दूसरे लोग अपने-अपने दीपक को उसके दीपक से जला लें, तो क्या उसके दीपक का प्रकाश कम हो जायगा ?

अन्नभार——नहीं महाराज, और बढ़ेगा, क्योंकि उसकी लोय भी तेज़ हो जायगी ।

उपरित् बुद्ध——बस वही हाल पुण्य का है । पुण्य के बाँटने से पुण्य और बढ़ता है, क्योंकि उसके बाँटने से, जो भलाई करने का भाव है वह बढ़ता है । और दूसरे के मन में भी पुण्य का भाव पैदा हो जाता है ।

यह सुनकर अन्नभार लौट कर सेठ के पास गया और बोला——

अन्नभार——सेठ जी, मैंने बुद्धदेव से पूछ लिया है । मैं आपको अपना आधा पुण्य देता हूँ ।

सेठ——मैं भी अभी एक हज़ार अशर्फी मँगाये देता हूँ ।

अन्नभार——मुझे अशर्फी नहीं चाहिये । मैंने पुण्य बेचा नहीं है वरन् बाँटा है ।

सेठ——भाई, मैं तुमको पुण्य के दाम नहीं देता । मैं तो तुम्हारी सज्जनता से प्रसन्न होकर, तुम्हारी भेंट करता हूँ । यही नहीं, एक सजा सजाया मकान भी स्वीकार करके तुम मुझे कृतार्थ करो ।

अन्नभार——यदि आपके मन में बिना मतलब के दान देने का भाव आता है तो बड़े हर्ष की बात है। उस भाव को बढ़ाने के लिये मैं आपके दान को स्वीकार करता हूँ।

फिर सेठ अन्नभार को राजा से मिलाने के लिये ले गया। राजा भी अन्नभार के चमकते हुए मुख को देख कर आश्चर्य करने लगे। जब सेठ ने सब हाल कहा, तो राजा ने भी अन्नभार के लिये एक नया मकान बनवाने की आज्ञा दी। जब उस मकान के बनवाने में नींव खोदी गई तो गड़ा हुआ खजाना मिला। राजा ने वह खजाना भी अन्नभार को दे दिया। और उसको राज्य भर का खजानची भी नियुक्त कर दिया।

यही अन्नभार भगवान गौतम बुद्ध के समय में इन्हीं के वंश में राजकुमार अनुरुद्ध के नाम से उत्पन्न हुआ। राजकुमार बड़े ही भोले थे। इनसे किसी ने पूछा कि तुम जो थाली में चाँवल खाते हो वे कहाँ से आते हैं? राजकुमार ने कहा कि "चाँवल थाली में से उत्पन्न होते हैं।"

एक बार राजकुमार अपने साथियों के साथ खेल रहे थे। खेल की टिकिया दाव पर लगाई जा रही थीं। राजकुमार बहुत सी टिकिया हार गये। इसलिये उनकी माता ने झुँझला कर नौकर से कहा——

माता——जा कर कह दे कि अब टिकिया नहीं है।

नौकर अनुरुद्ध के पास पहुँचा।

अनुरुद्ध——क्यों टिकिया लाये?

नौकर—टिकिया नहीं है।

अनुरुद्ध ने समझा कि 'नहीं' किसी प्रकार की टिकिया का नाम है।

अनुरुद्ध—अच्छा "नहीं" टिकिया ही ले आ।

नौकर हँसता हुआ माता के पास आया और बोला कि वे "नहीं" टिकिया ही माँगते हैं।

माता—भला, 'नहीं' भी कोई टिकिया होती है?

नौकर—फिर मैं क्या करूँ? यदि नहीं ले जाऊँगा तो वे दुःखी होंगे।

माता—अच्छा, मैं उसे 'नहीं' का अर्थ समझा देती हूँ।

यह कह कर माता ने सोने के दो कटोरे ऊपर नीचे रख कर नौकर को दे दिये और बोली कि "जब वह इन कटोरों को खोलेगा तो भीतर कुछ नहीं मिलेगा। तब 'नहीं' का अर्थ समझ में आ जायगा।"

कहते हैं कि नौकर ने जाकर वे कटोरे राजकुमार को दिये परन्तु उन्होंने जब उनको खोला तो देखा कि एक बड़ी मीठी टिकिया रखी है। उसे राजकुमार और उनके साथियों ने बड़े प्रसन्न हो कर खाया। फिर तो वे "नहीं" टिकिया ही मँगवाते और ऐसी ही मीठी टिकिया उनको मिल जाती। यह किसी को मालूम न हुआ कि वे टिकिया कहाँ से आती थीं। लोगों ने समझा कि देवता लोग उनको कटोरों में रख देते थे।

जब राजकुमार बड़े हुए तो उनके भाई राजा महानाम उनके पास आये।

महानाम—भाई, हमारे वंश के प्रत्येक घराने से कोई न कोई राजकुमार भगवान बुद्ध का शिष्य हो गया है। परन्तु हमारे घराने का अभी कोई नहीं हुआ। इसलिये या तो तुम भिक्षु बनो या राज्य करो और मैं भिक्षु बनूँ।

अनुरुद्ध—भाईसाहब, भिक्षु कौन होता है? उसे क्या करना पड़ता है?

महानाम—भिक्षु साधु होता है। माँग कर पेट भरता है। ज़मीन पर सोता है। दूसरों के उपकार में, और धर्म का उपदेश करने में समय व्यतीत करता है।

अनुरुद्ध—मुझसे भीख माँगना और ज़मीन पर सोना तो न होगा।

महानाम—तो राज्य सँभालो।

अनुरुद्ध—इसमें क्या करना पड़ता है?

महानाम—इसमें प्रजा के सुख से रहने का प्रबन्ध करना पड़ता है। ज़मीन जुतवाकर अन्न पैदा करना पड़ता है। और शत्रुओं से राज्य की रक्षा करने के लिये लड़ाई करनी पड़ती है।

अनुरुद्ध—यह तो और भी झगड़ा है।

महानाम—तुम्हें जो अच्छा लगे, वही स्वीकार करो।

अनुरुद्ध—अच्छी बात है, मैं भिक्षु ही बनूँगा।

राजकुमार अनुरुद्ध पाँच अन्य राजकुमारों के साथ अपने नाई उपाली को लेकर बुद्ध भगवान के पास गये। बुद्ध भगवान ने इनके राजकुमार होने के अभिमान को मिटाने के लिये पहिले उपाली नाई को ही उपदेश दिया। जो उपाली नाई इनका नौकर था अब इनसे बड़ा हो गया, क्योंकि उसको पहिले उपदेश मिला

था। राजकुमारों ने उसको प्रणाम किया। महात्मा अनुरुद्ध ने धर्म-सेनापति महात्मा सारीपुत्र से भी उपदेश लिया और वन में जाकर योग साधन करने लगे। शीघ्र ही उनको अरहंत पद प्राप्त हो गया। भगवान बुद्ध ने उनकी बड़ी प्रशंसा की और दिव्यदृष्टि प्राप्त भिक्षुओं में उनको सर्वश्रेष्ठ बताया। महात्मा अनुरुद्ध भूत भविष्य की सब बातें जान लेते थे। भगवान बुद्ध के निर्वाण पाने पर महात्मा अनुरुद्ध उन मुख्य भिक्षुओं में से थे जिनको बुद्धधर्म के प्रचार का कार्य सौंपा गया था। उन्होंने डेढ़ सौ वर्ष की आयु में निर्वाण प्राप्त किया।

५—महात्मा आनन्द

आनन्द भी शाक्य जाति के राजकुमार थे महात्मा अनुरुद्ध और महात्मा उपाली के साथ ये भी भगवान बुद्ध के चेले हुए थे। महात्मा आनन्द भगवान बुद्ध के बड़े प्यारे शिष्य थे। वे सदैव भगवान के साथ रहते थे। एक दिन भगवान बुद्ध ने सब भिक्षुओं को जमा किया।

भगवान बुद्ध—भिक्षुओ, अब तक तुम में से कोई मेरे साथ नहीं रहता था। अपना वस्त्र और पात्र मैं आप ही लेकर चलता था। अथवा कोई भिक्षु जो साथ होता था ले लेता था। परन्तु अब मैं वृद्ध हुआ हूँ। इसलिये मेरे साथ रहने के लिये किसी भिक्षु को नियत करो।

महात्मा सारीपुत्र—भगवन्, मैंने अनेक जन्मों में आपके चरणों

में रहने के लिये तप किया है। मैं सेवक उपस्थित हूँ। यह सेवा मैं करूँगा।

भगवान बुद्ध—नहीं सारीपुत्र, तुम्हारा उपदेश बुद्ध के उपदेश के समान ही होता है। तुम धर्म का प्रचार करो। यह सेवा तुम से ली जाने के योग्य नहीं है।

इस प्रकार अस्सी मुख्य चेले खड़े हुए। परन्तु बुद्धदेव ने उन्हें स्वीकार नहीं किया। महात्मा आनन्द चुपचाप बैठे रहे। तब भिक्षुओं ने आनन्द से कहा कि तुम इस सेवा को भगवान से क्यों नहीं माँग लेते?

महात्मा आनन्द—प्रभु मुझे देखते ही हैं। यदि माँग कर स्थान पाया तो क्या पाया। भगवान चाहेंगे तो मुझे आप ही इस सेवा को देंगे।

भगवान बुद्ध—भिक्षुओ, तुम आनन्द को उत्साहित मत करो। वह आप ही जो कहना होगा, कहेंगे।

महात्मा आनन्द—भगवन, मैं यह सेवा करने को तैयार हूँ। परन्तु आपको मेरी आठ बातें माननी पड़ेंगी। आप अपना उत्तम वस्त्र मुझे न देना। अपना भोजन मुझे मत देना। एक ही कुटी में अपने साथ मुझे मत रखना। कहीं आप का ही निमन्त्रण हो, तो मुझे साथ मत ले जाना।

भगवान बुद्ध—आनन्द, यदि मैं ऐसा करूँ, तो क्या बुराई है?

महात्मा आनन्द—महाराज, भिक्षु लोग यह कहने लगेंगे कि आनन्द ने इन्हीं बातों को प्राप्त करने के लिये सेवा की थी। और उनके मन में पाप उदय होगा।

भगवान बुद्ध—साधु, साधु, आनन्द, अच्छा अब शेष चार बातें

बताओ।

महात्मा आनन्द—यदि मैं कहीं आपके लिए निमन्त्रण स्वीकार कर लूँ, तो आप उसमें अवश्य जायँगे। दूसरे देश या राज के लोग आवेंगे तो मैं उनको आपका दर्शन तत्काल करा सकूँगा, जिससे उनको ठहरना न पड़े। मैं जब चाहूँगा आपके पास आ सकूँगा जो उपदेश आप मेरे पीछे करेंगे उनको मुझे भी कर देंगे।

भगवान बुद्ध—हमको यह सब स्वीकार है।

इसके पीछे महात्मा आनन्द सदैव भगवान बुद्ध के साथ रहने लगे। एक बार भगवान बुद्ध और महात्मा आनन्द कहीं जा रहे थे। उनको एक भिक्षु मिला। वह पाखाने पेशाब में लिपटा हुआ पड़ा था। भगवान, वहाँ ठहर गये और आनन्द से पानी मँगवाया। भगवान बुद्ध ने पानी डाला और महात्मा आनन्द ने उस भिक्षु को धोया। उसके कपड़े बदले और उसको विहार में लाकर औषधि का प्रबन्ध किया।

महात्मा आनन्द बड़े शान्त चित्त, दयालु और निरभिमान थे। वे ऊँच नीच का भेद नहीं करते थे। एक बार कहीं जा रहे थे। रास्ते में उनको प्यास लगी। कुएँ पर एक मल्लाह की लड़की पानी भर रही थी। आनन्द कुएँ पर गये।

महात्मा आनन्द—देवी, मुझे प्यास लगी है। कुछ जल का दान करो।

लड़की—महाराज, मैं मल्लाह की लड़की हूँ। मेरा दिया हुआ पानी पीने से आप अपवित्र हो जायँगे।

महात्मा आनन्द—देवी, मैंने पानी माँगा है, तेरी जात नहीं माँगी है। फिर अपवित्र कैसे हो जाऊँगा। बौद्ध लोग ऐसा भेद नहीं मानते।

लड़की ने बड़ी प्रसन्नता से पानी पिलाया। फिर वह आनन्द को खोजती हुई विहार पर आई। भिक्षु उसको बुद्धदेव के सन्मुख ले आये।

बुद्धदेव—पुत्री, तू क्या चाहती है ?

लड़की—भगवन्, जिस महात्मा ने मेरी जाति का विचार न किया, उस उदार दयाशील भिक्षु की सेवा करके जन्म सफल करना चाहती हूँ।

बुद्धदेव—पुत्री, तू उस महात्मा की दया और उदारता से इतना प्रेम करती है इसलिये उन्हीं गुणों को मन में धारण कर ले। यही उस महात्मा की सच्ची सेवा होगी।

एक बार महात्मा आनन्द कहीं जा रहे थे। रास्ते में उनको राजा प्रसेनजित् मिले। राजा हाथी पर से उतर कर महात्मा आनन्द के पास आये।

राजा—यदि महात्मा आनन्द को कोई आवश्यक काम न हो तो नदी के तीर पर सत्संग करने की कृपा करें।

महात्मा आनन्द—ठीक है। चलिये।

महात्मा आनन्द नदी के तीर पर एक वृक्ष के नीचे आसन बिछा कर बैठ गये।

राजा—महात्मा आनन्द, यहाँ कालीन पर बैठिये।

महात्मा आनन्द—नहीं महाराज, तुम बैठो। मैं तो अपने

आसन पर बैठा हूँ ।

राजा—महात्मा, निन्दा करने योग्य आचरण क्या है। यह समझा कर कहिये ।

महात्मा आनन्द—राजन्, जो काम अपने को या दूसरे को या दोनों को दुःख देने वाला हो, वह पाप का बढ़ाने वाला और धर्म का नाश करने वाला निन्दित आचरण है ।

राजा—आश्चर्य है, अद्भुत है, आपने कितने थोड़े शब्दों में धर्म का सार वर्णन किया है । मेरे पास मगध के राजा का भेजा हुआ यह वस्त्र है। महात्मा आनन्द इसे स्वीकार कीजिये।

महात्मा आनन्द—नहीं राजन्, मेरे पास सब आवश्यक वस्त्र हैं।

राजा—महात्मा, आपके वस्त्र को दूसरे भिक्षु बाँट लेंगे । इसलिये आप इस वस्त्र को स्वीकार कर मुझे कृतार्थ कीजिये ।

राजा के बहुत कहने पर महात्मा आनन्द ने वह वस्त्र ले लिया। और लाकर भगवान बुद्ध की सेवा में अर्पण कर दिया । राजा प्रसेनजित् से जो बातचीत हुई थी वह सब कह दी । भगवान् बुद्ध उनकी सरलता पर मुग्ध हो गये और उनकी बड़ी प्रशंसा की ।

एक समय भगवान् बुद्ध भिक्षुओं के साथ वेरञ्जा स्थान में वर्षावास कर रहे थे । उस समय वहाँ पर अकाल पड़ रहा था । भिक्षा में केवल मुट्ठी भर चाँवल मिलते थे । भिक्षु लोग उनको ओखली में कूट कर खाते थे । परन्तु महात्मा आनन्द उन चाँवलों को पीस कर भगवान बुद्ध को खाने के लिये देते थे । एक दिन भगवान बुद्ध ने कूटने का शब्द सुन लिया ।

बुद्धदेव—आनन्द, यह ओखली में कूटने का शब्द क्या हो रहा है?

आनन्द—तथागत, भिक्षु लोग चाँवल कूट कर खाते हैं।

बुद्धदेव—हम को तो पीस कर देते हो और तुम लोग कूट कर ही खा लेते हो। धन्य हो आनन्द, तुम लोगों ने लोक को जीत लिया है। आगे आने वाले लोग तो अच्छे अच्छे खाने माँगेंगे।

एक बार भगवान बुद्ध भिक्षुओं सहित एक नगर को गये। वहाँ मल्ल लोग रहते थे। उन्होंने निश्चय किया कि सब मल्ल भगवान की अगवानी करने को जायँगे और जो नहीं जायगा उसको जाति की ओर से दण्ड दिया जायगा। उनमें एक मल्ल आनन्द का मित्र था। भगवान की अगवानी करके वह आनन्द से मिलने आया।

महात्मा आनन्द—मित्र, तुम बड़े सत्पुरुष हो। यह तुमने बहुत अच्छा किया जो तथागत का सत्कार करने आये हो।

मल्ल—मित्र, यह कुछ तथागत, या संघ, या बुद्धधर्म का आदर करने के लिये नहीं किया वरन् जाति के डर से आया हूँ, क्योंकि यदि नहीं आता तो जाति की ओर से दण्ड मिलता।

महात्मा आनन्द—यह तुम कैसी बात कहते हो?

यह कह कर आनन्द भगवान बुद्ध के पास गये और सब हाल कह कर बोले—भगवान, वह मल्ल बड़ा सत्पुरुष है। उसके हृदय में बुद्धधर्म के लिये प्रेम उत्पन्न कीजिये।

भगवान बुद्ध आनन्द के मित्र के प्रति प्रेम और सरलता को देख कर बड़े प्रसन्न हुए। वे उस मल्ल का प्रेम से स्मरण करते हुए आसन से उठ बैठे। भगवान के उस प्रेममय विचार का प्रभाव

ऐसा पड़ा कि वह मल्ल भगवान को ढूँढ़ने लगा। और जब तक भगवान बुद्ध के दर्शन न कर लिये उसे ैन न पड़ा। अन्त में उसने बुद्धधर्म का उपदेश ले लिया।

जिस समय भगवान बुद्ध के निर्वाण के पीछे बौद्धों की महा-सभा हुई थी, उस समय महात्मा महाकश्यप ने चार सौ निन्यानवे अरहंत पद प्राप्त किये हुए भिक्षुओं को सभा के लिए चुना था। ाँच सौ में एक भिक्षु की कमी रही। तब सब भिक्षुओं ने कहा " यद्यपि महात्मा आनन्द ने अभी अरहंत पद प्राप्त नहीं किया ; फिर भी वे ऐसे शुद्ध हृदय हैं कि उनको भी सभा में सम्मिलित करना चाहिये। ये भगवान के साथ रहते थे। इसलिये इनको भगवान के उपदेश स्मरण भी होंगे।

महात्मा आनन्द को सभा के लिए चुन तो लिया गया। परन्तु महात्मा आनन्द को बिना अरहंत पद प्राप्त किये हुए अर-हंतों की सभा में बैठना उचित न जान पड़ा। इसलिए उन्होंने उस रात्रि को ऐसा ध्यान किया कि उनका शरीर आकाश में उठ गया और उनकी ऐसी निश्चल समाधि लगी कि उनको उसी रात्रि को अरहंत पद प्राप्त हो गया। दूसरे दिन सभा में उनका बड़ा आदर हुआ। और ये भी उन पाँच अरहंतों में नियत हुए जिनको आचार्य मान कर बुद्ध धर्म के प्रचार का भार सौंपा गया।

इति